

स्वर्गवासी साधुचरित श्रीमान् टालचन्दजी सिंधी



बापू श्री बहादुर सिंहजी सिंधीके पुण्यश्लोक पिता

जन्म-वि सं १९२१, माघे वदि ६ 卐 स्वर्गवास-वि सं. १९८४, पौष सुदि ६

दानशील-साहित्यरसिक-संस्कृतिप्रिय
 स्व० बानू श्री बहादुर सिंहजी सिंधी



अजीमगंज-बालकशा

जन्म मा. २८-१-१८८५]

[मृत्यु मा. ०-३-१९४४

सिंघी जैन ग्रन्थ माला

*****[ग्रन्थांक ३२]*****

महामात्य - वस्तुपाल - कीर्तिकीर्तनस्वरूप - काव्यद्वय

महाकवि - सोमेश्वरदेव - विरचित

कीर्तिकौमुदी

तथा

कवि - अरिसिंह ठक्कुर - विरचित

सुकृतसंकीर्तन



SINGHI JAIN SERIES

*****[NUMBER 32]*****

Two panegyric and historical poems describing the good deeds of the great minister Vastupal of Gujarat.

1. KĪRTIKOUMUDĪ

By Mahakavi Somes'vara Deva

2. SUKRITASAMKĪRTANA

By Kavi Arisimha Thakkura

क ल क सा नि पा सी
साधुचरित-श्रेष्ठिर्वर्य श्रीमद् डालचन्दजी सिंघी पुण्यस्मृतिनिमित्त
प्रतिष्ठापित एव प्रकाशित

सिंघी जैन ग्रन्थ माला

[जैन आगमिक, दर्शनिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, कथात्मक - इत्यादि विविधविषयगुणिक
प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, प्राचीनमूर्तर, - राजस्थानी आदि माना भाषानिबद्ध सार्वभौमिक पुरातन
प्राकृत तथा नूतन संशोधनात्मक साहित्य प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ जैन ग्रन्थमाला]

प्रतिष्ठाता

श्रीमद्-डालचन्दजी-सिंघीसत्पुत्र

स्व० दानशील - साहित्यरसिक - संस्कृतिप्रिय

श्रीमद् बहादुर सिंहजी सिंघी



प्रधान सम्पादक तथा संचालक

आचार्य जिन विजय मुनि

अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ

निवृत्त ऑनररी डायरेक्टर

भारतीय विद्या भवन, बम्बई

*

ऑनररी फाउंडर - डायरेक्टर

राजस्थान ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जोधपुर (राजस्थान)

ऑनररी मैबर - जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटी, जर्मनी भाषाकार ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना

(दक्षिण) गुजरात साहित्यमंडा, अहमदाबाद (गुजरात) विशेषरान-द वैदिक

शोध प्रविष्टान, होमियारपुर (पंजाब) इत्यादि ।

*

संरक्षक

श्री राजेन्द्र सिंह सिंघी तथा श्री नरेन्द्र सिंह सिंघी

व्यवस्थापक

अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षा पीठ

भारतीय विद्या भवन, बम्बई

प्रकाशक - जे. ई. दवे, ऑनररी डायरेक्टर, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, न. ७

मुद्रक - जयन्ती दलाल, वसन्त प्रिंटिंग प्रेस, पेलागाईनी बाधी, चौकंग, अहमदाबाद

महामात्य-वस्तुपाल-कीर्तिकीर्तनस्वरूप-काव्यद्वय
महाकवि-सोमेश्वरदेव-विरचित

कीर्ति कौमुदी

तथा

कवि-अरिसिंह ठकुर-विरचित

सुकृतसंकीर्तन



संपादनकर्ता

अनेकग्रन्थभाण्डागारोद्धारक-विविधदुर्लभग्रन्थसंशोधक

जिनगमप्रकाशकारि-व्रतिष्ठानप्रवर्तक

आगमप्रभाकर-मुनिप्रवर श्री पुण्यविजय सूरि ।



प्रकाशनकर्ता

अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्रशिक्षापीठ

भारतीय विद्याभवन, बम्बई



चित्रमापद २०१०]

प्रथमावृत्ति

[विक्रमाब्द १९९१]

ग्रन्थांक ३२]

मार्गचिह्नर सुरक्षित

[मूल्य रु० ६/६०]

SINGHI JAIN SERIES

३३ अद्यावधि मुद्रितग्रन्थ नामावलि ३३

- १ मेरुशार्चाविरचित प्रणयचिन्तामणि
मूल संस्करण प्रथम.
- २ पुरातनप्रणयसंग्रह बहुविध ऐतिहासिकपरिपूर्ण
अनेक प्राचीन निरन्ध सचय.
- ३ राजशेखरमुरिरचित प्रणयकोश.
- ४ जिनप्रभसुरिकृत विविधतीर्थकल्प.
- ५ मेघविजयोपाध्यायकृत देवानन्दमहाकाव्य.
- ६ यशोविजयोपाध्यायकृत जैनतर्कभाषा.
- ७ हेमचन्द्राचार्यकृत प्रमाणमीमांसा.
- ८ भट्टाकल्लुदेवकृत अकल्लुप्रणयत्रयी.
- ९ प्रणयचिन्तामणि - हिन्दी भाषांतर.
- १० प्रभाषन्दसुरिरचित प्रभाषकचारित.
- ११ सिद्धिचन्द्रोपाध्यायविरचित भातुचन्द्रगणितचरित.
- १२ यशोविजयोपाध्यायविरचित ज्ञानविन्दुप्रकरण.
- १३ हरिवेणाचार्यकृत बृहत्कथाकोश.
- १४ जैनपुस्तकप्रशिक्षणसंग्रह, प्रथम भाग.
- १५ हरिनन्दसुरिरचित पूर्वाख्यान. (प्राकृत)
- १६ दुर्गदिवकृत रिष्टसमुच्चय. (प्राकृत)
- १७ मेघविजयोपाध्यायकृत विविधपद्महाकाव्य.
- १८ कवि अञ्जल रहमानकृत सन्देशरासक. (अपभ्रंश)
- १९ मरुदहिकृत वातकप्रवादि सुभाषितसंग्रह
- २० शान्त्याचार्यकृत न्यायावतारवार्तिक-वृत्ति.
- २१ कवि धाहिलविरचित पद्मसिरीचरित. (अप०)
- २२ महेवरसुरिकृत भागवतमीमांसा. (प्रा०)
- २३ श्रीमद्वाहुनाचार्यकृत मद्वाहुमंहिता.

- २४ जिनेवरसुरिकृत कथादोषप्रकरण. (प्रा०)
- २५ उदयप्रभसुरिकृत धर्मोपदेशमहाकाव्य.
- २६ अर्षादिहसुरिकृत धर्मोपदेशमहाका. (प्रा०)
- २७ बोद्धविरचित लीलावर्ध कथा. (प्रा०)
- २८ जिनदत्ताख्यानद्वय. (प्रा०)
- २९, ३०, ३१ स्वयंभूविरचित पद्मवर्णित.
भाग १, २, ३ (अप०)
- ३२ सिद्धिचन्द्रकृत काव्यप्रकाशखण्डन.
- ३३ दामोदरपण्डित कृत उत्तिग्यसिप्रकरण.
- ३४ मिशमित्र विद्वत्कृत कुमारपालचरितसंग्रह.
- ३५ जिनपालोपाध्यायविरचित खरवरगच्छ वृद्धदुर्वावलि
- ३६ लक्ष्मीनन्दसुरिकृत कुबलयमाला कथा. (प्रा०)
- ३७ गुणपालमुनिरचित जंबुचरित. (प्रा०)
- ३८ पूर्वार्चयविरचित जयपावड-लितिलेख. (प्रा०)
- ३९ भोजवृषविरचित शृङ्गारमञ्जरी. (संस्कृत कथा)
- ४० धनमाराणीकृत-मरुदहिराजकप्रवादीका.
- ४१ कौटिल्यकृत अर्षदाख-सटीक. (कतिपयअंश)
- ४२ विश्वलिलेखसंग्रह विशालमहाज्येष्ठ-विशालिनिषेणी
आदि अनेक विशालिलेख समुच्चय.
- ४३ महेन्द्रसुरिकृत नर्मदासुन्दरीकथा. (प्रा०)
- ४४ हेमचन्द्राचार्यकृत-छन्दोऽनुशासन.
- ४५ वस्तुपालगुणवर्णनात्मक काव्यद्वय
कीर्तिकीमुदी तथा सुकृतसतीतन
- ४६ धुकृतकीर्तिकीर्तिनी आदि वस्तुपालप्रशस्तिसंग्रह.
- ४७ जयमोमविरचित मंथीकर्मचन्द्रचंदाप्रबन्ध.

Shri Bahadur Singh Singhi Memoirs

Dr. G. H. Bühler's Life of Hemachandrāchārya.

Translated from German by Dr. Manilal Patel, Ph. D.

- 1 स्व. बापू श्रीबहादुरसिंहजी सिंघी स्मृतिग्रन्थ [भारतीयविद्या भाग ३] सन १९४५.
- 2 Late Babu Shri Bahadur Singhi Singhu Memorial Volume
BHARATIYA VIDYA [Volume V] A. D. 1945.
- 3 Literary Circle of Mahāmātya Vastupāla and its Contribution
to Sanskrit Literature. By Dr. Bhogilal J. Sandesara,
M. A., Ph. D. (S.J.S.33.)
- 4-5 Studies in Indian Literary History. Two Volumes.
By Prof. P. K. Gode, M. A. (S. J. S. No. 37-38)

३३ संग्रति मुद्र्यमाणग्रन्थनामावलि ३३

- | | |
|--|--|
| <ol style="list-style-type: none"> १ विविधगण्ठीय पद्यावलि:संग्रह. २ जैनपुस्तकप्रशिक्षणसंग्रह, भाग २. ३ गुणप्रभाचार्यकृत विनयसूत्र. (बोद्धशास्त्र) ४ रामचन्द्रकविरचित-महोद्दामचरन्दादिनाटकसंग्रह. | <ol style="list-style-type: none"> ५ तदण्यभाषावर्णन पराशरवृक्षमालावरोपवृत्ति. ६ प्रयुक्तपरिणत मूलशुद्धिप्रकरण-सटीक. ७ कुबलयमाला कथा, भाग २ ८ सिद्धिलेखसुरिरचित मन्त्रात्राजद्वय. |
|--|--|

विषयानुक्रम ।

१. प्रासङ्गिक-वक्तव्य

२. गजरेश्वरपुरोहित महाकवि श्रीसोमेश्वरदेवविरचित कीर्ति- कौमुदीमहाकाव्य

पृ० १-४२

- (१) नगरवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः । १-६
- (२) नरेन्द्रवंशवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः । १-१२
- (३) मन्त्रिप्रतिष्ठा नाम तृतीयः सर्गः । १३-१६
- (४) दूतसमागमनो नाम चतुर्थः सर्गः । १७-२२
- (५) युद्धवर्णनो नाम पञ्चमः सर्गः । २३-२५
- (६) पुत्रप्रमोदवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः । २६-२९
- (७) चन्द्रोदयवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः । ३०-३३
- (८) परमार्थविचारो नाम अष्टमः सर्गः । ३४-३६
- (९) यात्रासमागमनो नाम नवमः सर्गः । ३७-४२

३. प्रथम परिशिष्ट

पृ० ४३-८८

- (1) Kathavate's Introduction to the first edition of Kirtikamudi 43-59
- (2) Professor G. Bühler's critical study of the Sukritasamkirtana of Arisimba 60-82
- (3) Introduction of the Sukritasamkirtana text of late Muniraj Shri Chaturvijayaji Maharaj 83-88

४. कीर्तिकौमुदी-सुकृतसंकीर्तनमहाकाव्यगत-विशिष्टनामानुक्रम । ८९-९१

५. द्वितीय परिशिष्ट-

महाकवि-अरिसिंहविरचित सुकृतसंकीर्तनमहाकाव्य ।

पृ० ९५-११३

- (१) चापोत्कटान्वयवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः । ९६-९९
- (२) चैलुक्क्यान्वयवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः । ९९-१०४
- (३) मन्त्रिप्रकाशो नाम तृतीयः सर्गः । १०४-१०७
- (४) घर्मोपदेशनो नाम चतुर्थः सर्गः । १०७-११०
- (५) सङ्ग्रहस्थानो नाम पञ्चमः सर्गः । १११-११४
- (६) सूर्योदयवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः । ११५-११७
- (७) शत्रुजयदर्शनो नाम सप्तमः सर्गः । ११८-१२१
- (८) पद्मस्तववर्णनो नाम नवमः सर्गः । १२५-१२९
- (९) पुत्रप्रवेशो नाम दशमः सर्गः । १२९-१३३
- (११) सकलकीर्तनकीर्तनो नामैकादशः सर्गः । १३३-१३६

६. कीर्तिकौमुदीमहाकाव्यस्यश्लोकानामकारादिक्रमेणानुक्रमः । १३७-१४७

७. सुकृतसंकीर्तनमहाकाव्यस्यश्लोकानामकारादिक्रमेणानुक्रमः । १४८-१५६

प्रासंगिक वक्तव्य

#

गूर्जर महात्म्य वस्तुपालकी कीर्तिको काव्यबद्ध करनेका जिन कर्मियोंने प्रयत्न किया है उनमें राजपुरोहित करि सोमेश्वर और ठाकुर अरिसिंह मुख्य हैं। कवि सोमेश्वरने कीर्तिकौमुदी नामक काव्य रच कर और अरिसिंहने सुवृत्तसमीर्तन काव्य बना कर, वस्तुपालको पशु कीर्तिको युगान्त तक स्थिर रखनेका सज्जयत्न किया है।

कीर्तिकौमुदी काव्यका कर्ता कवि सोमेश्वर सुप्रसिद्ध व्यक्ति है। वह वस्तुपालका अनन्य मित्र और राजपुरोहित था। वस्तुपालके गुणोंका वह बहुत अनुरागी और प्रशंसक था। वस्तुपालकी सुदवीरता और दानवीरता का वह प्रत्यक्ष साक्षी था, इसलिये उसने काव्यकी गुणवत्ताका महत्त्व बहुत है। कविता की दृष्टिसे भी यह काव्य बहुत उच्च कोटिका है।

इस काव्यका, बहुत पहले (सन् १८८३ में) अहमदाबादके गुजरात कालेजके सस्कृतके प्रोफेसर ए. बी. कापटे नामक विद्वान्ने संपादन कर 'बोम्बे सस्कृत सीरीज' नामक ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशन किया था। प्रो. कापटेने इसकी भूमिका रूपसे एक बहुत विस्तृत इंग्रेजी प्रस्तावना लिखी, जिसमें काव्यगत बातोंका विस्तृत व्याख्यान किया है। प्रो. कापटे संपादित यह पुस्तक अब अलभ्य है। इसलिये इसका पुनर्मुद्रण करनेकी दृष्टिसे प्रस्तुत प्रकाशन किया गया है। मूल ग्रन्थके सरोधानमें कुछ अन्य प्राचीन हस्तलिखित पोथिया भी और मिल आईं, इसलिये इसका यह प्रकाशन अधिक शुद्ध हो गया है।

इसके साथ, कवि अरिसिंह विरचित सुवृत्तसमीर्तन काव्य भी सम्मिलित कर दिया है। क्यों कि ये दोनों काव्य, वर्णन और वस्तुकी दृष्टिसे, परस्पर बहुत कुछ साम्य रखते हैं।

'सुवृत्तसमीर्तन' काव्यकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति, जब स्व० जर्मन महाविद्वान् डॉ. एडुल्टको मिली तो ये इसको देख कर बहुत आश्चर्य हुए और इस पर उन्होंने जर्मन भाषाके एक सुप्रसिद्ध साहित्यिक जर्नल में, बहुत बड़ा निबन्ध लिख कर प्रकट किया। उस निबन्ध के महत्त्वको देख कर, ड० एच्. बर्नेस नामक इंग्रेज विद्वान्ने, उसका इंग्रेजी अनुवाद कर, इन्डियन एन्टीक्वेरी नामक सुप्रसिद्ध पत्रिकामें प्रकट किया। पर मूल सस्कृत काव्य कहीं प्रकट नहीं हुआ था। इसलिये स्वर्गासी मुनिवर श्री चतुरविजयजी महाराजने, इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त कर, आनन्दर की जैन आश्रमनन्द समा द्वारा प्रकाशित होने वाली 'आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला' के एक भागके रूपमें प्रकाशित किया। यह प्रकाशन भी अब अलभ्य है, अब इसका पुनर्मुद्रण भी इसके साथ कर देनेका हमारा निश्चार हुआ। इस प्रकार इसका पुनः प्रकाशन करनेकी हमारी इच्छाका मुनिवर्य श्री पुण्यविजयजी महाराजने सार्ध सौकार कर, अपने स्वर्गीय गुरुमहाराजके संपादनको सुप्रतिष्ठित किया।

इस प्रकार 'कीर्तिकौमुदी' और 'सुवृत्त समीर्तन' इन दोनों काव्योंका संयुक्त प्रकाशन कर देना जब निश्चित हुआ, तो हमारे मनमें इन दोनों काव्योंके परिचयान्वय जो उक्त दो इंग्रेजी निबन्ध मिले गये हैं, उनको भी इसमें सम्मिलित करना अधिक उपयुक्त मगा। क्यों कि ये दोनों निबन्ध अब अलभ्य हैं, और उन निबन्धोंके विस्तार लेखकों द्वारा जिस परिश्रम और जिस अध्ययनके फलस्वरूप ये ग्रंथ निबन्ध मिले गये हैं, मर्यादा सरभरणीय और मदैव पठनीय हैं। अब हमने इन दोनों विशिष्ट निबन्धोंको भी पश्चात्त इस प्रकाशनमें सुदित कर दिये हैं।

ख० मुनिवर्य श्री चतुर्विजयजी महाराज द्वारा संपादित और प्रकाशित 'सुवृत्त सकीर्तन' काव्यके प्रास्ताविक रूपमें, ख० विद्वान् चिमनलाल डा. दत्तल (गायकवाड्स ओरिएण्टल संरीस, बडौदा, के मूल प्रतिष्ठापक)ने, ग्रन्थपरिचयात्मक छोटासा इमेजी वक्तव्य लिखा था, उसको भी हमने इसके साथ संकलित कर देना उचित समझ कर, वैसा किया है। इस वक्तव्यमें वस्तुपात्रके कीर्तिकलापोंका वर्णन करने वाली समसामयिक जितनी रचनाएँ उपलब्ध हैं, उनका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

महामात्य वस्तुपालके जीवन और कार्योंसे संबद्ध जितनी समकालीन साहित्यिक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं उनका संक्षिप्त परिचय, हमने इस ग्रन्थमालाके ४ र्वे ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित 'धर्माभ्युदय महाकाव्य'के किंचित् प्रास्ताविकमें लिखा है। उससे संबद्ध 'सुवृत्तकीर्तिकछोलिनी' आदि वस्तुपालकी प्रशस्त्यात्मक रचनाओंका तथा उसके बनाये हुए मन्दिरों और मूर्तिओंके जितने शिलालेख अभी तक हात हुए हैं उन सबका भी, एक संग्रह ग्रन्थ, इसी ग्रन्थमालाके ५ वें ग्रन्थके रूपमें प्रकट किया गया है।

पहले, प्रस्तुत काव्य द्वय भी उसी संग्रहके अन्तर्गत संकलित रूपमें प्रकट कर देनेका विचार रहा और तदनुसार इसका सुदण कार्य भी कराया गया। परंतु पीछेसे प्रो कापरटे लिखित 'कीर्तिकौमुदी' को इमेजी प्रस्तानना और डॉ न्युहलर लिखित 'सुकृत सकीर्तन' काव्यका विशिष्ट परिचापक बहुमूल्य निबन्धका इमेजी अनुवाद भी, इसमें संकलित कर देनेके विचारसे, प्रस्तुत ग्रन्थ को, अब ग्रन्थमालाके ३२ वें ग्रन्थके रूपमें, पृथक् प्रकट किया जा रहा है।

'धर्माभ्युदय महाकाव्य' 'सुवृत्तकीर्तिकछोलिनी' आदि वस्तुपाल-प्रशस्तिसंग्रह' तथा प्रस्तुत 'कीर्तिकौमुदी' तथा सुवृत्तसकीर्तन काव्य द्वय—इन तीनों ग्रन्थोंका संपादन कार्य विद्वद्भूत मुनिमहोदय श्री पुष्पविजयजी महाराजने किया है और इसके लिये हम इनके प्रति, अपना पुनः पुनः सादर श्रुतज्ञभाव प्रकट करना कर्तव्य समझते हैं।

महावीर जन्मदिन, चैत्र शुक्ल १३, च १०१० }
ता ३० मार्च, १९६१, भारतीयविद्यामनन, बंबई }

—मुनि जिनविजय

—आभार प्रदर्शन—

इस ग्रन्थके प्रकाशनमें जो द्रव्य व्यय हुआ है उसका अर्द्ध भाग भारत सरकारने देनेकी उदारता प्रकट की है, अतः इसके लिये हम भारत सरकारके प्रति अपना सादर आभार प्रकट करते हैं।

गूजरेश्वरपुरोहित-

महाकविश्रीसोमेश्वरदेवविरचितं

कीर्तिकौमुदीमहाकाव्यम् ।

(महामात्यश्रीवल्लुपालचरितात्मकम्)

प्रथमः सर्गः ।



॥ नमः सर्वज्ञाय ॥

मङ्गलाचरणम्

- श्रिये सन्तु सतामेते, चिरं चातुर्भुजा भुजाः । यामिका इव धर्मस्य, चत्वारः स्फुरदायुधाः ॥ १
- कुर्वन् गिरिमुंवि क्रीडां, दृष्टोक्तपयोधरैः । वैडसचन्द्रकं प्रीतिं, नीलैरुष्टः करोतु व ॥ २
- जटा-सीमन्तकान्तं वः, श्रियेऽस्तु शिवयोर्वपुः । तातेत्यन्वेति वैडऽहृतं, शुभेन प्रतिवक्ति यत् ॥ ३
- भूयान्मुदे तदेकं वः, शिव-केशवयोर्वपुः । करोति प्रणतिं यस्व, भीमः प्रीतिश्च मन्मथः ॥ ४
- सारस्वतैर्मयं वन्दे, तमोपहृमहं महः । अपि सूक्ष्मपद्मार्थानां, साधारणं करोति यत् ॥ ५
- सारस्वतीं सदा वन्दे, यदुपास्ति ससुच्छ्रिताः । काव्यानि कुसुमानीव, सुवते कविपादपाः ॥ ६

कविवर्णना

- वन्पास्ते कवयो येषां, सूक्तिसौरमवासिता । कृन्त्रिजगदाह्लादं, कीर्तिर्भमन्ति भूभुजात् ॥ ७
- जयन्ति कवयः केऽपि, सूक्तैर्भैरवैश्च द्रुतम् । तांस्तांश्चिद्विचिचेयुः, रसानावेवैयन्ति ये ॥ ८
- मधुना लसदुक्तौ, कविपदपद्मिनीम् । रामायणकवेस्तस्य, द्वयं वन्दे सारस्वतीम् ॥ ९
- स्तुमस्तमेव वाल्मीकिं, यत्प्रसादात् प्रगम्यते । लौकैर्दाशरथं वृत्तमपि ध्रैवदुःखकृत् ॥ १०
- स नमस्यः कथं न स्यात्, स्तां सैश्वर्यतीसुतः । सुपर्वोपचितं चक्रे, यत् स्वर्गमिव भारतम् ॥ ११
- कालिदासः कविर्मान, श्रीरामचरितस्य यत् । स एष शर्करायोगः, पयसः समपयत् ॥ १२
- विरक्तधेदुर्दुर्लभ्यो, निर्द्वैति वाऽथ बाज्जसि । वयस्य । कथ्यते तथ्यं, मायसेवां कुरुष्व तव ॥ १३
- भैरवार्चुनोत्तमस्य, भैरवीमममुपाश्रितः । एकेन सारदेयैर्गतिः, कृतिः कुम्भसमीपस्थः ॥ १४
- शुक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा, फक्वो मौनमाश्रिताः । वैष्णव्यनाकनय्यैर्यो, भवतीति स्थितिर्यत् ॥ १५
- वचनं धनपालस्य, चन्दनं मलयस्य च । सरसं हृदि विन्यस्य, कोऽभूलाभ न निर्द्वैतः ॥ १६

१ "गम्यस्याये" (विद्वहेमपुत्र १-२-१२) इति सूत्रेण चतुर्थी, धिष कर्तुं सन्तु हास्यः इति टिप्पणी वा० पुस्तके ॥ २ पार्वत्याम्, पक्षे पर्वतर्भूमी वा० टि० ॥ ३ स्तना मेधाद्य वा० टि० ॥ ४ उल्लङ्घन चन्द्रो यस्य "चोपादा" (सिद्धहेम ७-२-१०५) इति बहुमोहो कः, पक्षे चन्द्रा. चादया इति स्या. वा० टि० ॥ ५ इक्षुरो मयूरस्य वा० टि० ॥ ६ वाऽऽहृतं प्र० वास० ॥ ७ 'तमहं व' प्र० । 'तमयं' व' इति द्वयाने 'तमिद व' इति सशोधित पाठ वा० ॥ ८ 'पास्ति स' पु० ॥ ९ स्थापनामन्त्रं वा० टि० ॥ १० स्थापयन्ति वा० टि० ॥ ११ पक्षे सरणो यो दशरथेन हन्त वा० टिप्पणी ॥ १२ कृष्णद्रोपायनव्यास वा० टि० ॥ १३ देवाः, पक्षे षोडशा अधिकाराः वा० टि० ॥ १४ जनितम् अर्जुनस्य-पार्यस्य बल वेन तम्, अपाद सुषिष्टिम्, पक्षे अर्जुन-चर्मलम् वा० टि० ॥ १५ तगीश्वर-चन्द्रम् वा० टि० ॥ १६ धागः कवीश्वरः शराय वा० टि० ॥ १७ अणोद्भूत वा० टि० ॥

विरहस्य कवेः प्राप्तप्रसादैव सरस्वती । नीयते जातु काल्प्यं, दुर्जनैर्न पौरपि ॥	१७
सदा हृदि बहेम श्रीहेमसूरेः सरस्वतीम् । मुवाया अन्द्रलानि, ताम्रपर्णी जिता यया ॥	१८
स्तुमः सुमनसां श्रेष्ठं, नीलकण्ठमहर्निगम् । दर्पकोपचिन्तं यस्य, सर्वज्ञस्य न मानसम् ॥	१९
श्रीप्रहादनदेवोऽभूत्, द्वितयेन प्रसिद्धिमान् । पुत्रत्वेन सरस्वत्याः, पतित्वेन जयधियः ॥	२०
श्रीमोज-मुञ्जदुःखार्ता, रम्यां वर्तयता कथाम् । प्रहादनेन साहाया, पुनश्चक्रे सरस्वती ॥	२१
कव्येन्द्रश्च मुनीन्द्रश्च, नरचन्द्रो जयययम् । प्रशस्तिर्यस्य काव्येषु, सद्कान्ता हृदयादिव ॥	२२
मुनेर्विनयसेनस्य, सुधामधुरया गिरा । भारतीमञ्जुमञ्जरीस्वरोऽपि पहोद्वृतः ॥	२३
मुनन्देन पदव्यासः, स कोऽपि र्सेमितौ वृत्तः । येनाधुनाऽपि धीराणां, रोमाञ्चो नापचीयते ॥	२४
न्यायपाकेन यो बाचां, पादं शास्त्रयपरात् फलोन् । स्वयं हरिहरः तोऽभूत्, कवीनां पाकशासनः ॥	२५
न माद्यः क्षास्यते कैश्चिन्नाभिर्नन्दोऽभिमन्यते । निष्कल कान्तिदासोऽपि, यशोवीरस्य सन्निधौ ॥	२६
प्रकास्यते मीढा साशोदः, यशोवीरेण मन्त्रिणा । मुने देवयुता माली, करे श्री. स्वर्णमुद्रया ॥	२७
अर्जितातो गुंणात्तेन, वैद्यमानेन्द्रमन्त्रिणा । विधेरश्वेक्ष नदिधौ, धैर्येन नियन्त्रिते ॥	२८
वस्तुपाल-यशोवीरी, तस्य बाणदेवतामुतौ । एको दानसमावोऽभूदुभयोरन्यथा कथम् ॥	२९

“सज्जन-दुर्जनवर्णना

हृदा वाक्-पण्डितानां, निष्पन्ना मलयद्रुमा । अनास्त्रिभ्यश्चतो दीपाः, श्रीवारं सन्तु साधयः ॥	३०
साधूनां दृढता काचिच्चिरैव नथाहं ये । परंपामेव गृह्णन्ति, शुणान् मृगिणा अपि ॥	३१
रमयन्ति न कं नाम, सन्तःश्यायद्रुमा इव । पुंस्यन्ति स्मितपुष्पं ये, मूर्चितोषे-फलदेवम् ॥	३२
वयुर्मेमानस मन्त्रे, सधूरी सननं सताम् । रयन्देनेव तदीयेन, बाधो मुञ्चन्ति नाऽऽर्जनाम् ॥	३३

अश्रुप्रवर्ततेर्धैर्येति किं तेरसाधुभिः । रसवया कवेरचौ, मालिन्यं जनयन्ति ये ॥	३४
शुद्धिकाना मुजझानां दुर्जनानां च वधसा । विमर्श निवर्तते व्यस्ये, विषे पुष्टे मुने हृदि ॥	३५
अस्मिन् कलौ खट्वेसुदुष्टवाम्बाजदारणे । कथं ब्रह्मज्ञानं स्युः, सन्नाहाः राज्ञा यदि ॥	३६
निदानं नात्र पश्यामि, यदुपेयापि दुर्जेना । आक्रोशान्तिं मृगं सधूलप्यमानिव कुर्वता ॥	३७
शैवज्ञानं गौडैः, मह साफल्यं समा । व्यामोऽयमृगमूर्खः, सहसा धनरासभा ॥	३८
दुर्जेनैवार्थमानाव, माधोऽधिकमधत्तं । अग्निर्युष्मदग्नयः, मुद्रुगयेव चाल्मना ॥	३९

आन्ता तावत् वनकोपः । मद्रमोऽपि दुर्जेन । कथाय त्राने दृष्टो, मनेमानिव वायसः ॥	४०
दुर्जेनानां दिग्बिम्बवर्णानिङ्गा मृषैर यत् । निष्पन्नानि नेशामुचिना ममनिहता ॥	४१
अभिन्नसमयाग्नये, सन्नेत्राग्नमहृते । चम सज्जनागपा, शिव-वन्धीभवनं मे ॥	४२

१ कविः, पक्षे ईश्वरम् वा० टि० ॥ २ 'यसिहस्य' मु० ॥ ३ मितौ-भ्यामप्यग्रे ग ॥ कोऽपि पदनाशः कृत् । पक्षे मितौ मृद्वग्रे वा० टि० ॥ ४ हृदि वा० टि० ॥ ५ कवीन् अप्यपि हमात् वा० टि० ॥ ६ इत्त वा० टि० ॥ ७ 'मोऽपि जगत्' वा० ॥ ८ सन्ना वा० प्र० वा० ॥ ९ १३ (दुर्जेनैवार्थमानं इत्यर्थः) वा० टि० ॥ १० औदार्यदः, पक्षे गज वा० टि० ॥ ११ यदुक्तं वा० टि० ॥ १२ हृदयदः मु० ॥ १३ मुष्मन्ति वा० । पुष्पन्ति मु० ॥ १४ वाग्रेय प्र० वा० ॥ १५ 'तमानि' प्र० ॥

भाति यत्र कपोलात् सङ्क्रान्तेन्दुर्वधूजन् । राजमुद्राङ्कित कोण, कन्दर्पवृषतेरिव ॥	६७
यत्र यत्र प्रसर्पन्ति, सर्पिन् वन्मूर्गादृश । दास्यन् दष्टिरवनि, तत्र तत्र विलसिनाम् ॥	६८
वीक्षिता वलितप्रीर्ण, तर्वाभिर्यत्र केऽपि ^१ ये । मन्ये व्यावर्तिनाङ्गेन, तेजङ्गेनापि ^२ ताडिता ॥	६९
रूपेणाप्रतिमा कृता, यत्र धाना कृता क्रि ^३ । तथापि प्रतिमान्तासा, सज्जाता रत्नमितिषु ॥	७०
स्नात्वा सरसि सौरभ्य, स्त्रीश्रोवान्नादुपाहरन् । तर्वासमीरण शौण, यत्र कार्याय सेवते ॥	७१

सिद्धसरोवर्णनम्

यत्स्मिन् सरो हरोपेद्रासादौ परितःखितम् । आनुक्तमौक्तिक भूमेर्भावेकमिव पुण्ड्रम् ॥	७२
आमानि यस्य गन्धर्व, सर स्मरै सरोरुहै । खेल्न्तान्ना सुरा तोयदेवनाना मुखैरिव ॥	७३
यस्यास्तर्गिरिशगारैर्द्वीपका प्रतिविम्बिता । शोभन्ते निगि पातालप्यालमौलिमिप्रिथिय ॥	७४
यस्योच्चै सरसस्तीरे, राजने रजतोच्चम् । कीर्तिस्तन्मो नमोगङ्गाप्रवाहोऽध्वनरजिव ॥	७५
हरप्रासादसन्देहेमनोहरमिदं सर । राजते नगर तच्च, राजहसैरलङ्कृतम् ॥	७६

सदाह्व-चैक प्रथितप्रभृतावतारशाली कमलाभिराम ।

स एष कासारशिरोवतस, फसप्रहर्तु प्रतिमा विभर्ति ॥ ७७

न मानसे^४ नापति मानसं मे, पम्पा न सत्पाठयति प्रमोदम् ।

अच्छोदमच्छेदकम्यसाग, सरोवरे राजति सिद्धभर्तु ॥ ७८

प्रतिदृष्टितोर्मिपातजातप्रसंगरेनकदम्बकच्छेन ।

हेरसितसितपुति त्वकीर्ति, दिशि दिशि कन्दल्यस्य सडाग ॥ ७९

भलपुलहरिलिङ्गमोमभागे तडागे, तलतुहिनपिण्डापाण्डुडिण्डीरदम्भात् ।

तल्लतारगिताफवायदाप नमुचैरिह विहरति नाराचक्रवाल विमलम् ॥ ८०

एकत्र स्फुटदञ्जराजजिजसा बभूवुन मुधुवा, प्रभदयक्कुचकुम्भतुङ्गवरसेरयत्र गतीकृत ।

अत्र-यत्र सिततर्नलनारजलदल्लैवेन नीलीकृत, श्रेय सिन्धुरवैर्गेण्डम्बलैर्धुसा धवे सर शेखर ॥ ८१

॥ इति श्रीगूर्जरेश्वरपुरोहितश्रीसोमेश्वरदेवविरचिते कीर्तिकौमुदीनाम्नि
महाकाव्ये नगरवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥



१ 'पि यत् प्र० मु० ॥ २ 'पि पीडिता वा० ॥ ३ 'दीपिका मु० ॥ ४ 'चप्रप्रथित प्रभू'
मु० ॥ ५ अन्तारालीपमिषा फले 'मस्य' १ कृमौ २ कराह ३ य' इत्यादि दशारतारा वा० टि० ॥
६ प्रतिमां प्र० ॥ ७ 'से प्रथ' मु० ॥ ८ देवसरोवरं श्रीनिन्दाराजजयसिद्धदेव्य वा० टि० ॥
९ हरिहरसितपुति मु० ॥ १० यय्यत्र प्र० वा० ॥ ११ "सेनापालमुपस्थापय" २ १ ४ १५ ।
इति न पुस्तक वा० टि० ॥ १२ 'वर्णक' प्र० ॥ १३ धुर मु० ॥

द्वितीयः सर्गः ।

चौकुक्ष्यवंशवर्णनम्

- अथ चौलुक्यमृपालः, पालयाभास तत् पुम् । जितराजसमाजः श्रीमूलराज इति श्रुतः ॥ १
- भावजिता जितरातेरुणैवणिरिपोरिव । गूर्वरेश्वरराज्यग्रीर्यस्य जज्ञे स्वयंवरा ॥ २
- लोटेश्वरस्य सेनाभ्यमसामान्यपराक्रमः । दुर्वारं वारपं हत्वा, हास्तिकं यः समग्रहीत् ॥ ३
- सपत्राकृतैशब्रूगां, संपराये स्वैपत्रिणाम् । मेहेच्छैः कच्छमृपालं लक्षं लक्षं चकार यः ॥ ४
- दानोपद्रुतदारिद्र्यं, शौर्यनिर्जितवर्जन् । कर्तित्यगितकाकुत्स्थं, यो राभ्यमक्रोचिरम् ॥ ५
- तस्मिन्नथ कथाशेषे, निःशेषितनिजद्विपि । राजा चामुण्डराजोऽमून्यर्हमण्डलमण्डनम् ॥ ६
- विरोधिप्रतिताचिततापाध्यापनपण्डिताः । यदीयाः कटकास्माः, हृतजम्भारिभीतयः ॥ ७
- पाणिपङ्कजवर्तिन्या, स्फुरकोर्षेविलासया । यस्यासिद्धमर्थेय्या, भिन्ना वंसाः क्षमाभूताम् ॥ ८
- लोकैत्रयोल्लसन्तीर्तिर्महोपनिमतल्लिका । राजा बलभराजाख्यस्तत्तत्तत्तनुभ्रमूत् ॥ ९
- सम्भूतकम्पसम्पत्तेर्ददातुं केनचित् । जगाल मालवेशस्य, कवालः करादपि ॥ १०
- उपकृन्त् विरुद्रानां, पुरीं पुरुषपौरुषः । जगैज्जम्पन इत्येष, विशेषैरुदीरितः ॥ ११
- बभूव भूपतिस्तत्प्रायसो विरजस्तमाः । श्रीमान् दुर्लभराजाख्यः, मुदुर्लभयगाः परैः ॥ १२
- कालेन करवालेन, मोगिनेवाभिरक्षितम् । निधानमिव यद्राज्यमनाहार्यं परैरयूत् ॥ १३
- सर्वथाऽनुपमोपेयैः, यस्य सौभाग्यभासिनः । न करः परदारेषु, द्विजसारेषु चापत् ॥ १४
- तस्य भ्रातृसुतः श्रीमान्, भीमाख्यः पृथिवीपतिः । विष्टपन्नितयाभीष्टप्रवृत्तिप्रतिभूम् ॥ १५
- मण्डेलाप्रेण यः दैत्यैर्गान्धिना विष्टृतस्मिन् । चकार भोजमभोजमिव पीयूषदाधितिः ॥ १६
- एकधारापतिर्यस्य, शिषारणासिना जितः । किं विभ्रं ? यदसौ जेतुं, दातधारमपि क्षमः ॥ १७
- मसौ गुणोति मन्त्रेण, भोजः कण्ठश्लेषेण । धनुषा गुणिना यस्य, नश्यन्नशान्न पातितः ॥ १८
- मुपैकितनाम्बुगैः, तत्र क्षत्रपनौ गते । धौमी प्रोत्रिवे तपुत्रः, श्रीकृष्णः सार्णशं दधे ॥ १९
- गुरुणा विक्रमेणाधै, बभूव मित्रसन्निभः । आकारेण तु रम्येण, मूपोऽमूनाममूसहृ ॥ २०
- विना कर्णेन तेन स्त्रीमेवागां न रतिः कचिन् । इतीव जजिरे तेषामुपकृणं प्रवृत्तयः ॥ २१

१ माराणस्य पा० टि० ॥ २ क्यन्तरीवितः पा० टि० ॥ ३ समसे पा० टि० ॥ ४ सधु-
पम् पा० टि० ॥ ५ मेहेच्छकच्छमृपालं लक्षं लक्षोचकार मु० ॥ ६ उदारः पा० टि० ॥ ७ जगत्
इति नामानम् पा० टि० ॥ ८ लक्षोचकार मु० ॥ ९ वेपथ्यं पा० टि० ॥ १० 'यदत्' मु० ॥ ११ शेषः
सहपाणिनाम्, पक्षे कृष्टम् पा० टि० ॥ १२ लोकोत्तल्लस' प्र० ॥ १३ 'नाकग' मु० ॥ १४
मालापनेषु पा० टि० ॥ १५ सार्वेण, पक्षे प्रधानमण्डलेन पा० टि० ॥ १६ तीक्ष्णम्, पक्षे शीतलम्
पा० टि० ॥ १७ दारय विद्याय पा० टि० ॥ १८ नरायणशयोम्, दार्यश्लेषः पा० टि० ॥ १९
'त्री धात्रीप्रोत्री च धौ' मु० ॥ २० वराहः पा० टि० ॥ २१ 'पामनुक' मु० ॥

तक्रुणांऽर्जुनयोर्वै, पूर्वं कर्णं स्मरन्निव । अर्जुनं गमयामास, यशो देशान्तराणि यः ॥ २२

अभिरामगुणप्राप्तो, गमो दम्भथादिव । गूनुः श्रीज्ञयर्मिहोऽस्मान्जायते स्म जगन्नर्या ॥ २३

मिथुनाऽपि शुनासंरधीष्वृत्तिमतीथुषा । रषा मुजियतां नीताः, पिथुना येन भुमुनः ॥ २४

अपारपौरपोदारं, राक्षारं मुग्मसग । मौराप्त्वं पिथवानाजौ, करिणं केसरीय यः ॥ २५

असङ्गहृत्सैन्येन, प्रक्षिपानेकमृमृता । बद्धं सिन्धुपतिर्येन, वैदेहियतेन वा ॥ २६

अमर्षगं मनं युयेन, विपजोषीमृदुलनौ । अमस्थं द्रव यन्मूर्णमर्गोराजमनोषयत् ॥ २७

गूहस्तां दुहिता तूर्णमर्गोराजस्य विथुना । दत्ताञ्जेन पुनस्तस्मै, भेदोऽभूत्तमयोरयम् ॥ २८

दिपां शीर्षाणि धनानि, दृष्ट्वा तपादयो पुरः । चक्रे शाकृभरीगोऽपि, गङ्गित प्रणतं गिरः ॥ २९

मालवश्चामिनः प्रोदक्ष्मीपरिवृद्धं स्वयम् । समित्यपरमारो यः, परमारानमायन् ॥ ३०

क्षिप्त्या धारापतिं राजगुरुवत् काष्ठपञ्चरे । य काष्ठापञ्चरे कौर्त्तिगङ्गहंमी न्यर्वाविभ्रन् ॥ ३१

एकैव जगृह धारा, जगर्गं नरन्मर्षणः । दत्ता येनायुधारास्तु, तद्रघुना सहस्रधा ॥ ३२

धारामहप्रतद्नेन, वैस्वाऽऽमजस्य गङ्गितः । प्रावृणक्तमिषाद दण्डं, मेढोचक्रपतिर्यदौ ॥ ३३

सुधेयं वसुधा छन्दः, पाण्डिता येन विदिषा । यत्येष्टसदसिर्वाहः, राहचक्रे तमाहवे ॥ ३४

जनेन मेने य स्वामी, कुमार इव शक्तिमान् । ताप्रचूडध्वजं सोऽमृन्, किन्तु केकिष्वजः परः ॥ ३५

येन विश्वेकवर्णिनः, न स राजा जितो न यः । काष्ठा काऽपि न सा यस्य, यगोभिः शोभिता न या ॥ ३६

गणेशस्येव यस्याऽय्युष्करस्य धृष्टिस्थिते । आन्यसारं कस्थोऽभूद्, गौडो मोदकवज्रप ॥ ३७

श्मशानं यादुगनेन्द्रं, वरुणा धर्षारकाभिधम् । सिद्धराजेनि राजन्मुषौ जने राजगजिषु ॥ ३८

रजोभिः समरोदूतैर्यन् पुरा मलिनीकृतम् । तन् पश्चात् कर्त्तारकञ्जैर्येन शक्तिमन्मरम् ॥ ३९

महीमण्डलमार्गदे, र्हातं लोकान्तरं गते । श्रामान् कुमारपाण्डोऽयः, राजा रञ्जितवान् प्रजा ॥ ४०

पृथुप्रभ्रतिभिः पूर्वैर्गण्डि पाथिवैर्दिवम् । स्वर्लोभमुण्णनानां, यत्र न्यासं दवापिनं ॥ ४१

न केचन महीपाला, सायकैः समराङ्गणे । गुग्गुलीकृत्युर्धेनः, निजिन्वा पूर्ववा अपि ॥ ४२

मुहृतेरुततेर्यस्य, धनयिनानि मुञ्चन । देवस्येव नृदेवस्य, पुत्राऽभूदमृतार्थिता ॥ ४३

करवालकजैः क्राता, वीरागामेय योऽग्रहृन् । धौतां बाष्पास्तुगगर्भिर्निरीरीणा न तु धियम् ॥ ४४

धाराणां सन्मुलान्येव, पद्मानि समरं वतौ । य पुनस्तन्मन्त्रेषु, मुग्गं चक्रे पराङ्मुखम् ॥ ४५

हृदि प्रविष्टद्वारागच्छेनामूर्तिं गिर । जाह्नव्यशोमिपाञ्चन, व्याचक्षोणं परैरपि ॥ ४६

पृथारणप्रमाकृष्टं, नष्टं गवां दत्तुर्वेन । कण्ठां कुङ्कणेनस्य, बधकारं शौः गिरः ॥ ४७

१ इन्द्रं वा० टि० ॥ २ वा द्वापं वा० टि० ॥ ३ "राष्ट्रमयं" गु० ॥ ४ यस्य सान्निध्यशः
मु० ॥ ५ महोदयपतिं प्र० वा० ॥ ६ एतन्नाशानन्तरं यस्याः श्वेतप्राचीनप्रतिद्वयेऽप्यनुवर्तन्मन्त्रान् मुनिपुस्तकैः
टिप्पण्यमधिकमेकं यत्र लिखितं कर्तव्यं । तथाहि—

महोदयपुराधीशजितान्मद्वयर्मणः । कोटीः वण्णयतीहैम्नो, यस्तन्मानमियाऽऽन्दे ॥

७ इन्द्रं पुन्यम्, पक्षे गुरवः वा० टि० ॥ ८ यत्र वा० ॥ ९... ..रते" प्र० । वीतरागरे मु० ।
मुद्रितपुस्तकगतोऽयं पाठः केनचिद् रिक्तस्थाने क्वाचिन्वा धृतिः, न चागौ नवीचन इति ॥ १० "राणां द्वा
न दि" प्र० वा० । निरतिमुत्तमा वा० टि० ॥

रागाद् मृगालवद्वाल-मलिकार्जुनयोर्मधे । गृहीतौ येन मृषानो, स्तनाविव जयश्रियः ॥	४८
दक्षिणक्षितिर्पि ज्वा, यो जग्राह द्विपद्वयम् । तद्यशोभिः कश्चिन्नामो, विश्वं नश्यद्विपद वयम् ॥	४९
विहारं कुर्वता वैरिवन्ताकुचमण्डलम् । गढीमण्डलमुदण्डविहारं येन निर्गमे ॥	५०
पादलानैर्महीपालैः पशुमिश्र तृणानैः । यः प्रार्थित इवात्यर्थमर्हिसाव्रतमग्रहीत् ॥	५१
भूपालोजयपालोऽभूत्, कण्डूमुसमस्ततः । चक्रे वसुन्धरा येन, काश्चनैरनकिञ्चना ॥	५२
दग्धे मण्डपिका हैमी, सह मत्तैर्मतङ्गजैः । दावा पादं गले येन, जाद्वलेशादश्रूयत ॥	५३
जामदग्न्य द्योदामधाममस्तितास्तरः । क्षत्राक्षशालितां धार्मी, धौश्रियनाचकार यः ॥	५४
दानानि ददतो क्तिर्यं, निर्यं दण्डयतो वृषान् । निचमुदहतो नारार्यस्याऽऽसीत् त्रिगैः समः ॥	५५
धृतपार्थिवनेपथ्ये, निम्नान्तेऽत्र शतकतौ । जयन्ताभिनयं चक्रे, मूलराजस्तद्वज्रः ॥	५६
चापरादिव बालेन, रिद्धता समराङ्गणे । तुरुष्काधिपत्तेर्येन, विप्रकर्णौ वरूथिनी ॥	५७
यच्छिन्नलेच्छकङ्काक्षरधलमुचैर्विलोकयन् । पितुः प्रालेखशैलस्य, न स्मरस्पर्शुदाचलः ॥	५८
द्वुत्सुमुन्मिषे तत्र, धात्रा कण्ठदुमाद्भुजे । उन्मगामानुक्त्वाऽस्य, धीश्रीम इति भूपतिः ॥	५९
भीमसेनेन भीमोऽयं, भूपतिर्न कदाचन । यकापकारिणा तुभ्यो, राजहंसद्वयक्षम ॥	६०
मन्त्रिमिमाण्डलकैश्च, बलवद्भिः गणैः गणैः । बालस्य भूमिपालस्य, तस्य राग्यं व्यनग्यत ॥	६१

वीरधवलवंशवर्णनम्

अथ तत्रैव चौलुव्यवंशे श्रान्तावगोष्ठतः । अर्णोरानः स राजर्विस्तं मर्षं न विप्रवत् ॥	६२
धवलस्य मुतेनापि, तेन कृष्णानुकारिणा । राष्ट्रं निष्पण्डकीकर्तुकारमे सुमतेन तत् ॥	६३
विस्फुरत्तीव्रहेतीनां दवानामिव सर्वतः । दुष्टानां व्यथितादिष्टे, यत्कृषाणपयोधरः ॥	६४
विर्विन्वता रुचिं हैमी, द्विपद्वेगद्रायिना । श्वास्तं यस्य प्रतापेन, यमसा च जगन्त्रयम् ॥	६५
आ सम्भवादुद्दृष्ट्य, निर्वृद्धश्च न सङ्गरे । प्राणैरुवापनं चक्रे, निजगौर्यत्रयस्य यः ॥	६६
तत्पुनः प्रसक्तकीर्तिपताकाबुधिताम्बरः । श्रीस्त्रावण्णप्रसादोऽस्ति, प्राप्तावः शौर्यसम्पदः ॥	६७
आकाशमिव चन्द्रेण, पारिन्द्रेणेव काननम् । स्मयं तयाऽनतिरुक्तं, कुलं येन बभूव तत् ॥	६८
जम्भे येनासिदण्डेन, गार्ध, नैडुलनायकः । निघोतेनैव तेनामी, कम्पन्तेऽपापि भूयतः ॥	६९
न नीराक्षस्य सौरान्ये, दोराक्ष्ये शुर्वते कवित् । स्वयमेव पुनः कीर्तिं, हसति प्रनिभुमजात् ॥	७०
तेजस्तदिह दागताहि, दशमस्तक-लङ्कयोः । बभूव मुजयोर्यस्य, राम-लक्ष्मणयोमिव ॥	७१
पुण्डरीकं दधत्येकं, राजहंसाननेकदाः । आकृष्टारियना फेना, प्रेतस्ये यस्य बाहिनी ॥	७२
समन्ततोऽपि सामन्तमोडभैर्निपुणेकिमि । नाऽऽसीत्पुनःपतिनामस्य यस्य सख्यमतिस्ततिः ॥	७३
पुरो मन्दारव वीर्यं यं निकृष्यतया स्थितम् । विनिवृत्तमुपेयापि, धाराप्राक्षपयोधिना ॥	७४
दक्षिणः क्षोगिपालोऽपि, धनसैन्योऽप्यविरुधः । येन सप्रिपरीतेन, पत्त्रियमनि विम्बुम् ॥	७५

१ भोगियस्य इति धोविशकाकरोति वा० टि० ॥ २ वसुदाय वा० टि० ॥ ३ वैव वा० टि० ॥
 ४ 'लां विरू' वा० वा० ॥ ५ 'विस्तं नामर्यत विरू' सु० ॥ ६ धितन्यं वा० ॥ ७ 'पमुदे' वा० ॥
 ८ नडलं वा० ॥ नडलं सु० ॥ ९ 'स्तव सौ' सु० ॥ १० 'स्ये तस्य सु० ॥
 १० २

श्रीवीरधवलस्तस्य, सनुर्वीरशिरोवणि । युद्धे जयश्रियं धन्व्यारावैराजुहाव ये ॥	७६
आत्मानमात्मजे तस्मिन्नेशेमुणमूषणम् । स पिता दर्पणप्राये, सद्कान्तमिव पश्यति ॥	७७
शालुभ्यामिव विक्रान्तो, दन्ताभ्यामिव कुञ्जरः । अशृण्वन् पितृ पुत्राभ्यां, वंशस्ताभ्यां वभूव सः ॥	७८
वृत्तविधमुदाऽनेन, दानेन प्रतिशसरम् । सुतेन जनता तेन, तातेन च समृध्यते ॥	७९
अम्बरातिगराघातजातज्जगन्तोन्मते । वीरलक्ष्मीश्वरं यत्स्यै, वस्तु वक्षसि बाण्डति ॥	८०
वीर समरकासारे, गिरोमि सद् वैरिणाम् । क्रीय पुण्डरीकाणि, कन्दयुक्तानि योऽग्रहीत् ॥	८१
अरातिराज्यशराभिवौतै, प्रघातभूमौ पतितोऽपि यः ।	
गम्भीरवतिन्द्रवलभुराशेर्लब्धेवै गाध पुनरुन्मज्ज ॥	८२
अथैकदा कन्दलितप्रतापसन्तापिताशेषरिपक्षपक्ष ।	
निशावसाने न निशाततुद्धि, प्राबुध्यत श्रीलक्षणप्रसादः ॥	८३
प्रबुद्धमात्रोऽपि कुमारपुत्रमाकारयामास नृपावतंस ।	
पुनोपधे तत् क्रिञ्च राजिदृष्ट, शिष्टाय तस्मै विनिवेदयिष्यन् ॥	८४
समेत्य सोमेश्वरदेवनाभा, नमस्य ते स्वस्ति निगद्य चारुषै ।	
प्रसन्नमूर्ते पुरतः स तस्य, दृष्टादरो विष्टरमाससाद ॥	८५
पुस्तकन्यास्य पुर पुंसरिप्रसादलब्धं लक्षणप्रसादः ।	
वीरेण तेनानुगतं सुतेन, नै स्वप्नमिच्छ कथयाम्बभूव ॥	८६
जानेऽयं त्रियापरमुन्दरीभिर्त्रिगुहद्वारविहारिणीभिः ।	
शृङ्गारितं शृङ्गार भृष्टादिरासुदवानुदधुवन्मनस्य ॥	८७
वृत्तासनं तन्मणिवेदिकाया, जायाद्विहतामर्षतनुं दधानम् ।	
प्रसन्ननयनाञ्जमहं नितामैर्नगपति पूजयितुं प्रवृत्तः ॥	८८
निस्तम्भ पूजामधं गन्मन्त्रो, सैमाधिमुद्राविद्वधामि यावत् ।	
तावत् पूरे क्रामरि वामनेरा, राकाभिराऽऽस्त्रारकर्णमपश्यत् ॥	८९
शेतामृतुच्यं वदनें वहन्ती, शेतामुरा शेतविष्णुना ताम् ।	
शेता वरामे दधती च मालामालेशस्य बाधैर्मनिविलिप्तोऽस्मि ॥	९०
कस्यापि फाडसि त्वमिहासि कम्पादिनि श्रुवे यावदुपायना ताम् ।	
तावत् तपैवाभिहितोऽस्मि कान्तदन्तपुना दत्तसितावपः ॥	९१
हे वीर ! वैजिजिनीमित्रेन्द्रपाण्ड्ये गेरागटनमङ्गचण्ड । ।	
प्रयथिमार्थेन वदथ्यमाना, जानहि मा गुर्जररोज्यलक्ष्मीम् ॥	९२

१ सः पु० ॥ २ 'न्य पासं यज्ञ' पु० ॥ ३ 'प्रपात' प्र० ॥ ४ 'लक्ष्म्यायना' प्र० । 'लक्ष्म्यायना' पु० ॥ ५ पा० आदौ 'पदच्छेदस्तोत्राया' नमस्कृत्ये इति एक पद दमिन्मिति ॥ ६ पुनम् प्र० टि० ॥ ७ इयं पा० टि० ॥ ८ 'कृष्ण' प्र० टि० ॥ ९ 'प्य' प्र० टि० ॥ १० पुनः पु० ॥ ११ 'लामिति' पा० ॥ १२ 'लीमण्डनमण्डल' पा० पु० ॥ १३ 'राजल' पु० ॥

दिवं गतास्ते यत् । गूर्जरेन्द्रास्ते कुञ्जरेन्द्राश्च हेताः सपत्नैः ।	
येषां क्षमाभूदलनक्षमेषु, सुजेषु दत्तेषु च मे निवासः ॥	९३
यो नर्तते सम्प्रति चान्तर्तिपदेऽत्र गच्छ' स बलान्वरीणाम् ।	
क्षमः समप्राणि न निग्रहीतुं, दीपस्तमांसीव तदस्थितानि ॥	९४
ये मन्त्रिणो वेदञ्च च मण्डलीकारतेषु क्षमो नास्ति पराक्रमोऽस्ति ।	
प्रतिक्रिया काऽस्तु ततोऽस्ति येषां, कामो मयि स्वामिपरिग्रहेऽपि ॥	९५
आस्ते सहस्तः स पुमान् न कोऽपि, यो मामिमांमुद्धरते निमग्नम् ।	
प्रहीतुमेते हि' सतां विमृतिं, शतं वितन्वन्ति नराः करुणाम् ॥	९६
सौवस्तिको नास्ति स आमशर्मा, वर्यापितं येन सुयर्मजा मे ।	
गतः स मृञ्जालमुत्तुब्ध मन्त्रैर्यः क्षत्रसर्पान्करोद् विदपन् ॥	९७
न राष्ट्रकूटान्वयकैटमारि', प्रतापमल्लोऽस्ति मृधैकमल्लः ।	
गन्धोऽपि भृत्तारिमतङ्गजानां, गन्धद्विपेनेव न येन सेहे ॥	९८
विना जगद्देवमिमामवस्थां, नीता निर्जेव यरैरिवाहम् ।	
यत्र स्थिते केचिन्नि दक्षिर्त्तैर्न, द्विष्टैः प्रविष्टं पुरि गूर्जराणाम् ॥	९९
अवाप्तवेदाम्बुविरोपसा च, पुरोपसा तेन कुमारनाम्ना ।	
विनाऽयं चैद्यक्षितिपाललक्ष्मी, को मे करिष्यन्वरः सपत्नीम् ॥	१००
या मूलराजान्वयजातराजतेजोभिरासीद् विरमतमल्लः ।	
निशाम्ये साम्प्रतमुद्रसायां, तस्यां न दीपोऽपि नेरेन्द्रपुर्याम् ॥	१०१
निरन्तरं सञ्चरतां गजानां, या द्विष्टिपैरुद्धमरा ध्वनद्भिः ।	
एकाकिनी रात्रिषु गूर्जराणां, सा'भूकरोतीव शिवास्ती पूः ॥	१०२
क्रीडावतीनां गगराङ्गनानां, वस्त्रैः सदा यत्र सरोजसत्ता ।	
सरस्तदद्रूणि किरत्यनाथं, बातास्तपायःक्षणकैनेव ॥	१०३
मुग्धेव खण्डितनिरन्तरकृष्णखण्डा, निष्कण्डुल्वच दक्षितोन्वटवृचनप्रा ।	
दूरादपास्तविषया विषयेव दैन्यमन्येन गूर्जरधराधिपराजधानी ॥	१०४
तेन्मां स्वचक्र-परचक्रनृत्तावशेषां, नि दीपितास्त्रिलसपन ! समुद्धरन्व ।	
यस्माद्मानवचरिष्यविप्रितेन, सम्भावनाऽऽ भवता भुवनेऽर्जिताऽसौ ॥	१०५
एकेन केचिरिषुणा विवृते यदुचेर्मांरेण मद्गुरमिबामुरभूतनीनाम् ।	
तेऽहम् ! वीरधवल्लेन मुनेन भूय', सम्भूय भवत्यमुद्धर सम्प्रति त्वम् ॥	१०६

व्याहृत्य कृत्यमिति सा सहसा च कष्टपाठं निवेत्य विशदामिह पुष्पमालाम् ।
कुत्रापि तत्रैवमस्ती सट् निद्रया मे, याताऽथ धूयामिह जन्पव नै किमेतत् ॥ १०७

इधं वदन्त्य हस्तिप्रतिहस्तक्रोडसौ, संधिस्तिक्तेन जगदे जगदेक्यमी ।
स्वप्नोऽयमर्थमक्रेदर्शनया ददानो, व्याख्यानमिच्छति भवान्निव नैव देव ! ॥ १०८

राज्य ! धन्यतममन्यमहं न मन्ये, प्रस्तौरिर्विश्रुजैवभवतो भवत् ।
या न सृष्टदुपलानपरत् कैदापि, यत् त्वानुपेन्द्रमिव सा वृष्टे त्वयं श्री ॥ १०९

युष्माकामसङ्गान्वयसम्भवाना, न श्यस्यते जगति केन कुर्यान्क्रोडसौ ।
अधोमर्मीमस्ति दुष्मिन्प्रवृत्तौ, या सद्गुरव्यनिरापस्यनौ नु पथान् ॥ ११०

उद्विष्टमनस इवेति मन्मथगये, आदेव सैम्मुम्बुपति न दानुमेना ।
नीगहुरा इव दगान्तमुत्तरेवासत्वेजो निवे सुतुम्बति च मन्मथीका ॥ १११

आनीतमानसि गुणैर्गुणैः स्वर्गवैर्यदप्या नृपथयसिमा सुमदोपभेदेयात् ।
मर्मन्त्रमिन्द्रनुत्तमं मन्त्रमुत्तमं !, ध्यादन्ते नन्ति यथा त्वदेसौ शिवाऽसौ ॥ ११२

त्यदुत्तमं शिवाऽसौ प्रियमर्जयति, नीया समुत्तमं मन्त्रं पुनस्तनाम् ।
रत्नादनी जन्पयो जन्पयन्ति किन्तु मस्त्रागम्य मन्त्रारगय करोति ॥ ११३

विश्वं विचित्रचरितानुरताऽप्युतेन, मेऽथ शीरषद्वै बलराज निपुण ।
गुणमभूमममुदगा शिवाऽ, विना चकार सविदुः पुर्विद्वेषु ॥ ११४

अथ द्वापद्वयं द्वापद्वयं प्रभाते, म च नृपतिर्यथं मन्त्रं गतोपसेदम् ।
त च वर्ज्यमन्त्रो मुद्रिताऽऽतिप्रतिमन्त्रमन्त्रं कथं गाप्यं शिवाऽसौ ॥ ११५

॥ इति गूर्जरेश्वरपुरोहितश्रीसोमेश्वरदेवविरचितं श्रीनिर्वाणमुद्रितानाम्
महाकाव्ये नरेन्द्रचंद्रावर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ ८ ॥

तृतीयः सर्गः ।

वस्तुपालवंशवर्णनम्

- स्सालद्वारेण तस्मिन्नालवालयनुकारिणि । प्रांशुः प्राग्वाटवंशोऽभूत्, पुरे गूर्जरभूभुजाम् ॥ १
- त्वचि साराः परे वंशाः, सदा पत्राणि विभक्ति । क्रियासारेष्व वशोऽयं, धत्ते पात्रपरम्पराम् ॥ २
- नरनैर्यदुत्पन्नैरुद्धूताद्भुतकैन्तिभिः । विम्पिता विशेषेण, जगतीय सरस्वती ॥ ३
- मन्त्रिमण्डलमार्तण्डश्चण्डपः प्रथमः पुमान् । कुले तस्मिन्नुदेति स्म, तैमसामवर्सानकृत् ॥ ४
- चौगव्यादिव चातुर्यं, गिरमाद्विग्मादिव । अम्मोघेरिव गाम्भीर्यं, यः शुभैकार्धोऽग्रहीत् ॥ ५
- न च्छिद्रं क्षुद्रमप्यत्र, मन्त्रिराले निवेगितम् । धात्रा केनै प्रकरणेन, सोऽनुत्पूतगुणः कृतः ? ॥ ६
- मानी नामन्यत स्त्रग्ध्यां, यः त्रिधं सरसीरुहाम् । यैर्मनागपि न न्मानमिर्नपादायधीरितैः ॥ ७
- तद्वृक्षण्डमसादोऽभूत्, गङ्गाडिण्डीरपाण्डुभिः । बगोभिः ककुमां येन, चक्रे ध्रुवगडमण्डनम् ॥ ८
- फदाचिदपि न त्यक्तः, पाणिपद्मगृहीतया । गेहिन्येव यदाग्न्योऽयं, नृपन्यापासमुदया ॥ ९
- दृढुर्वागी मतिस्तीक्ष्णा, साधुः श्रीः कीर्तिरिवरी । वीतरागे मनो यस्य, स्त्रीतरागे करद्वयम् ॥ १०
- यः परामृतकूरैः, कीर्तिपूरैर्नित्तरम् । त्रिं विरचयामास, राकामाकालिक्रमिह ॥ ११
- सोमः समुद्रतस्तस्यादुज्जगाम मनोरमः । सवित्री जातमात्रेण, येन बौद्धि विबुधे ॥ १२
- अपूर्वः कोऽपि सोमोऽयं, फलद्विक्रलकृतिः । न हि पारंपुररकारं, चक्रे भावं च नो भवे ॥ १३
- निदधे गुणालनां, यत्र क्रोशः स्वयम्भुवा । तत्र श्रीसिद्धरामोऽपि, स्वनक्रोशो न्यवीविशत् ॥ १४
- स्य मेने येन सोमेन, पूर्णेनाम्भर्णवर्तिना । गृहीतानन्तमोगः श्रीसिद्धेशोऽधिक्रमीश्वरात् ॥ १५
- सौवित्रं विभ्रता तेजः, सीतां च सहचारिणीम् । काकुत्स्थेनैव येनापि, न दीनातिक्रमः कृतः ॥ १६
- अमैयमहिमा श्रीमानश्चराजस्ततोऽभवत् । येन दानार्द्रहस्तेन, हस्तिराजोऽप्यजीयत ॥ १७
- तैर्मनिर्यतरयागस्थगिताप्रितदुःखितैः । निजैरेवेन्द्रियैर्लब्धा, कामना न मन्नागपि ॥ १८
- आनतं न्यायतो वित्तं, न्ययितं धर्मरुमेमु । यगस्तु जगति स्तुत्यं, केवलं यस्य तिष्ठति ॥ १९
- प्राकृतां रेणुकावापां, स्मरन्ननुशयादिव । भानुर्विदोषनधमे, मर्त्ति यः पुरैरुपोतमः ॥ २०
- वन्मया जलेन मासाननुवास दक्षैव यः । हृदयाम्भोरुहे तैरेव, यावज्जीवमियं पुनः ॥ २१

१ 'रस्यर्ष' प्र० वा० ॥ २ 'इष्टा' तेजस्य प्र० टि० ॥ ३ समसां दुष्टानाम् प्र० टि० ॥ ४ अन्न प्र० टि० ॥ ५ 'आणिक्क्या' वा० ॥ ६ 'स्ते' न्यवेदयत् । घात्रा(ता) के' मु० ॥ ७ तथापि प्र० टि० ॥ ८ 'इन्-एष', पाद-किरणाः, अवधीरित-अवगमिनः, अनस्तमोमार्गः प्र० टि० ॥ ९ अकालव्रतम् प्र० टि० ॥ १० मरणं कामध प्र० टि० ॥ ११ मर-संसारः शिरस्य प्र० टि० ॥ १२ श्रीसमिद्धः सोऽधिक' वा० । श्रीसमिद्धोऽधिक' मु० ॥ १३ सतिष्ठा इदं सतिगुरिरयम् प्र० टि० ॥ १४ परमा' प्र० ॥ १५ निजैरिये' मु० ॥ १६ 'गतं स्तु' प्र० ॥ १७ पञ्चमी प्र० टि० ॥ १८ परस्य प्र० ॥

सतत सचिवश्रेणिमणिकयस्याहसद्भिनी । काता कुमारदेवीति, तस्य कान्तिस्त्वामवत् ॥ २२

स्वामाधिकेन शैचेन, माया सुमनसागपि । प्रवाहा इव जाह्नव्यास्तया सूता सुताख्य ॥ २३

मुख्य श्रीमल्लदेवास्यो, वस्तुपालाद्वयस्तत् । तेजःपालामिष पश्चात्, त्रीं भाति त्रीय सा ॥ २४

गुरुपाणामिमास्तेषां, परेषामिव भूतेश । त्रिधा निमिवमाना अप्येकैव परमार्थत ॥ २५

स्वयं शुद्धेषु यत् तेषु, गुरुणा शौचमिक्षणम् । पनसारपरम्परा, मार्जनं भौक्तिकेषु तत् ॥ २६

तैलघ्नं मल्लदेवेन, यत् शुभं विमलम् यत् । शिष्टैर्न विष्टेषु दष्ट, कैव कैवजया ॥ २७

इवती मल्लदेवस्य, क्रौस्तुमेन विभिन्नता । जिनो हन्ति यदेतस्य, जिनस्य त्वपर सदा ॥ २८

वस्तुव वस्तुपालस्य, सैर वेति सस्त्वना । तदीयरदनाम्भोज, या वस्त्यनुवासरम् ॥ २९

स्थितं पुरुषयोर्मये, पूर्वजानुजबोस्तयो । मन्यते मध्यमं यत् स्वमुत्तमं स जन पुन ॥ ३०

क्रिमस्तु वस्तुपालस्य, मन्त्रोद्भो साम्बमिन्दुना । यद् दत्ते वस्तुधाम्भ, सुधामेवापर पुन ॥ ३१

वृद्धि-यप्रो-शास्त्रात् स प्राप्नोति यथा यथा । क्षमालङ्करणं केषा नाश्रय स्यात् तथा तथा ॥ ३२

पद्मिरव गुणैर्न काऽपि कीर्तिपटी कृता । वसुधा घाट्मोधिःसहिता पिहिता यथा ॥ ३३

गये मनसि साधूनां, यो वसयनुवासरम् । यदनुकोऽपि जानाते, विष्टे च तदीप्सितम् ॥ ३४

अहङ्करोति नावान् त्वङ्करोति न सदगुरुन् । य पुन प्रनाम्भे दुहरोति विरोधिन ॥ ३५

दयिता ललितदेवी, यस्य सबाह्वाहारिणी । अर्धाह्वाहारिणी पत्यु, पार्वती हमतोर या ॥ ३६

तस्माद्वशात्तज्जीभूतान्, मुक्षेत्रेऽस्मिन् सुताहुर ।

जयसिंहाद्वय सोऽथ बालोऽपि फलित सताम् ॥ ३७

पूर्वं सर्वेऽपि तार्थ्यते, निस्तार्थ्यते तथाऽर्थिन । एतेन यस्य पोतेन, प्रतार्थ्यते न तु प्रजा ॥ ३८

तेजःपालः पुनस्तेषु सोऽपि लघु फलित । निजप्रभुप्रमादेन, गुरुणाऽपि न लङ्घ्यते ॥ ३९

ऊर्ध्वं शास्त्रे श्रुताऽस्माभिर्लघुताऽपि क्वचिद् गुरो । तस्मिन् बन्धुजने दद्यात् गुरुताऽस्य लघोरपि ॥ ४०

अश्वराजानाश्वेतौ, नासत्यापवृत्तौपथे । सम्प्रति प्रनिवृत्तौ, सर्वमप्यातुर जगत् ॥ ४१

अमी सुमनसस्तेन, स्पर्धन्तामुदता कथम् । सोऽपि मदबुद्धिना येन, जित सुमनसा गुरु ॥ ४२

अपूर्वं तस्य वैदुष्यं, यद् दिक्पाले स्वभुञ्जता । समानैर्दामि सार्थं, मन सन्ध्यादामि मे ॥ ४३

शुमत्स्वनावमालोके, लोकैऽप्यिन्दिमेव तम् । यदुक्तं तत् करोयेव, यत् कृतं तन्न यति य ॥ ४४

उपदेश्य वृत्तीं पुता जिने तेषां न केनञ्च । अपि य स्तुति-ब्राह्मणा, सैवित्तेन्दुर्यनृह ॥ ४५

उपकृतां सतान् वैरफकारयिता च य । हस्ते हि मरुत् ताप, हारपयपि कारिदे ॥ ४६

वायवेबोद्धति नीत, शिवा दृगसम पुमान् । ममा वज्रनि न त्वेपि शिखरीबोदयवपि ॥ ४७

सर्वं मन्त्रिमागित्यं, धौजनयमिह ममह । वसुधावलये येन सदान्दोदय कृत ॥ ४८

यप्यनुपमा जाय, प्रेयसी तस्य मन्त्रिण । मूया तथापि मयेऽहमेना मनाह्वाजामिव ॥ ४९

लान्धयसिंहनामान, मा लावण्यमर्चिना । तनय जन्ममास विनयावर्जितप्रजम् ॥ ५०

१ शौर्येण, मां सु- ॥ २ यज्ञ सु- ॥ ३ सत् सु- ॥ ४ यत् सु- ॥ ५ 'हस्ये सु- ॥ ६ 'तच्चिथो दुर्ग' सु- ॥ ७ चापि' य' ना- ॥ ८ 'निमम् सु- ॥

वस्तुपालत्तेजःपालयोः मन्त्रिमुद्रार्पणम्

भूमिभर्तुरथ कर्तुमिच्छतस्तस्य सत्पुरुषसङ्ग्रहं श्रिये ।

एकदा हृदयमागताविमौ, दीप्तगीतकरणाविचाम्बरम् ॥

५१

तद्गुणान् निपुण्या मनीषिणामप्रणीर्धिपण्या विपृश्य सः ।

आलुहाय च समागतौ च तौ, कार्यसिद्धिरविलम्बिनी सताम् ॥

५२

तत्र तौ ददृशुः शतक्रतुप्रायमायतभुज महीभुजम् ।

सानुजं च सचिवं स दृष्टवानर्थजुष्टयिव धर्ममयतः ॥

५३

तावुपायनमुपायपण्डितौ, मण्डितौजसिकपद्धतेः पुरः ।

उद्वेगस्थ चरणद्वयं मुदा, तस्य वीरतरणेः प्रणेमतुः ॥

५४

तेन वेनतनयानुकारिण्य, कर्तुमात्मकरणाधिकारिणौ ।

सप्रसादवदनेन सादरं, सोदरौ समुपवेष्टिताविमौ ॥

५५

तस्म निर्दलितभूमिभृतः, स्वर्षतिप्रतिवृत्तेः कृतासनौ ।

अश्वराजवनुजौ रराजतुस्तौ सुरा-ऽभ्युपगुरुपमौ पुरः ॥

५६

एतयोर्विनयनम्रमस्त-रुचस्तसम्पुटितपाणिपद्मयोः ।

निर्भेने समदशत्रुदन्तिनामङ्गः स कुशलानुयोजनम् ॥

५७

नीलनीरदस्वानुवादिना, नादयन्त्र दिशः स्वरं सः ।

तौ पुनश्चरितपातनज्जितौ, वस्तुभारहत मारसनिगमः ॥

५८

आकृतिर्गुणसमृद्धिर्गतिनी, नम्रता कुलविशुद्धिस्त्विका ।

याकृतमः कथितशास्त्रसङ्क्रमः, संयमश्च युवयोर्वयोऽधिकः ॥

५९

श्लाघ्यस्तां कुलद्रुपैति पैतृकं, स्वात्मनोरथतरुः फलेप्रदः ।

उन्नमन्ति यशसा सह श्रिय, त्याग्मिनां च पुरुषैर्मेवाहृतैः ॥

६०

यौवनेऽपि मन्त्रानां विप्रिया, नो धनेऽपि विनयनप्रतिभम् ।

दुर्जनेऽपि न मनागनाज्यं, केन धामिति नवाकृतिः कृता ? ॥

६१

आदयोस्तु पित्र-पुत्रयोर्महानादितः वितिभारः पुरदुहा ।

नद् युवां सचिवपुद्गवावेहं, योस्तुमत्र युगपद् समुत्सहे ॥

६२

विशुदञ्चलचलाचलां श्रिये, सन्निवेश्य सचिवेषु साधुषु ।

सम्प्रहारभरसम्भृतप्रगाः, शैरते सुस्तम्भी क्षमायुजः ॥

६३

येन केन च सुपर्माकर्मणा, भूतलेऽत्र सुलभा विभूतयः ।

दुर्लभानि मुकुतानि तानि यैर्विभ्यते पुरुषरत्नप्रचमम् ॥

६४

महिषतुर्मुञ्जपुगेन सयुगादाहतां जिनयुगाश्रया श्रियम् ।

अक्षैरक्षणचिचक्ष्णौ युवां, नित्यमेधयतमिदया श्रिया ॥

६५

इत्युदीर्य मुजवीर्यशाम्बिना, मुदिता दशनचन्द्रिकाश्रुना ।

वस्तुपाल्वदनाखिन्दत, स्पन्दते स्म मधु वाम्भय तत ॥

६६

देव । सेरुजन स गण्यते, पुण्यवस्तु गुणवसु चाप्रणी ।

य प्रसन्नवदनाम्बुजमना, स्वामिना मधुरमेवमुच्यते ॥

६७

सप्रसादवदनस्य भूषतर्प्य यत्र विलसति दृश्य ।

तत्र तत्र शुचिता कुञ्जीनता, दम्भता सुमगता च गच्छति ॥

६८

जायते जलदृष्टवृष्टिभि, शस्त्रिनौ सफलता जनै जनै ।

तुष्यता कितिभता नु दृष्टिभिस्तम्भनादपि नृणा पञ्चोदय ॥

६९

नास्ति तार्थमिह पार्थिवात् पर, यन्मुराराम्बुजविलोकिनादपि ।

नदयति द्रुतमपायपातरु, सम्पदेति च समाहिता सताम् ॥

७०

जीरनाय मनुजमनामिह, भ्राम्यतामथ रुदापि स प्रभु ।

त्वादृशो भवति भाग्ययोगिनो, वेत्ति य सदसता यदन्तरम् ॥

७१

क्रितु निजपयिताश्रमि क्रिञ्चन, स्वामिना तदवधार्यता हृदा ।

न्यायनिपुणतरा गिर सता, श्रुतमर्थधिकृतिस्तत्रैव यत् ॥

७२

सा गता शुभमयी शुभमयी, देव । सम्प्रति युग कलि पुन ।

सेवकेषु न कृत कृतज्ञता, नापि श्रुतिषु यत्र द्रव्यते ॥

७३

तै राजान स्वर्गताधकिर यैवैरैर्विस्मयापतीना प्रवधा ।

तेऽपि प्राप्तास्तत्र समन्त्रिणो ये, भोक्तास्तेषा शोषयन्ति स्म शुद्धा ॥

७४

दृष्टिर्नष्टा श्रुताना तमोमिले लोमाधान् साम्प्रत कुर्वतेऽग्रे ।

यैर्नोयन्ते वर्मना तन यत्र, अक्षय्याद्यु न्यात्रास्तेऽपि तेऽपि ॥

७५

न सर्वथा कथन लोभार्थं, करोति सप्रामनुयासर रिमो ।

तथापि कार्य स तथा मनाविभि, परत्र वाधा न यथाऽत्र बाध्यता ॥

७६

पुरस्त्रन्य वाय खलजनमनाद्य सहजानरीन् निर्जित्य श्रीपतिविरतिमाधिय च यदि ।

समुद्रर्तु पैत्रीमभिलषति तन् सैर शिग्सा, भूतो देवादेन स्फुल्लमवरया त्वस्ति भवने ॥

७७

सविबवचनमेतच्चेतसा सोसवेन निमित्तैर्लित्फलोऽय कर्षयमाकार्य सम्यक् ।

अकृत कनकमुद्राकान्तिकिञ्चकसाद्र कस्तरसिजकुम्भ मन्त्रियुग्मस्य तस्य ॥

७८

अवनिपतिनेन मुरियाम्ना, सचिरकुणेन निराद् विराजमान ।

पत्तणपतिरिवारिनागनादा जनयति पम्पुणेन सयुग स ॥

७९

॥ इति श्रीगूर्जरेश्वरपुरोहितश्रीसोमेश्वरदेवविरचिते श्रीतिस्नीमुदीनाम्नि

महाकाव्ये मन्त्रपतिष्ठा नाम तृतीय सर्गः ॥



१ वाङ्मय वा० सु० ॥ २ ना फल्लना प्र० ॥ ३ 'रैर्वैरुद्वा' वा० सु० ॥ ४ 'मित
वा० ॥ ५ धार्त्रि समन्त्रिणसि तच्छेद वा० ॥ ६ 'य कृत्स्नया' सु० ॥ ७ मन्त्रिस्थापना
नाम वा० । मन्त्रिस्थापनो नाम सु० ॥

चतुर्थः सर्गः ।

वस्तुपालस्य मन्त्रिवावदाताः

- श्रीश्रीरस्व परोदारपुरीमस्त्योपधारणम् । चक्रतुः सचिवावेतौ, पादौ सुरगिरिव ॥ १
- ताभ्यां कल्याणरूपेभ्यां मन्त्रिम्यामधिकारिकम् । नृपाखण्डलरान्यश्रीः, कुण्डलाम्यामिव व्यैभात् ॥ २
- न्यायं निवेद्यकुञ्ज्या, निव्यजिः स्वजनः सताम् । स्तम्भतीर्थे जगाम श्रीवस्तुपालो विलोकितुम् ॥ ३
- स्तम्भतीर्थे स्थितस्तीर्थप्रभाव इव मूर्तिमान् । केषां मुणोप नो दोषनाप्सितानि ददौ च यः ॥ ४
- तन्मयमिव सध्रीकं, समुद्रमक्लोकयन् । ईर्ष्येव पयोभङ्गैर्भूभङ्गं विदधेऽन्वुधिः ॥ ५
- कौड्यपूर्वः समुद्रोऽयमपापः पृथिवीतले । यस्मात् प्रसरति स्वादुरसप्रा सरस्वती ॥ ६
- प्रविवेश पुरे तत्र, स पश्चान्मन्त्रिसत्तमः । तस्याऽऽमने तु पौराणां, प्रमोदः प्रथमं हृदि ॥ ७
- हरे हरे पटोत्तमस्तोरणं च गृहे गृहे । पुरुषे पुरुषे प्रीतिः, सप्ताप्ते तत्र मन्त्रिणि ॥ ८
- धान्यैर्धन्यमिव क्षेत्रं, फलैरिव फलं वनम् । सरः पूर्णमिवागोमितेनाऽभूच्चरु तत् पुरम् ॥ ९
- मूर्तिप्रैहरिवाऽऽक्रम्य, मुक्तमन्यैर्नियोगिमिः । प्रीणात्येप पुरं मन्त्री, नक्षत्रमिव चन्द्रमाः ॥ १०
- पुरं रोगैरिव प्रस्तमपरेरधिकारिमिः । सैद्वैद्य इव तन्त्रज्ञो, मन्त्री प्रतिकरोति यः ॥ ११
- कैनाऽप्यन्येन वा चक्रे, सनां पीडाऽधिकारिणोम् । वार्यते वस्तुपालेन, सा सप्प्रत्यधिकारिणा ॥ १२
- प्रयावृत्तिः कृत्स्नयेव, कलेरिव गलग्रहः । कलेः पुनरिवोत्थानं, स मेने सुमनःशतैः ॥ १३
- निशासु नीचसम्भोगसम्भूतधनकामना । सत्यत्र मन्त्रिमाणिक्ये, पाणिक्वयेनापि तत्यजे ॥ १४
- सर्वत्रोच्छ्वसितं सद्भिः, खलानां म्लानमानसैः । निराकृतदुराचारं, व्यापारं तत्र त्वचि ॥ १५
- सांयात्रिकजनो येन, कुर्वाणो हरणं नृणाम् । निषिद्धस्तदभूदेव, धर्मोदाहरणं भुवि ॥ १६
- सृष्टाऽस्तृष्टनिषेधाय, विधायवाधिनेदिकाम् । पुरंस्मिन् वारितत्तेन, तत्रविक्रयविप्लवः ॥ १७
- धात्रा स्थानेषु भग्नेषु, ताम्यतामाश्रयः सताम् । सद्रक्षः सदगुणश्चायं, पदाबास इवानवत् ॥ १८
- स्वामिना सैप्रसादेन, पाणिर्क्येपि मुद्रितः । तथाऽप्युमुद्रितस्तस्य, वितविश्राणनक्षणे ॥ १९
- स्निधैः सम्भाषणैश्च, यस्य द्रविणवर्षिणः । अर्थिनामुपशान्त्यन्ति, दौःस्थ्यनिःधासबायवः ॥ २०
- स्थानवष्टस्य यः साधोराधारः सारवत्तया । जटाजूटः सुरतःश्लोघवाहस्येव शम्भवः ॥ २१
- लोकैऽस्मिन्प्रवमन्वाने, जाने वैतापयमावताः । सरस्वत्यास्पदं तीर्थमेव यं सिधियुगुणाः ॥ २२
- महतां वर्त्तमानानां वित्तेनोपकरोति यः । स्वर्गानां नर्त्यतृकान्नोद्वरणेन तु ॥ २३
- प्रासादात्तेन देवानामुद्भवाः कारिताश्च ये । नक्वमेव विख्यातमसङ्ख्येयमि तेर्ष्वभूत् ॥ २४

१ 'रूपिण्यां' सु० ॥ २ व्यधात् सु० ॥ ३ 'जः सुमनः वा० । 'जः सुजनः प्र० ॥ ४ तद्
 दैद्य प्र० वा० ॥ ५ 'रिण' प्र० सु० ॥ ६ सत्प्रसा' सु० ॥ ७ 'वां वित्तमाना' सु० ॥ ८
 'रत्नोत्तिकी' वा० ॥ ९ ते प्र० वा० ॥ १० 'येष्व' प्र० ॥

यन्मून यत्र यत्तदं, यस्तत्र तदचौरुत् । उषत्तिरुत्तमाना हि, रिक्तपूरणहेतवे ॥	२५
अरूपयदेनन्यानि, देवेभ्य काननानि य । हस्नेत्राग्निनापस्य, यत्र न स्मरन्ति स्मर ॥	२६
रम्भासम्भाषितैर्यस्य, वनैर्नृपनिषेवितै । मनोजसुमनोरगै, स्वर्गसौन्दर्यभाददे ॥	२७
सङ्गहानानि हारीन् शुक्र चित्रदिग्गण्डिभि । धर्मगात्रसधर्माणि, यस्वोचानानि रजिरे ॥	२८
दर्शयन् सुमनोभाव, श्रीमत्तामसुल्लभयम् । काननाना स्वच्छूना, स्वच्छूनामिवाऽक्रोत् ॥	२९
सरासि राजहंसाजीगार्लं ययमचौरुत् । तेनैव तुल्यता वेपा, स्यादस्तावनया तथा ॥	३०
आददाना पयःपूर, यकासारेषु कासरा । विराजन्तेतरा पारावारिविव पयोधरा ॥	३१
अकारयद्य शार्पारपापीय जित्यस्त । सुधाया अपि साधुर्ध, अम्लैर्गन्धस्तितान् ॥	३२
ता प्रपा करितास्तेन, अदीय पिबता पय । नृप्यन्यास्यानि पाण्याना, न रूप मन्पता दृश ॥	३३
भनार्णरतरी ब्रह्मपुरी येनात्र निर्ममे । यस्या गायन्ति सम्मानि, नरा नार्यस्तु तंषम ॥	३४
सुदृढ वेपयता शुभै, कर्तिवृद्धै पदैरिव । वृक्षाऽपि ब्राह्मता येन, विष्णु चेताम्बरनयम् ॥	३५
येन पौषधशालास्ता, कारितास्तारितात्मना । मय्ये चेताम्भैर्गयांसा, विशुद्धि सुधया बहि ॥	३६
यस्य पौषधशालासु, यतय सवसन्ति ते । सदा येषामद्रागागामाम्भुसम्भवे बुत ॥	३७
ज्ञानाख्ये यस्य तच्चभुषांवादेवी ददे मुद्रा । नित्य येनैव धर्मस्य, गतिं सुखमामपिभते ॥	३८
अय जगति मथ्यरथ, स्पष्ट सृष्टिवृत्ता वृत्त । धर्माव्यानन्तरेतस्य, स्थिता सर्वेऽपि दावति ॥	३९
नानर्च भक्तिमान् नेमी, नेमी शङ्कर केदारौ । जिनोऽपि य मवेदना, दानाम्भ कुरते करे ॥	४०
लभते लोकत पापा, प्रापानये नियोगिन । अतिकारमधिकारममात्य पश्यसौ पुन ॥	४१

सिंहनराजस्य गूर्जरदेशोपरि अभियोगः

अथ गूर्जरराजराजश्री, रमणीया चरचतुषा निरीक्ष्य ।

दृष्ट्वा द्रुतमादंदेश दूताग्नेन तसद्ग्रहणाय दक्षिणेन्द्रः ॥	४२
श्वेतसिंहनभैर्यसिंहनायप्रसूरा गूर्जरराजराजभाषी ।	
हरिणाव हस्तिमुखावलोच, चरितान्त करणा मुदुधकार ॥	४३
गृहभारभते न कोऽपि कर्तुं, कुरत कोऽपि न सद्ग्रह कजानाम् ।	
रिधरता बन्धनापि नैति चेत, परचरागममद्वन्द्या प्रजानाम् ॥	४४
अवधीरितथाप्यसन्नयाना, बहुमान शङ्कपु मानवानाम् ।	
विषदामुदये हि दुर्निवारे, शरण चक्रसुदव देहमानाम् ॥	४५
समुपैति यथा यथा समीर, श्लिगजन्तकिना मद्रात् तदानीम् ।	
परत परतस्तथा तथाऽसौ, जनता जातमयोधूया प्रयानि ॥	४६
तदयेव जयेन यादवेन्द्रोर्नयमागच्छनुच्छरीरैर्वर्गम् ।	
भुट्टीभुट्टिश्च चरार कोपादन्वि श्रीश्वणप्रमाददेवः ॥	४७

१ 'दनेकानि सु० ॥ २ यद्यपि वा० ॥ ३ य यद्यपि ॥ ४० ॥ अथ कथारोपरि प्र० आदये
बुत इति रिज्जरी कृत यद्यपि ॥ ५ लोभत वा० सु० ॥ ६ 'यादवेन्द्र' प्र० ॥ ६ 'यादवेन्द्र' प्र० ॥
७ 'रगर्भम् सु० ॥

उपकण्ठमकुण्ठविक्रमस्य, स्फुरदुत्सप्रसरो हरिण्यायी सक् ।	
शुशुभेऽस्य चुलुक्यभूपल्क्यैः, भयवत्या निहितेव बाहुनङ्गी ॥	४८
परिपन्थिवैरुथिनीं प्रभूतां, स नृपस्तुच्छपरिच्छपरिच्छदोऽप्यगच्छत् ।	
चलिनाऽप्यरिणा रजप्रवृत्तौ, सुभटानां हि पदानि संस्नुस्तानि ॥	४९
बलधारिधिराजमाम शत्रोरुपतापीतटसुर्वरोषतापी ।	
रभसादभिभावति स्म वीरः, स महीतीरमर्द्धान्बाहुगतिः ॥	५०
प्रचुरं तदरातिराजचक्रं, तदङ्ग्यं च बलं चुलुक्यमर्तुः ।	
विशृगम् बहुशोऽपि सन्दिहानो, न जनो निधिनुते स्थितिं गतिं वा ॥	५१
रिपुसैन्यनिवेशभूः प्रजानां, विविताऽमृदन्निवेदिताऽपि वृतैः ।	
गगनाङ्गगाहनोन्मेषैस्तज्ज्यलितग्रामसमूहभूमकूटैः ॥	५२
भृगुकञ्चमर्द्दमर्द्दानसस्यां, नरतस्तानचिरेण वृष्णिचर्मान् ।	
न बहून्पि दुर्जयानञ्जयः, समरेऽन्यत वीरकेसरी सः ॥	५३
प्रसरत्यथ मरुतप्रभवे, द्रुतमेवेन रजोत्थगं कृष्णाम् ।	
अपरेण सुतं करेण वीरं, सहसा सपत्तिं यात्समेप दधे ॥	५४

षट्पुर्णं मरुभूपानां लाट-गोद्रहट्टपमोश्च गूर्जरजोषर्पभियोगः

क्षितिपान्तरविग्रहप्रसक्तौ, पितृ-पुत्रावथ विग्रहीतुमेतौ ।	
विवितावमरेश्वराश्चतुर्भिर्मरुभूपैः सहसोपचक्रमाते ॥	५५
उभयोरेनयोश्चतुर्मिशिर्विग्रहीनिर्विहिताऽथ साऽपि पृष्ठे ।	
इयतैव बुभैर्विभवनीधं, सुभटत्वं गृध्रगुप्तिं यस्य यावत् ॥	५६
अथ गोद्रह-लाटदेशनाथो, मरुनाथैर्निवृत्तं निवद्वसन्धी ।	
विधुरे परिदृश्य तत्र मित्रद्वितयं तत्कटकादुपेतुत्तान् ॥	५७
असतोर्गलं सयोः सतोर्बा, सप्रलं स्यं मनुते स्म नैव वीरः ।	
जलभिर्दिनैरुपागतैः रथानद्दिं विधोदचकलैः क्षयी नयी वा ॥	५८
पुरतो यदि सिङ्घनस्य सैर्यं, यदि पृष्ठे मरुभूशुभ्रजथ तौ च ।	
न बभूव नयोर्विन्ध्यशःस्थोर्मुखरागस्य विषयं सथाऽपि ॥	५९
पुरतः सतो यदुग्रवीराननुगच्छन् समरे करीर्षं सचः ।	
व्यथिनं प्रतिपार्श्विनैः स पश्चात्, सपदि व्यावृष्टे नृप सकोषः ॥	६०
जगति ज्वलिताग्निलब्धदेशः, प्रचुरीभूतमल्लिच्छचप्रचारः ।	
स परस्परविग्रहो ग्रहणाग्निव तेजाममवनेश्वराणाम् ॥	६१

१ 'दा हिरण्यं' सु० ॥ २ 'धम्बा', चलयत्या बा० ॥ ३ 'विक्रं' प्र० वा० ॥ ४ 'सन्मुखां' प्र० वा० ॥ ५ 'विधोघनी' सु० ॥ ६ 'यत्कं' सु० ॥ ७ 'दि' नद्योषजलैः प्र० । भिय उदय इति एतपामानी द्वौ महानरौ ॥ ८ 'य' सत्तम । ९ 'यं' वा० ॥

भवलोत्पन्नं चुल्लस्यपार्थिवौ तौ, विपरितैर्बहुभिर्नृपैः परितौ ।	
खर-शीतकन्याविवाचुवाहेर्जनेतेयं मनुते स्म दुर्दिने तत् ॥	६२
चलितेऽपि चुल्लस्यपार्थिवेऽस्मिन्, न वृत्तं तैर्यदुभि पुर प्रयाणम् ।	
हरिणैरनुगम्यते न मार्गो, हरिणा तक्षणमाश्रितोऽस्ति ॥	६३
हरित परिहृत्य चन्दनोद्वेग गन्तुं हिमभूयन् ग्रहत् ।	
अमवल्लवणमसादधत्, प्रसरत्तत्रतरप्रसापरीऽ ॥	६४
सहजा इति येषु यत्तुबुद्धि, प्रयमाऽमृदय तान् विकारकर्तुन् ।	
पडपि द्विपतो विशृष्य जेतुं, नृपवीर न पुरैश्चकार योगम् ॥	६५

वस्तुपालस्य भेदनार्थं श्वद्वराजेन दूतस्य भेषणम्

प्रयुक्तेऽथ मेहाक्षितां निरोधे, क्षयसिन्ध्याविव सिन्धुराजह्वयुः ।	
प्रगिधि प्रणिधाय मन्त्रिणेऽधै, तृणरदं विषमपि स्मयेन पश्यन् ॥	६६
चुल्लकोद्धवम्पतेरबाधं, अयकालेऽपि निराकुल तमेत्य ।	
प्रगिधि. प्रणिधाय च प्रवीणो, विनयैश्छन्नमदामुवाच वाचम् ॥	६७
सुमदैरपरैर्विमुक्तमल, समरोर्वापु य एर एव धत्ते ।	
अथवा भुवने निगधयाणां, वरणं किन्तु तथाविधैर्विनाऽस्तु ॥	६८
दलितेऽपि दले स्थित समित्या, यदुभिर्यो बहुभिर्भूत कथञ्चित् ।	
दृढयेषु गुणाजितेषु तेषामपरंपरामपि विधम जगाम ॥	६९
विधुनेऽपि मुनेऽत्र तत्सप्रित्री, न सपराकृतमानसा तथाऽभूत् ।	
समो हि अयद्भोऽपि न्याज, समसत्त्वेन न येन तज्जिताऽसौ ॥	७०
भवलोफितमात्र एव गुभैर्यदुसिद्धेन विमोच्य सिद्धेनेन ।	
निदधे भुजपञ्जरं स्वयं य, क लभने गुणिनो हि न प्रतिष्ठा ॥	७१
विधुनेऽपि न मुञ्चते निर्धं य, कुलधर्मं च कुलान्वयप्रदीप ।	
स यदाह मदाननेन शङ्कः, शृणु तन्मन्त्रिजिरोमणे ! स्वपदम् ॥ कुलकम् ॥	७२
विप्रेऽपि कथं स वृत्त्यमार्गे, स्तक्तु श्रीशृणुमसादधुनः ? ।	
प्रददानि पदे पदे प्रबुद्ध, सचिवो यस्य भवान् करावल्ग्वम् ॥	७३
निपुणेऽसि गुणेषु पदसु जाने, पुनरपि तव धीरता कुतस्तथा ? ।	
न्यसने समुपरिष्ठतेऽपि मर्त्यैर्दण्डैः, सुप्रेऽधिकारमेवम् ॥	७४
अयि ! वेति भयानपी-जं यन्, पिन्मुक्तिर्मम पत्तनं यदेतन् ।	
स्वधनग्रहणार्थमायनोऽहं, समयज्जोऽसि तदर्थनामिदं मे ॥	७५

१ पुनर्युः सु० ॥ २ बहीधृतां सु० ॥ ३ 'गच्छिष्य' वा० ॥ ४ 'तेष्वप्य' वा० ॥ ५ 'रेऽपि म' वा० सु० ॥ ६ 'पि यन्' वा० । 'पि यन्' सु० ॥ ७ 'मिहने' वा० ॥ ८ 'तिष्ठा' वा० ॥ ९ 'स सत्य' सु० ॥ १० 'इ' पुरुषाधिकारमेव सु० ॥ ११ अपि सु० ॥

यदि सम्प्रतिषचिरस्ति चित्ते, नगरस्यास्य निवोगवासना च ।	
प्रणम द्रुतमेव तत् प्रसन्ने, मयि द्वे न तनाधिकारमुद्रा ॥	७६
अपरोऽपि विधास्यतेऽधिकारी, नगरे कश्चन पैतृके मयाऽस्मिन् ।	
भजसे यदि मां ततः स्थिरैव, त्वयि मुदाऽस्तु गुणा प्रियाः प्रमृगाम् ॥	७७
अथ चेन्नसि किञ्चिदन्यथा ते, स्थितमास्ते तदपि प्रियद्वरं नः ।	
यदसाव्यविरोधिसौमनाय, प्रतिभैरेव ममास्ति सहृगदण्डः ॥	७८
अवलम्ब्यलोभमाश्रितो यः, प्रमुक्त्यर्थेन मन्यथा करोति ।	
कुपितेन स तेन दण्ड्यमानः, सह भवेन ददाति निजजातम् ॥	७९

सिन्धुरानदृतं प्रति वस्तुपालस्य प्रतिवचः

अथ स व्ययितोऽपि तद्वचोभिर्न विकारं प्रकटीचकार मन्त्री ।

मलिनत्वमुपैति बातनुकैर्न रजोगिः सुरवाहिर्नप्रवाहः ॥	८०
जगदे जगदेकबन्धुनैव, सचिवैर्गोऽपसरद्वा स चारः ।	
भवताऽभिहितं यदामभर्तुश्चरितं तत्र चमत्करोति कस्य ? ॥	८१
तरणैरिव सिन्धुराजन्ननोर्महसा दुःप्रसहेन शुष्कदेहेषु ।	
दहति स्म सुखेन लक्ष्मदेवदुःखसुखैरपि यादवेन्द्रदावः ॥	८२
समरैकतेरसुष्य सावस्तुतिक्रोलाहलफाहलनिनादै ।	
श्रुतिमार्गमुपैति मर्त्यलोके, सुमटानामभिर्घाऽपि वापरोषाम् ॥	८३
विपरीतमतिवमस्य मन्ये, अदसावर्षयते पुरं तैदेतत् ।	
हयसैन्यसहायतोऽपि सिर्हानृपसिंहेन विगृह्य यद् गृहीतम् ॥	८४
बहुभिः सह योजुमजमं मे, मनुने स्वामिनगेप तन्मृषैव ।	
ननु निश्चलनिश्चयस्य पुंसिखिदग्ना यान्ति सहायतां नियासु ॥	८५
वरुपाटकनेष्टितं न दृष्टे, न च सिद्धेश्वरसन्निधानमुदम् ।	
किमनेन मनरियेनो यदस्य, श्रुतिमाकाङ्क्षति लील्यैव लम्बुम् ॥	८६
तमघः शिन्नचित्तमर्हतीति, व्यवहारः पुरुषान्तरेषु सुखः ।	
परसम्पदपेक्षिणां नृपाणां, स कृपाणे न कृत पुन प्रमागम् ॥	८७
नदुपेहि पतिं स्वमेवमस्मद्वचसा ब्रूहि च देव ! वेत्ति सर्वम् ।	
अवलम्बेमिमं विमुञ्च नो चेदयमस्मि खेपतो विचार्य कुर्यां ॥	८८

१ 'योधसा' वा० मु० ॥ २ 'भूरस्ति ममैष स्व' मु० ॥ ३ 'मम्यर्थि' मु० ॥ ४ 'नापि सर' मु० ॥ ५ 'देहः' वा० ॥ ६ 'घाघिनां पदे' मु० ॥ ७ 'यदैव' वा० ॥ ८ 'सिंहनादान्' वा० ॥ ९ 'नु निश्चयनिश्चलस्य' वा० मु० ॥ १० 'स्विना यदोराक्षिति' प्र० ॥ ११ 'यमसुं वि' मु० ॥ १२ 'त्वमितो' मु० ॥

श्रुत्वा यचः सचिवनक्रस्तक्रतोस्तद्, मृगोऽव्यभाषत रुषा परुषाक्षरं सः ।

आः ! किं प्रवीणि मदमन्दमतिस्त्वमेव ? देवस्य तस्य नियतं नहि वेदिताऽस्ति ॥ ८९

कुर्वागस्त्वयि शस्त्रधारणमसावस्मत्पत्तिर्लज्जते,

येनैकेन रजाङ्गणेऽवगणितः सेनायनः सिङ्गनः ।

तत् ते चेतसि चेद् विचारकगिरि काऽप्यस्ति तन्मुच्यतां,

मानोऽयं नयवेदिताऽथ भवता वैर्मेदमामुच्यताम् ॥

९०

अथ सचिवमवश्यमाहवाय, प्रवगमति मतिमानयं विदित्वा ।

पयन इव यनोऽमुखं क्रगानुं, विमुषमिवेगनवाऽऽमन्थयन् ॥

९१

॥ इति श्रीगूर्जरेश्वरपुरोहितश्रीसोमेश्वरदेवचिरचिते कीर्तिकौमुदी-
नाम्नि महाकाव्ये कृतसमागमनो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥



सिन्धुराजेन साकं गूर्जरैश्चरस्य संग्रामः

- कथितारिविचारेण, चारेण प्रेरितस्ततः । सिन्धुराजात्मजः सिन्धुर्वायुनेवोदजृम्भत ॥ १
- कुपितः करवालेन, सिन्धुराजाङ्गभूर्बभौ । कम्पान्तविप्लुतः शम्भुः, कृतान्तेनेव सङ्गतः ॥ २
- चकुटीपटना भाले, तस्य भासि स्म मीषणा । त्र्यक्षचक्षुर्यया जिग्ये, युगान्तोद्गन्तपावकम् ॥ ३
- रपा स्मितमुखः शङ्खः, शङ्खपाणिसमच्छविः । नामवद भीतये कस्य सितविद्युदिवाम्बुदः ? ॥ ४
- स प्रतप्ये ह्योदस्तैः परागपटलैर्धनैः । प्रादृपं रात्रहं सानामकाले कल्पयन्निव ॥ ५
- कैकिपत्रममच्छन्नच्छन्ना तस्य पताकिनी । जङ्गमोयानलेखेव, दोःस्थिताया जयत्रियः ॥ ६
- सतित्याग्य साटोपो, वटकूपसरभस्ते । व्याचष्ट पटहोदघोषैर्द्विषामेव स्वमामतम् ॥ ७
- निस्वाननिस्वनानस्य, स्वकर्गाम्भ्यर्णमागतान् । उदस्तचकुटीमङ्गया, मन्त्री प्रत्युदादिव ॥ ८
- मन्त्री यद्यपि गाम्भीर्याद, भावं नाऽऽविश्वकार तम् । तथाप्येष कृतोत्थानैर्भ्यक्तीभूतः गिरोरुहैः ॥ ९
- समक्षसैनिकः शङ्खो, भिन्नशङ्ख इव द्विपः । सङ्गरावेशदुर्वारः, सञ्चचार जनैः शनैः ॥ १०
- [आविष्ट इव राधेयवधोन्नेन किरीटिना । स तदा सत्त्विक्षापमामर्शं शुहुर्बुधः ॥]
- स चौलुक्यनृपामात्यः, सञ्चरत्यरिसञ्चये । सैन्यभारचयामास, श्रासमुक्तेन चेतसा ॥ ११
- चन्दना-ऽगुरु-कर्पूर-कस्तूरीकुमुमलजः । स्वःबीसम्भोगमिच्छिरिव धोरैर्विदग्धिरिव ॥ १२
- समाहः सङ्गरास्मसम्भवासत्त्वसम्पदः । उच्छ्वसार्थामामात्यस्य, न सात्यस्य तनौ तदा ॥ १३
- दक्षिणेनाहिणा क्षोणिश्लोदनाज्यशसिनम् । आरुरोह जवादसमध्वराणाङ्गसम्भङ्गः ॥ १४
- श्रीवीरनृपमुद्रां यः, सदा धारयते करे । यारशूद्रकमुद्राऽपि, घृता तेन तदा ह्रदि ॥ १५
- मदा भुवनपालाद्या, यद्यप्यमे तद्राऽभवन् । तथापि स पुरस्तेषां पौरैः श्रुतया मतः ॥ १६
- अमे शङ्खचमूकं, मध्ये प्रहरणाङ्गणम् । पावेरलाकरं वीरगिरोरानमसौ स्थितः ॥ १७
- समासनेऽपि सङ्ग्रामे, सौधोद्भेदं न भाषितैः । स चक्रे सचिचोत्तंसः, क्रियासागरि तादृशाः ॥ १८
- स्थितं सङ्गरागुले शङ्खस्तं वीर्य विकसन्मुखम् । पाणौ रणरसोत्तालः, करवालमलालयत् ॥ १९
- स्थितेऽज सम्मुखे शङ्खः, प्रवेष्टुं नाशकत् पुरीम् । रोहिणीं रोपयौनेऽपि, यथा दम्बर्ये शनिः ॥ २०
- चलन्मन्त्रिवलेक्षितः, क्षोणिरेणुगणोऽनृपः । उदेष्यत प्रतापाम्नेर्धूमराशिरिवोत्थितः ॥ २१
- पृथिव्यान्तोदये तस्मिन्, सुसोदबोतेन मन्त्रिणः । प्रतापः प्रकटीचक्रे, श्रीवीरश्चक्रप्रभोः ॥ २२
- प्रभूतमपि तत् सैन्यं, क्षोमायामूल मन्त्रिणः । तेऽप्येऽपि बहवो येषां, रणारम्भे स्थितं मनः ॥ २३
- स्थितेन तेन धारेण, कर्तुमर्हन्तमात्मनः । गोघ्रीसमः समित्यां स, श्याद्राद्री सचिवो यदि ॥ २४

१ केतुपं मु० ॥ २ उद्वल्यं मु० ॥ ३ पयमिदमधिक वर्तते प्र० आदर्शे ॥ ४ 'त्या अमो' मु० ॥
५ क्षोणीक्षो' प्र० ॥ ६ 'पि, व्यथादशरयो मु० ॥ ७ क्षोणीरेणुगणो ननु मु० ॥ ८ 'त्यां यः, श्या' मु० ॥

वाहिन्योस्तत्र सम्भेदे, स कोऽपि तुमुलोऽभवत् । यस्यापि मद्रतामेति, सामुद्रोऽपि महाध्वनि ॥	२५
अवाशितानि चापानि, भुवोर्ध्वममुदञ्जितम् । मुमटै कोपसाटोपै, सेनयोऽभयोगि ॥	२६
राण्डाना सह कोदण्डगुणै सचिग्नजयत । तथा धीप्रकाण्डाना, विप्रहस्तु परस्परम् ॥	२७
कणै ल्याद्विग्नयेपामयेषा जीमिनन्ययम् । तुवाणैर्निदधे वाणै, स्पष्ट दुर्जनचेष्टितम् ॥	२८
तत्राऽऽह्वयमातासर्थे शिष्टिर्भैरुणनिर्गते । यित्वा विस्मृतेन चक्रे, परस्मिन् पुरम् ह्य ॥	२९
विहाय शरधि वेगाचापमापु गिनामुखा । चिद्वमेतत् सपक्षाणा, शिबुरे यत् पुर स्थिति ॥	३०
वसो शिक्षिय वैफन, पतिग पततो गता । न चिर निरुणैर्हम्या, धीगगा ह्ययवस्थिति ॥	३१
खड्गिन खड्गिनि पुतपागय पुतपागिनि । बोधा योपैर्हयास्तदा, हवास्तैश्च सन्नता ॥	३२
मश्रीशरसरसाग्निव दानार्थमुपत । असिस्सुष्टान् कोन, बद्धमुष्टिपि क्षणात् ॥	३३
चाराण्य पाणि पादाञ्चै, पूजितेषाऽऽह्वयिनि । दत्तार्थेव च दर्शभक्षेमिश्रै निर फलै ॥	३४
अहिंसान्तमज्ञेन, का स्यात् नस्थान् वाच्यता । पुरुषप्रतनिवाहो, येन तादृक् इतस्तदा ॥	३५
अहिंसामहसम्भूता, मन्त्री मापु न्न खिडम् । चक्रे दिव्यमिव स्नान, स गूर शरवृष्टिभि ॥	३६
प्रमुद्रोसाहन धृष्टे, मागनोत्तेजन पुर । निष्काताना विष्णवग, जात निष्कमदृढये ॥	३७
उदिरयापि द्विषा मुक्तेर्न मन्त्रा निमिदे गैरे । अष्ट कोऽपि शिष्टाना, बद्धरुक्षो हि रक्षणे ॥	३८
मुमदासुस्तस्मिन् पुस्ताद् दुस्तरो यदि । तचापि न निनाग्राम, मन्त्री शत्रूनि ब्रम् ॥	३९
विमाच्य तमसन्माध्यमगष्ट मे रणे रिपो । स्वचमूर्चरसहारमात्य च परै पुर ॥	४०
वीर सङ्ग्रामसिंहोऽय सहाये श्रद्धापराह्वय । आविभाविनशत्रुयौर्निजसरम्भसोरभम् ॥	४१
सुगम् ॥	
अपि भूपङ्गोच्छास, परैर्यस्य सुदु सह । तस्य सङ्ग्रामसिंहस्य, खड्गोद्भास सहेत क ॥	४२
तमै तक्रमिवाऽऽय तमन्येऽभिगीर्जित । मटो भुवनपालाच्य, शङ्के प्र यमिजमिवान् ॥	४३
सखा शङ्खस्य सामन्तः, सना सीमतथनर । बलाद् गुप्तकुम्भैतममप्युदक तम तग ॥	४४
शरै शलेषु मानुषु तयोऽप्रतिमश्रुयो । मञ्जयोरेव सन्नने कपाकेति भुजासुवि ॥	४५
नियति प्रेममाणामिस्सरोभिर्भूष तयो । बटु मन इवक्रायाना च्छुषामनिमेषता ॥	४६
सामन्तमतरस्यात, म नीत्वा सचर पुन । सम सङ्ग्रामसिंहेन, सङ्ग्राम कर्तुमन्यमात् ॥	४७
शङ्गेन खड्गगतैस्तै, खण्डे खण्ड इत वतु । सङ्गये भुवनपालाच्य, पौण्ड्र न तु मण्डितम् ॥	४८
स धीरो मन्त्रिर्द्वैत्य, शङ्खासि यस्तमलक । तस्य प्रमुप्रसात्स्य, प्राणैरेन्द्रवणोऽभवत् ॥	४९
शुक्ला भुवनपालस्य, निरन गृन्मूर्धनि । ग त्रौ तैर्नैव वैरग, गणाय प्रवणोऽभिन्म ॥	५०
प्रिय विक्रामता केतुमयुषि सुख्य यग । वृत्तासि शालिगद वीरो वीरमः समस्तपम् ॥	५१
शङ्खपतिर्जयन्तश्च, मन्त्रिपत्तिश्च वीरमः । उमो म्पुसमा यातो, सविनादौ जयधिने ॥	५२
वैरिणामपि वीरग, रणान्तर्न्यथिता म्मा । वाचि चाचिगदैवेन, स्वगदुस्तिगहिता ॥	५३

१ 'सुमले' ३० वा० ॥ २ 'इदयस्तिष्ठति' ३० ॥ ३ 'रसहर' वा० ॥ ४ 'महनिषदाया' सु० ॥
 ५ 'ज्ञपाते' सु० ॥ ६ 'रन्ध्राय' ५० वा० ॥ ७ 'शम्भू' समा पा० सु० ॥

स्थित्वा विपद्यमानेन, भवेऽपि स्वचमूजेन । पदे पदे कृतः स्तोमः, सोमसिंहेन सहारे ॥	५४
स्वामिशत्रुमहत्वाऽपि, मृतोऽस्मीति द्विधा किल । विजयेन तथा यातं, नेहाऽभ्यातं यथा पुनः ॥	५५
रमातलशेषबुद्धयेव, शङ्गेन दृढमाहृतं । भयो युक्मसिंहस्तु, सपदि त्रिदिवं गतः ॥	५६
प्राणैर्योऽपि प्रियं शत्रे, क्षत्राणामिति निश्चयः । तथाऽभ्युदयसिंहेन, न्यक्तास्ते नोन्नितं तु तत् ॥	५७
स्वस्वङ्गाखण्डितैर्वीरशिरोभिर्विपरीकृते । पते विक्रमसिंहेन, क्रोधान्धेन मृषाम्बुनि ॥	५८
विन्येनः कुलसिंहेन.....दर्शनात् । वक्त्रा च विस्फुरत्कुत्ते, युद्धे वै कुण्ठबुद्धिना ॥	५९
भित्वा भट्टीभिरैक्ष्म्यो, निर्गतान्मण्डिकभिः । उदलैन् शुश्रुमे तत्र, सोऽयं द्रुम इवोद्यतः ॥	६०
पर्यतः संचिचं धीर्, सयैव स्थितमग्रतः । शङ्कस्यापि चमत्कारः, प्रससार तदा हृदि ॥	६१
विकारवर्जितं वीर्यं, साक्षात् तं पुरुषं परम् । प्रबुद्धमिव शङ्गेन, विरमतकोपसम्पदा ॥	६२

चौलुक्यचन्द्रसचिवेन्द्रमदार्यगर्कि, मन्वा स्थित रथगायताऽथ रजोमिराजाः ।

आकम्पितप्रचुरपश्रवपांक्षिपेग, शङ्गेन यातमपस्तव्य महाचलेन ॥ ६३

मन्वीश्वरोऽयमनुभूतमटोपमर्दं, सौवर्णीपण्ड इव सोढुत्तागलापः ।

आमन्दकन्दलितघाम्पविश्रोचनेन, श्लोकेन पूजितमतीव वभाज तेजः ॥ ६४

सहस्रामसिंहं स महानियोगी, योगी यथा योगबन्धन कालम् ।

सहस्रमादायन्तमतीव चने, कुगाम्रबुद्धिः कुमन्त्रे पुरस्य ॥ ६५

संवीक्ष्य वीररत्नोपेतोभराजिराजिर्जिति क्षुभ्रमदार्मिर्षार्ङ्गिर्गृध्राय ।

मन्वी न्यवर्तन ततः, प्रेमदाश्रुपतैः, मूर्तेः पुरः प्रतिपदोदितदोर्विभूतिः ॥ ६६

सन्धाव बन्धुन्तात्रितोपगोर्धेद, दूरे विरद्वद्वयोऽपि समं वृपतैः ।

पुत्रेण तेन सह दुःसहपीरुपैर्, सोऽभाऽऽसमाद भगी श्वणमसादः ॥ ६७

प्रतिवृपनिर्भ्रमोऽसाहेनिमग्रमिव कचिन्,

त च नरपनिर्वीरस्तीर्ष जगाम मृषाम्बुवेः ।

त्रिभि त्रिभि यशःस्तोमान् सोमोन्वयी समचारय-

वैतुरकुरन्दीर्चांश्वयोऽयं प्रियदूरगैर्पुंगी ॥ ६८

॥ इति गूर्जरेश्वरपुरोदितश्रीसोमेश्वरदेवधिरचिते कीर्तिकौमुदीनाम्नि
महाकाव्ये युद्धवर्णनो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥



१ विमर्शः मु० ॥ २ प्र० आदत्तं पयस्यास्य स्वात रिक्त वर्तते ॥ ३ 'रन्निम्यो' वा० मु० ॥
४ 'न' स्तो शुभे वा० ॥ ५ तत्रेशोऽयं वा० मु० ॥ ६ 'यं' होरे वा० मु० ॥ ७ यानम' वा० मु० ॥
८ 'पमर्दिप्रभा' वा० ॥ 'यमार्थशृणाम्' मु० ॥ ९ प्रमदोपपत्तेः वा० ॥ प्रमदोपपत्तेः मु० ॥ १०
'पाद', वीरैर्विद' मु० ॥ ११ 'य' स्वार्थां स' वा० मु० ॥ १२ चतुरचरुटी' मु० ॥ १३ 'कयो-
स्सो दि' प्र० ॥
श्री० ५

पष्ठः सर्गः ।

श्रीवस्तुपालेन बलानिरस्ता, ता दुस्तरामापदमाकठ्य ।

महोसवानामकृत प्रवृत्ति, वीनोपसर्गं पुरवासिर्वर्ग ॥ १

गृहे गृहे धातुरसानुलेपा, समन्तत स्वस्तिरुपवृत्तिमन्त ।

विरेजिरे तूर्यस्वानुकूला, कुलाङ्गनामङ्गल्यातिथ ॥ २

बभूव देवेषु विशेषपूजा, राज-यमार्गेषु विशेषशोभा ।

विशेषहर्षं पुरपूरुषेषु, विशेषवेषश्च वधूजनेषु ॥ ३

येषा निमेषार्द्धमपि क्षपायामायाञ्च निद्रा रिपुविद्रवेण ।

मुत्थाकृताना सचिवोत्तमेन, तेषा च हर्षात्तरितेयमासीन् ॥ ४

पुष्पजाना प्रमदाभूतेन, तनातिमान् दिशिराकृतानाम् ।

नि शेषिताशेषसर समृद्धिर्भीष्मो न भीष्मोऽप्यभवद् भयाय ॥ ५

गिरीपुष्पप्रचयच्छलेन, शुचिर्दधानो हृदय प्रदीप ।

आपाडवान् वाडमपास्तकाम, रुमीदिरुपस्तमुपाजगाम ॥ ६

आमायमालोक्य चुल्लुस्यभर्तुः, कर्तुं स्थित शङ्कश्रुतो निरखान् ।

मये मनोमूरपि मदमद, चापक्रियाचापलमाचचार ॥ ७

दिङ्मण्डली पाटलिपुष्पगन्धसम्बन्धसो मेपमरुमिषेण ।

गान्तोपतापा सचिवेन तन, ततोपत आसमिव भ्यमुच्चत् ॥ ८

अस्मान् मुखनोत्तरतु भ्रमता, कीर्तिस्तदायेति कृतास्तदित्य ।

बभूवुरासामसदेतदत्त, सा हि क्षमा सागल्लक्ष्मणि ॥ ९

प्रतापिन पञ्चवितप्रताप, शुचि शुचिचाधिगतप्रसिद्धे ।

फविप्रियोऽसी प्रथयाञ्चकार, निद्रा निद्रास्य जैडप्रियस्य ॥ १०

पीयूषविन्दुप्रसव खवती गुणात्रलिर्यस्य गलतिकेव ।

स्थितोपरिष्ठादपि विष्टपस्य प्रीति प्रतप्तस्य तदा ददानि ॥ ११

कर्तुर्दिगताक्रमणोचतस्य नयनय बुद्धिमिनस्य तेज ।

तेनामविच्यत् सचिवेन तुय, प्रजोपताप यदि नाकम्प्यत् ॥ १२

सशोपिनाशपनदे निद्राघे, मन्त्रागदष्टि कमगभिरामा ।

तृष्णापहार न चकार कस्य, प्रवेव समार्गमुपागमस्य ॥ १३

पुण्ड्रेभ्य क्षीणगता सरस्य शुभा निगुच्छाद्य गवा समूहा ।

चूत्तुमा वा सचिवोत्तमो वा, तदार्जयसार्थं सफरीचकार ॥ १४

स्वरक्षितस्याथ पुरस्य तस्य, वैशेषिकीं वीक्षितुमेव शोभाम् ।	
इष्टं नमस्कर्तुमनाथ देवीं, श्रीवस्तुपालः सचिवश्चाल ॥	१५
प्रसर्पतः प्रोषितगर्वमावात्, परिच्छदो यद्यपि तस्य तुच्छः ।	
श्रीभिः कृताः प्रेक्षणकाङ्क्षिणीमितो सङ्कटा रामपथास्तथापि ॥	१६
तं रामवीत्यामथ सञ्चरन्तमालोकयन्त्यः पुरलेककान्ताः ।	
दातेति पातेति जैवीत्ययीति, क्षमीति वाम्नीति मृशं शर्मसुः ॥	१७
मनोरमाकारममात्यमेतमिचोपगन्तुं हृदयानि तासाम् ।	
चक्रुः पुस्तताटुपटौकनाय, फण्डयं चारुकुचद्वयेन ॥	१८
तमन्तिके यान्तमवेत्य बन्दिशन्दैरथ ऋणुमगारगर्मात् ।	
द्रुतं प्रयान्ती रसनानिनादैराकारयत् काऽपि सत्तीरिवान्याः ॥	१९
जयेन यान्वास्तद्वेक्षणाय, कस्याधिदम्गोजनिमेषगायाः ।	
काश्चौ सस्रोभिर्विधुना गच्छन्ती, नितम्बतो न स्थिरता तु चित्तात् ॥	२०
तदा तदालोकनलोलद्विष्टः, संबुध्यती स्वाङ्गकमंशुकेन ।	
हृकोदरान्तर्निहितस्फुलिङ्गमनङ्गमन्या प्रफट्यचकार ॥	२१
तेनाङ्गना प्रत्यवलोकितान्या, प्रपातिभारेण भृशं नमन्ती ।	
ररान कन्दर्पकिरातमुक्तसमापतन्मार्गैर्विचिनीव ॥	२२
परा स्मरवैशानिवैचिताशुः, प्रमुक्तैरद्वितयाङ्गनाऽपि ।	
मुषानिधानं सचिवप्रधानं, नालोकिषु सम्यगलम्बभूत् ॥	२३
न पुष्पायाऽधरोऽस्ति चापी, यत्मादमात्यप्रणयोऽनुस्तीनाम् ।	
न कञ्चुके किञ्चन वेषविहं, भिन्नं मन्त्रेण धनस्तनीनाम् ॥	२४
लम्बायती तं प्रति काऽपि बाला, जालान्तरालेन दृष्टं मुमोच ।	
हृपर्ययाऽजीयत वप्रमास्मार्गमितः कामचमूरस्य ॥	२५
तदरिनीनां हृदि सुन्दरीणां, मनोमयदशाधवकेटितोषे ।	
प्रभूतदुर्वप्रपरिच्छदोऽपि, लभे प्रवेशं सचिवेन्दुरेकः ॥	२६
मन्त्रीशमालोक्य मुलौचनानां, स्वभावलोभान्यापि लोचनानि ।	
नान्यत्र युगापि गतिं वितेन्युषैस्तदीशैरिषे मन्दितानि ॥	२७
श्रीमत्पुण्ड्रमुसुकया कयाचिद्, दैहिकदेशे निहितं ततोऽपि ।	
पर्याम्भसा मृष्टमाम्यष्टाविष्टासित्वाऽपि जडदपौति ॥	२८
सनीपभाज्यमुपि तत्र मन्त्रिकधौ दधाने मुमनःसमृद्धिम् ।	
रोमोद्गमोवज्रमञ्जरिश्रीमाकम्पमाटेव परा न्यराजन् ॥	२९

१ 'श्री मयी' सु० ॥ २ 'याती' बा० ॥ ३ 'काबन्दिनी' बा० ॥ ४ 'स्तरेणस्वोद' बा० ॥
 ५ 'गर्जतः' बा० ॥ ६ 'द बन्दि' सु० ॥ ७ 'मोचयो' बा० सु० ॥

उदामक्रामक्षितिपाशयेव, क्रियान्तराण्यर्द्धवृत्तानि मुक्त्वा ।

क्षीणा गग श्रीरूपप्रधानमसु समालोक्य सावधान ॥

३०

स्विन्नाऽव्यनि श्रेणिभरेण तावदेव व्रजन्त सचिन्तिलोक्य ।

काऽपि प्रयातु पदमप्यशक्ता, सहसुना स्वं प्रजिघास्य चेत ॥

३१

ग्रहै शुभै सन्यममात्यगमर्द्धष्ट स दृष्ट्या परिपूर्णैव ।

पुराङ्गनानामनुरागिणीना नत्रत्रिभागोर्न निमातितो यत् ॥

३२

तत्कालमुन्माल्लिखमानकेतु वगतुराणा पुरमुन्दरीणाम् ॥

अदत्त चित्त न स दात्ताचित्तस्तद्वमर्पण्या प्रथम हि दत्तम् ॥

३३

रेम न सन्यऽपि वधुजनऽत्र नत्रद्वय मन्त्रिमतल्लिकाया ।

न तादृशास्तादृशसंयमपु, प्रलोभनाय प्रमथन्ति भावा ॥

३४

अथाऽऽनिष सैप नतन मूल्या गृह्णन् वितीर्णा कुत्रैवालिकामि ।

विभूषितस्तम्भपुरोपशान्यामेकल्लवारा प्रददौ देवीम् ॥

३५

ता ससलोकप्रणता प्रणतु, जगाम दूरे स दुरापकीर्ति ।

न वेत्ति विद्वानपि सयसती, वाणीभिररूपेण निज मुक्ता ने ॥

३६

दुग्धेन दध्ना मधुना घृतेन, ग्वण्डन तोयेन च शुद्धमूर्तिम् ॥

कालर्च देवा सचिव प्रभूत-कर्पूर-वृष्णागुर-चन्दना वै ॥

३७

चकार देवीन्दनारविदे, स दत्तपद्वक्ति धनसारसङ्घै ।

हर्षं बहती हृदि सप्रकर्षं, साक्षात् सहासव बभौ यया सा ॥

३८

नैवपटुदैरनवपटुसै, णिष्टानुवृद्ध दुर्गुणकूटै ।

धूपैरथ भूपसमानुरुष, प्रसादयामास दयाश्रयस्ताम् ॥

३९

नुया च नया च विरोधवया, देवी समानीय मुद्र स मानी ।

श्रीक्षीरभूषाण्डपगदण्ड, स्थिति यथाच हृदि च स्वकीये ॥

४०

अथोष्पणि श्रीमसमुधितेऽन्तर्देह स्नात्वा दत्ति दहमात्राम् ।

शङ्ख समग्रेऽपि रस सगङ्गा, स्वदाम्बुदग्धेन बहिर्बभूव ॥

४१

चण्डयुतौ मण्डयन्ति धूमव्य मन्त्रादिनोर्द्वैतवर्णमिष्टम् ।

समं स मन्त्री गुणिना गगन क्राटावने प्राप मनीर्दिवर्ति ॥

४२

मन्त्री तदासाध वन ननन्द, प्रीन मनी शोषयितु स्थित यत् ।

भ्रमदध्नीसहृदितागधत्वाट्कागन्धै प्रतिगर्जनीव ॥

४३

कीर्तिर्निदाप्य त्रिर्नैर्मनोगुणधसिदिर्मन्त्रि रस मन्त्रम् ।

वनस्य नृत्यानिपन्नमस्य, श्रियातमी ताग्विना प्रमूढै ॥

४४

१ 'द्वय' सु० ॥ २ 'शोषये' सु० ॥ ३ 'न विनाविना' वा० सु० ॥ ४ 'कल्पय' वा० सु० ॥

५ 'ल'कामिनीभिः प्र० ॥ ६ 'हृदये' वा० सु० ॥ ७ 'हृदालि' वा० सु० ॥

अमात्यमत्यर्थमपास्तदौस्थ्यं, पिकाद्वनाकृजितकैतवेन ।

उल्लामिमर्द्धभुवुल्लाप्रदैत्यः, सत्यं स्तुवन्ति स्म यनाधिदैव्यः ॥

४५

हिमासहोदय समयस्तमिस्तहिंस्रः सहस्रांशुस्मिं समेतौ ।

मत्वेव ते भीति-स्तौ प्रविष्टे, छायाविशिष्टं वनदुर्गितम् ॥

४६

लीलावनेऽस्मिन् नवमेषलीलमरन्दविन्दुप्रकरं किरन्तः ।

यिनाऽपि वर्षासमयेन हर्षं, शिखण्डिनां ताण्ड्ययन्ति वृक्षाः ॥

४७

स एव कर्माशुकरानुपद्वाद्वानि पुंसां पवनो दुनोति ।

धिनीति सद्वृत्तपरोपसेवो, सङ्ग-कुलीनैस्त एव युक्तः ॥

४८

प्रकल्पितायां क्षितिकल्पवृक्षो, द्राक्षास्तामण्डपवेदिकायाम् ।

वृत्तोपवेगः स चकार गोष्ठीमनिष्टुरोक्तिप्रस्रैः कवीन्द्रैः ॥

४९

केचिन् कुलं भीतिनिराकुल्य, कृतावदानस्य परं च दानम् ।

मान्यचमन्ये विनिवृत्तमन्योन्याचक्षुराख्येयगुणस्य तस्य ॥

५०

कवीन्द्रशैलेन्द्रविनिर्गतानां, सरस्वतीनां प्रसृतान् प्रवाहान् ।

आरुह्य भूकण्डलमासमुद्रमयिर्ति मन्त्रीभरकांतिहंसी ॥

५१

कवीचराणां घृणति स्म वागी, कर्णश्रयं कर्णसमस्य तस्य ।

सोऽपि प्रमोदं हृदयेषु तेषामुदारपाणी रचयाम्रकार ॥

५२

दत्ते स्म तेभ्यः सचिवः कविभ्यः, प्रभूतमन्यदुत्कीर्तिरयम् ।

आदत्त चिद्रूपतया निगूढमप्यथल्लेदा तु तदुक्तवृत्तात् ॥

५३

मनीषिणां मानसमन्दिरेषु, श्रीमान्माल्यो निवसत्तद्वनम् ।

तेभ्यः स क्लृप्तं वितरत्यगण्यहिरण्यविश्रापनकैतवेन ॥

५४

तस्मिन् वने सत्कविवस्त्रयन्त्रविनिर्गतेन श्रवणामृतेन ।

संसिध्यमानः सचिवः प्रधानमहाय मन्त्राहमयं निनाय ॥

५५

आरात्रयामशिदिग्धानि पथिमावाग्रायाते मुहूर्तवतामपथिमोऽसौ ।

तान् कृत्वा धनरुनकैः कवेन् कृतार्थानावाप्तं त्वमग्निं चचाल वस्तुपालः ॥

५६

॥ इति श्रीगर्गेश्वरपुरोहितश्रीसोमेधरदेवविरचिते कीर्तिकौमुदीनाम्नि
महाकाव्ये पुरप्रमोदवर्णनां नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥



सप्तमः सर्गः ।

अथोदयति निर्दोषे, सचिवेदौ नवे रवौ । कोरु कोरुनदानन्दि, मन्दिमानमगान्मह ॥	१
गम्य सोऽपि जगच्चक्षुश्चक्षुषा सम्पद्यत । क' कालवल्नेनात्र, निस्तेजा नहि जायते ' ॥	२
मौह्रिय विद्रुमालीपु, द्रुमानपत्रुषेपु च । अधिकं निद्रये व्रध, किरणै कुङ्कुमारणै ॥	३
शुशुमे दिक्षु सर्वांषु, प्रञ्चलत्पनापल । गिरस्थरचिरस्ताडि, पञ्चाग्निव्रतवानिव ॥	४
रियोगन्धधया घृक्ष्म, साक्र'दा चरकामिर्नाम । प्रञ्चना सहसवासजेहेनव सरोजिनी ॥	५
मित्रेऽस्तमागते दुःखादप्यै प्रागान् जिहामुभि । आलिप्तमाश्लिबालिप्तवाजादारोपिता हृदि ॥	६
न मित्रम तंरगोपि, क्षगम-यासचासर । भवत्य-यमिचार्येव, सङ्गत गतदोषयो ॥	७
प्रताप प्राप मन्दैव, वारुगोखेवया खे । भवेत् प्रभावमहाय, महतोऽपि हि दुःश्रुतम् ॥	८
निक्षला कस्य वाऽयस्य, भुवने श्रोमैविष्यति ' । आसीद् वमुविर्हानोऽसौ, यदहमपि नायक ॥	९
अपि तादृशमस्ताद्रिर्दिनेश निरकाशयत् । चिर न द्वाश्रय षापि, प्राप्यते दिवसात्यये ॥	१०
कुलायमाकुला सर्वे, पक्षिगस्तक्षणादपु । कस्यज्जयथवाँ पस्य, सया सवितुरापदि ' ॥	११
यनात्ताद् बलमानेन, कुलेनोदमितैर्भावम् । पामुभिर्मांसलीभूत, युतोऽप्याविरभूत् तम ॥	१२
समन्ततोऽपि काष्ठाना, प्लुष्टाना चित्रमानुना । पूमेनय तमिधेग, प्रसखे गगनाङ्गणे ॥	१३
मुक्या नि श्रीक्रमपञ्च मरानी न गताऽथन । भ्रमराली त्वगाद् वेगादिद सदसदन्तरम् ॥	१४
त्रैलोक्यदीपके दवे, लोकातरमुपेयुषि । तमस्तातममूद् विष्व, क सुखी महदापदि ' ॥	१५
गते भानौ स्थिते ध्वाते, पथि'या साधु भीञ्जितम् । दुरीक्षा महनामापदसतामुनतिष्ठ यत् ॥	१६
स्थिबाऽथ प्रस्थिता सन्ध्या, वज्रद्वानिब्रजानुग । आक्रामत पर लोक, दवे पथाचपूरिव ॥	१७
सप्त'ग्या-यासर सूर्यै, मया देगान्तेर गतम् । जायाऽनुजाविने रामविष म्पानममृज्मत् ॥	१८
व गन सविता ' प्यान्मेतदप्यागत युत ' । ण्व सविरमयेर पौ, स्फारतारमवैञ्जत ॥	१९
दीपका अपि दीप्यन्ता, स्फुरन्तु निमिराण्यपि । तद् गन हि सत्रातीय-विजानीयासह मह ॥	२०
क्षुद्र सृष्टिर्विचित्र्यै, यम्मात् सङ्केतवर्मेना । विमानमितरस्तीना, प्रकाशक्रममत् तम ॥	२१
प्रदोषानन्तर चत्रोदयादवांषु घृषादृशम् । मुहूर्तमभिसागय, मारमौहर्निस्त्रोऽप्रर्जित् ॥	२२
सुरव्रतचर्यायै, धर्षद्वादपि सञ्जितात् । पाशुगन्तायमत् पाशुन'पनीर्धै यैवाधिकम् ॥	२३
नीरध्रेगान्धकारेण, रोदसी सप्युगीवृत । अयोःपाटयितु कोऽपि प्रवृत्त इव पूर्वत ॥	२४
रचितोपक्रमे गञ्जि, चक्रमाम्कमित्ति दिशम् । प्रमादग्मन नासहमादिगमिन् पुर स्पुम् ॥	२५
रोहिणीरमण बंक्ष, रामादागनमत्तिक । भाग्मनर वदुदधेनदध्यादमरादिन्द्रिक् ॥	२६
अयोजगाम साधत्त, तुमुमाखमहीयने । शृङ्गास्य जयोऽगम्यदा तुमुदवायय ॥	२७

आविर्भव पूर्वस्माद्वैश्वदेवः जैवै जैवै । तद्वैश्वदेवमाणिबन्धनौषधिरावृणः ॥	२८
चकार तारिकारोचिरङ्कुरोत्करकैतवात् । करस्पर्शेन रागिण्याः, सोमो रोमोद्वयं दिवः ॥	२९
पुंथलीनां तपस्विन्दं, समुद्रस्य महोत्सवः । रससिद्धिरनङ्गस्य, दिवमिन्दुरागदागात् ॥	३०
मालिन्ये मार्जयामास, चन्द्रमास्तिमिरैः कृतम् । खलैर्दत्तं मृषादेभिमिव सत्पुरुषः राताम् ॥	३१
व्योमाङ्गणविहोर्गानि, तर्मांसि तुहिनधुतिः । ममार्चं रुचिमार्जन्या, कुन्दाकुलकण्टकः ॥	३२
न युगाद्दे, फलङ्कोऽयं, कस्तूरतिलकावृतिः । निर्दग्धो नीलकण्ठेन, तिष्ठत्येव शपक्ववः ॥	३३
द्विपि स्वर्वाहिनी हंसैर्विभु दन्तैश्च दन्तिनाम् । मेदुराङ्गनि मेदिन्यां, कौमुदी कौमुदैर्धनैः ॥	३४
कणैहस्य चकोरीणां गणः पीत्वा सुधांसवम् । अजायत मदेनेव, गुञ्जापुञ्जारुणैरुपः ॥	३५
मरीचिनिचये चान्दे, सति सान्दे ममन्वतः । धस्तिं विष्टपं दन्तसन्तया दन्तिनामिव ॥	३६
शान्तशान्त-पनस्तोमे, कौमुदी-गरदागमे । हृदि श्यामोऽप्यतः श्वेतश्चक्रोरे चन्द्रसज्जनः ॥	३७
चन्दनैश्चर्चितेव वीर्दिनः फागैरिव त्रिताः । क्षीरेण क्षान्तितेवोर्वा, गर्भरीरो विराजति ॥	३८
पीयूषपायसैः प्रीतं, चक्रोद्विजसञ्चयम् । श्रेयोऽर्थं मन्मथन्येव, चकार शिशिरधुतिः ॥	३९
सन्दोर्हरिन्दुकान्तानां, तदा सगवदम्भसाम् । प्रीत्ये चैत्रमित्रस्य, चन्द्रश्चक्रे प्रया ईव ॥	४०
तरुणे तारकापक्षे, वृक्षाश्रया विरजिरे । तमसः राण्डञ्जमानस्य, प्रतीकाः पत्तिना इव ॥	४१
रमय प्रलिलासुर्वमिचण्डपुतिमण्डले । कन्दर्पवृषते सान्धमेकच्छत्रमिवाभवत् ॥	४२
सान्दे चन्नातपे तत्र, स्फुरन्निः कैरवाकैः । क्षीरनीरधिष्ठिङ्गीरपिण्डानां पाणिभ्या त्रितः ॥	४३
नीलगन्धमधुमत्तलिङ्गुलकोलाहुरैरिव । मानमे मदिराक्षीणां, प्रबुद्धः कुसुमायुधः ॥	४४
अनन्यार्क्षभिरारुपास्तेनिरे तत्रनन्तरम् । विजिगीषोरनङ्गस्य, सैनाहा सुभेदेतिव ॥	४५
यथेत्ताजलनिमग्न्याः, कस्याश्चित् कुञ्चितक्षुब्धः । प्ररीरे चन्द्रेण गौरे, सौरभ्यादन्वसीवत् ॥	४६
सर्वैरन्यक्तशर्शानां, तुषारधुतिरोचिषाम् । जगाम वामनेजानां, केजपक्षो विपक्षताम् ॥	४७
पिशुना निगदन्धेन, या शिषेनापि मूर्धनि । सा व्योम्ना मुदगां केन्द्रस्तेन गच्छन्मिता ॥	४८
स्त्रनः पादेषु फान्तानां, नखान्तः प्रविमामिपात् । याचितुं बन्धलावग्यकणिकामिव चन्द्रमाः ॥	४९
कवरी कैवार्क्षीणां, कवरा केनक्रीदते । हस्ततीव्र व्यमादाभां, विलङ्घामेकच्छत्रमणः ॥	५०
यामिन्यामिन्दुसूयां सुगवज्जगुण्डनाः । पम्पिष्ठोद्भासितं विचित्रं, विजम्पुभिस्तारिका ॥	५१
बधूनां बक्षमविन्दं, रन्मुण्डलान्तिभिः । शिषेयु सविजम्पेयु, रोपकगमिव व्यमात् ॥	५२
ताडपत्रश्रिया न्यस्तनीजसमगमवर्णया । पुष्टिकेव चक्रास्ति स्म, कान्तिर कामविपक्षित ॥	५३
कुचो मुष्टौ शृतहारवटी, सकम्पुको गेहनुम्भुजास्याः ।	
रते रिम्याया हृदि रसमाय, स्मरप्रमुक्तानि सौविद्विष्टौ ॥	५४
आकम्पिता न्येयितनेन्द्रियाभ्या, निपुदभूर्धिव बभूवस्य ।	
तनोपशानच्छ्रुतो बभूव, निरेसवेदी श्वरपार्थिव्य ॥	५५

एकाकली वसतिस्मिन्पुनर्गता, रगाज गभीरविलोचनाया ।	
येन शरणावेषिषोपहेतुर्लैगा खट्टियेव कृता स्मरेण ॥	५६
दीपप्रभापिञ्जलानि रेजुरन्पोदरीगा रतमन्दिराणि ।	
आर्प्य चित्तम्यतिरिष्यमानै, प्रियानुरागीरिव पुमानि ॥	५७
वुरङ्गनाभीरुतपन्यैर्हर्षा, जुचयौ चारुज्यकाशे ।	
मुनोऽथितस्य स्मरजुञ्जस्य, मदाभ्युसित्वा दयनरथलैर्न ॥	५८
मागिन्व-मुक्ताफल-काञ्चनाना, काचि-यरीचिप्रचयार्चितान्ना ।	
स्वराद्यु दीताद्यु हुनाशनाना, मह समूह विहितव रेजे ॥	५९
ताम्बूल वलाऽऽभरण प्रमूल श्रौन्वङ्गसत्कारसमावुल्लभि ।	
मुनोचनाना परिचारिकाभिर्मूष्यत श्रान्नयोसवथी ॥	६०
नव वयश्चित्तमपतचित्तमिदं सुषाणुर्मयुरा परितुत् ।	
सएयोऽनुकूलाश्च विन्मसिनीना पिदे तदा कान्तमिलम्ब पय ॥	६१
अनिच्छतीना निजमानमङ्ग, सङ्ग प्रियै सवरमिच्छतीनाम् ।	
अपेक्षितज्ञस्य मनस्विनीना, दुतीजनस्यासगे बभूव ॥	६२
विद्वान्पूर्वं सितरोचरेष, कृतव्यलीदै सह कायुर्कैर्य ।	
दुमे प्रकोपेऽथ तिसर्जनीये, सधि विधत्ते स्म वपुश्नरस्य ॥	६३
विमिनयोरङ्कि रषा रज यासुदञ्चदुर्बन्तुतापयोध ।	
श्री पुसयो सङ्गमनच्छन्, प्रागप्रदा काऽपि बभूव भूय ॥	६४
मानार्थेन काऽपि विलङ्घ्य वेम् गतु प्रवृत्ता दयितस्य यावत् ।	
तावत् स एव स्वयमाजगाम, काम त्रिभिष्ट न करोति जुष्ट ॥	६५
बिलासवेत्ताङ्गणमागतेषु कृतापराधेषु बळभेषु ।	
मनस्विनीनामथ मानमूद्रा, भूमङ्गशेषामरुदन्त ॥	६६
निष्कास्य काम प्रसभ प्रकीप, पुन प्रवेश प्रतिपेदुमस्य ।	
अङ्गानि सारङ्गशिलोचनाना, चक्रे स्फुट ऋष्टरुनेष्टितानि ॥	६७
किं नेत्रमार्गेण मनोज्ञरूपा, कर्णाज्जना वा मधुर वेदन्ती ।	
नासापयेनाय सपुष्पासा, प्रियस्य चित्ते प्रविशेन कञ्चित् ॥	६८
अगन्तिमि सख्यवहार्यता यतेरनुजयेव दिनचरुवर्तिन ।	
कान्तौ सम कातनिलोचनान, पल्लित पातुर्भयोपचक्रमे ॥	६९
कन्दर्पकिलिप्रथमप्रयोगसत्प्रातलज्जामुदुलीकृतानि ।	
तदा मदेन प्रकटीयभवेर्मुमुक्षुषा विप्रमचेष्टितानि ॥	७०

१ 'धिविध' प्र० ॥ २ अङ्ग प्र० ॥ अङ्गि वा० ॥ ३ नवन्ती पु० ॥ ४ 'मथ प्रचक्र' प्र० ॥
 ५ 'बुधमधुवा' प्र० ॥

- असाय कण्डर्परूपदेगान्मघं महानन्दमिवाङ्गनाभि ।
 व्याघ्रतवस्त्वन्तस्वासनाभि , कृता किरिट्यपि पतत्युपेता ॥ ७१
- मेदाकुलानि प्रमदाकुलानि, विरेजुरापानगृहाहणेपु ।
 हृदि प्रविष्टसाराचिपुद्गवुःसाविबोद्धूर्गितमस्तत्रानि ॥ ७२
- अर्परैरधरीकृतं वधूनां, मधुमाधुर्यमवैमि विद्रुमामैः ।
 दक्षितैरत एव तेषु पानप्रतिपठिर्विहिता विहाय हालाम् ॥ ७३
- परिजनैः प्रथमं गतमत्तिकादपसृतं वसनैर्वधनादथ ।
 तदनु यानमथ नपथा हदः, स्थितमिहान्मसुवैव नतभ्रुवाग् ॥ ७४
- आलिङ्गितायाः सुभगेन गाढमुदरम्भादल्माद्विष्यः ।
 स्वेदोदविन्दुच्छ्लेतोऽपरत्वा, सुत्वाव लावण्यमियाङ्गकेभ्यः ॥ ७५
- सकलमपि वपुर्विभिद्यमानं, मदनगौरैरवलोक्य कामिनीनाम् ।
 शरणमिव रदच्छदः प्रपेदे, प्रियवदनं यदलं प्रसन्न पातुम् ॥ ७६
- मैर्यपानच्युतचेतनानां, तासामसाधारणविभ्रमाणां ।
 नत्वाङ्गुलैरप्यनयातसञ्ज्ञो, गम्भीरवेदी मदनद्विपोऽभूत् ॥ ७७
- आह्वानं विषमञ्जं पुरोऽभुवौको, दोषश्लोकण्यरवोऽभवद् वधूनाम् ।
 तैपगवा मणितमभून् मोहनाग्निदेभेऽन्मिन् मधुमधुराधरौष्ठसोमे ॥ ७८
- निगदितुं विणिनाऽपि न शक्यते, सुमदता कुचयोः कुटिलध्रुवाम् ।
 सुतरांस्यति यौ प्रियपीडितावपि नतिं न गन्तुं धृतकम्बुकौ ॥ ७९
- उपरतमुरतश्रगलियामासमयविराममनोरमैरुद्विग्नैः ।
 सरसनलपदे हृदि प्रियाणामथ दायितः कृष्णमन्यवाराभाजः ॥ ८०
- अवनमदधृतांशुविन्मगौलिर्मलितवया इव शर्वरी ध्यराक्नु ।
 अभजत कुरुमे च जम्भजेनुर्गतुरसरक इव प्रभाप्रवाहः ॥ ८१
- यातः शक्तिरुचिः प्रतीतिरल्लयौ विष्टैरपिण्डच्छवि-र्भूम्भास्त्रभनोरमा कमलिनी सुनोदयितव्यामयन् ।
 यकृत्यं च विधिर्विधूय सदयं चक्रेषु चक्रे मन, सौरणाञ्जनि कुङ्कुमारुणमिव प्राचीमुखं रोचिषा ॥ ८२
- देशोऽयं भुवनत्रयैकनयनं प्राप्तः प्रमाणां प्रभुः, कृतां य कमलोदयं जगदिदं मोहाम्बुभेरुत्तरन् ।
 प्रातस्तप्यः तमयो बयोविरुतिभिर्नयोमिति बधोपय-आचिच्छेद तदीयमन्धनमसज्याजेन संन्यानकम् ॥ ८३

॥ इति श्रीगर्जेश्वरपुरोहितश्रीसोमेश्वरदेवचिरचिते कीर्तिकौमुदीनासि
 महाकाव्ये चन्द्रोदयवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥



अष्टमः सर्गः ।

- अथ पाथोजिनीनाये, चुम्बयाशा विडौवस । प्रवुद्र पङ्कजेन, थिय पात्रेण मन्त्रिगा ॥ १
- फोदन्द्र तदाऽऽग्रेस्य, सङ्गत सम्पमाद स । परकटे निर्नेष्टे हि, सन्ना प्रीति प्रचीयते ॥ २
- उन्मादं रीक्ष्य पद्माना, वुमुदाना च मदताम् । क्षणिकं च निभूतीना, चतसा निधिनाय स ॥ ३
- कदायुदयति ध्वान्त, कदाप्यर्कश्च धिग् विधिम् । तुभ्य नीचेऽन्यनीचेऽपि, स तदेन व्यतर्जयत् ॥ ४
- कर चिषेप तक्षणाशुर्दुस्तरे तिमिराम्बुधौ । प्रदातुमिव मग्नस्य, भुवनम्यावगम्बनम् ॥ ५
- विच्छापास्तमिर तुच्छे, रेजुर्दीपाथलच्छिवा । पैद्गाम्ने पय शये, स्फुरत शफरा इव ॥ ६
- तत्त्वौ सपदि भिन्दान, कराग्रैस्तिमिरामुसम् । गेपणवारण पूषा, प्रादुरासाम्नासिंहवत् ॥ ७
- अथोज्ञगाम यामच, वुमुदेषु प्रदर्शयन् । शिष्टपन्थवहारैरुप्राद्विगाको दिवाकर ॥ ८
- मलिनीभनदाशाते, शाते प्यातफ्नोदये । अजावत्तसित हसो, नभ कासारमासदत् ॥ ९
- न्यीसीहृता पर देश, गच्छता भास्करेण या । स्फुट स्फणिकूर्मवहि, प्रनिदये स्म तां विमा ॥ १०
- विवृतिर्विध्वंसस्य, दशा निस्तिमिरोपधी । इष्टवार्ता च पद्माना, दिव्यते वुमणियुति ॥ ११
- चकोरचक्रवालस्य, पातगीत यरोदया । तमक्षक्रमधश्चक्रुश्चण्डोचिर्मरीचय ॥ १२
- प्रसारितकरं सूरसिधुरेऽनुषारति । मुमेत् परिवभ्राम, तमस्तोम पुर सर ॥ १३
- कुवाण क्रिणाङ्कुरैर्यतसथिय दिनाम् । नमन्निभागमागच्छश्चिनीर्वावित विमु ॥ १४
- विहोळणेचना प्रातर्मैत्रिभ्रायानि तयजु । लोके हि कारणनैव, गौरव गुणिनामपि ॥ १५
- हृदि प्रियरियुक्ताना, साङ्गना बाष्पविद्व । मग्नाना मारणाणाना, पुह्व इव विरेजिरे ॥ १६
- मन्त्राजे मुनगामास, त्रासवस्तिमिरेत्करम् । सुवर्णरुचिराकर, सुपर्ण इव भास्कर ॥ १७
- अथ धर्मैरुनिष्ठातो, निन्नात शुचिभिर्ज्ञै । वस्तुपात्रलिङ्गालं जगन्पूज्यमपूजयत् ॥ १८
- बलजेगोत्तरीयेय, स बभौ युदिमत्तर । तुरगयुगभातेन, सुकृतेनेव संश्रित ॥ १९
- मत्सरज्वरसत्प, मये मुक्त्वाऽयमानसम् । आदिनाथः स्थितस्तस्य, हृदि सौहार्दशीतले ॥ २०
- भाल तस्य विभाति स्म, चादनी तिलकाकृति । हृता मुकुतिना र्मये, रेखा मुरयेव केषसा ॥ २१
- शलिङ्गित शर्मेनेव, पृथग्भूत कलेरिव । सद्वृत्तेनेन निर्द्वित, न तदा मुमुये मृसम् ॥ २२
- देवेन्द्र स्तुतस्तस्य, रेजुर्दशनदीपय । तत्कालोमाहितान दमुषाशुक्रिणथिय ॥ २३
- दवा दानानि पात्रेभ्यो, नबा गुरुजन च स । मत्त्वाश्रितेन चित्तेन, भव भावितवानिति ॥ २४
- बहो । ससारकारा तर्माथानिगडितामनाम् । जायत जालु जन्तुना, न कथञ्चन निर्द्विनि ॥ २५
- केचिद् बुभ्नाय धावति प्रचुम्भाय च केचन । नोयुङ्क्ते कोऽपि धर्माय, सवामिप्रेतदेतवे ॥ २६
- मोर्देमानोऽस्तरामैव, साक्षी यत्कर्म अर्जगे । तमप्युपेक्षते धर्ममहो । मृदमना जन ॥ २७
- यस्मिन् सनिहिते वह्नि रियावा प्रभवति नै । धमादप्यपरस्तत्मात्, क शस्य शरीरिणाम् ॥ २८
- धर्मसिद्धौ ध्रुवा सिद्धिर्धुन प्रवृत्तयोरपि । दुग्धोपलम्भे सुलभा, सम्पत्तिर्दधि सार्पिणी ॥ २९

उच्चैर्गर्वं समारोह्य, नमं धीरास्तु नमयति । दौःस्व्यदत्तावलेम्बोऽथ, स तस्मादबरोहति ॥	३०
जितं छदिम ! त्वया बन्धै, जनस्तमपि सेवते । धनं निंकारपूर्वं यत्, प्रदत्ते प्रेननाथवत् ॥	३१
धनस्याधर्मल्यस्य, युगोपे लामेन लुप्यति । सुहृत्तस्य दुरापस्य, न ह्यहनिर्गच्छते ॥	३२
असाधते यथा स्वर्गः, त्रिया सन्मार्गदत्तया । स्वक्या तामग्न्यधर्मेन, मूर्खाः क्रीगन्ति दुष्कृतिम् ॥	३३
स्वयमुपादितां लक्ष्मीं, पुत्रोमिव मनीषिणः । दत्त्वा पात्राय तदानफलमेवोपमुञ्जते ॥	३४
पित्रादेरुपमुक्ता या, पुत्राद्यैरेषि भोजयते । कर्मयन्ते न तां सन्तो, प्राग्मेत्यामिव श्रियम् ॥	३५
तत्करीषां दुरीशैर्वा, हतं संसहते धनम् । कद्रवीं नैव सन्तार्ये, कन्यवयन्यमन्यद् ॥	३६
अन्या एव धनाभ्याः स्तुतिरिति न्यथे लब्धादि ये । अन्योक्तेनाप्यना गच्छन्त्यन्यहस्तावकम्विनः ॥	३७
धनी धनापये जाते, दूरं दुःखेन दूयते । दीपहस्तः प्रदीपेऽप्ये, तपसा वाप्यतेऽविक्रम् ॥	३८
आदावेव निहारं यः, प्रदर्शयन्ति देहिनाम् । भरोऽप्येद्वैरुमावेभ्यो, विमवः स्वायते स किम् ! ॥	३९
न संसारस्य पैरस्यमिदं वेति जडो जनः । यत् सुरे स मुक्तानामसौ, यद् दुःखं दुःखमेव तत् ॥	४०
रमयन्ति मनस्तावद्, मायाः संसारसम्भवः । यावन्न श्रूयते साधुलोकेऽकारकाहवा ॥	४१
अहो ! देहभृतां मोहः, प्ररोहन्ति महानयम् । यदेतं सुखमिच्छन्ति, श्रियैर्दुःखेस्तुभिः ॥	४२
छत्रच्छायाच्छेत्रानामी, धाना चक्रे निवेशिताः । भवन्तोपि स्ववामाने, मन्वन्ते स्थिरसीधराः ॥	४३
मदाभ्यास्ते परं लोकं, कथं पश्यन्तु भूमजः । तपोमादुलभन्वह्याऽऽरुणायाम्भुजेन ये ॥	४४
मुक्तं विपसेवेति, सक्तास्तत्रैव जन्तवः । यः प्रमोदस्तु तस्यामात्, तत्रास्वादः कविर् यदि ॥	४५
भयस्य नभरं देहः, दुर्दैवे, च यो द्विषि । हीत्यमात्याद् विनिर्वाति, यत् पुंसामिद्वयदुतम् ॥	४६
फाटनं नौनिकेनैव, नीयमानो जनः पशुः । त्रिपयेव शिगासते, सुरे विपयसाहले ॥	४७
कायः कर्मकरोऽथं सन्नान कार्यान्निविलसना । यन्मिमांसेविनो देयः, प्रपुष्टो विचिरोर्षते ॥	४८
प्रदीपकान्यकार्येषु, नश्यन्वास्तु महापदि । दुर्मित्राणीर राग्येष, बन्धुबुद्धिरधीमत्ताम् ॥	४९
योऽयं जांविभूतेषु, स्नेहप्रथिः मुतादिषु । विभीगावसरे पुंसां, व्यक्तः सोऽपि भविष्यति ॥	५०
दुःखप्रियां स्मरामिवां, क्रोधाग्निवां हृदि अयम् । न हन्त ! शान्तिमायानि, देहिनामविशेकिनाम् ॥	५१
अग्निदामेव क्षेयन्ते, हन्त ! विषां व्युदस्य ये । ते दूयामनुगम्यन्ते, वरादेवाग्निहासिनः ॥	५२
तदस्य प्रेक्षते योगी, जगदभिन्नम् भवाणीम् । मज्जनेऽभजने कुर्वन्, दुष्टैः सुहृत्सैर्नमैः ॥	५३
विपयामिषमुत्स्य, दण्डमादाय ये शिष्याः । संसारसारमेयोऽसौ, निबन्धु तेभ्यः पत्रयते ॥	५४
स यः संवृत्तिर्नयं, दुःखैः पूर्णं निरन्तरम् । यत्तन्मन्त्रतिरेकेव, नान्यद् किञ्चिदिहावने ॥	५५
विगी निन्यति सन्तोषे, वनं धर्मः शरीरिणाम् । स एव केचन तस्मादस्माकं जायता गतिः ॥	५६

मुचिगमिति विचार्य पुण्यधर्म्याः, विदुषि चिह्नोर्षति तत्र तर्क्याश्राम् ।

विदुषद्वय पैयः प्रशान्तपद्मात्, कृत्यपुत्रवदयुमन्त्रोऽयम् ॥

५७

१ 'मोऽप्यः', म्य सु० ॥ २ निवारः पूर्वं लीयन् निवन्मिति भावः, एव मराम् प्र० टि० ॥
३ 'मपसा' वा० सु० ४ ४ कीदृशिति वा० सु० ४ ५ 'पिष्टपयो' प्र० ४ ६ 'दुरादि' सु० ४ ७ 'ति
सारं' सु० ४ ८ 'याम्' प्र० टि० ४ ९ 'ययते' प्र० ४ १० 'कृत्यपुत्रवदयुमन्त्रोऽयम्' सु० ४ ११ 'हास्यं
भाहवा' वा० सु० ४ १२ 'विमवाय' वा० सु० ४ १३ 'यवा' सु० ४ १४ पयःप्रशान्तपद्मपुत्रं सु० ४

भवमवरमिहं विमृत्यु सम्यग्, गलितरसैर्विषयेषु वारिवाहै ।	
मुनिमिरिव निबद्धमौन्मुट्टैर्गमनवनं विमलह्रममिध मेने ॥	५८
पतिरनिनपति स्म वासराणामतिशुभति स्म विभावरसुजङ्ग ।	
जलमतिभजति स्म निर्मल्यं, मधुरमतिध्वनि स्म राजहंसी ॥	५९
पुल्लिपरिसेर सरस्वतीनामजनि समागमनं मुखजनानाम् ।	
भवति यदवन्द्येकनादवापिष्ठहस्तितारिमुखं मुसं जनानाम् ॥	६०
निनिक्लज्यज्योजिहान्वंता, क्रमविरमज्जल्लसिन्धुतीरा ।	
शरदवनरति स्म मलहंसा, दिशि दिशि कागजदम्बकावतंसा ॥	६१
शुद्धजविष्टापि प्रमृतशून्यानल्पपृष्ठ पण्डित्य सपपणं ।	
सममरमत दन्तिदानमधैर्भगति सद्यस्मैपुनै सर्व एव ॥	६२
विदेन्निजगदापद पयोदा, परिरज्जिन्म्विभूतयो वन्तु ।	
अहह ! न सहत ग्रहायसामयुद्धमिध नियतिविश्रायवैरा ॥	६३
फनमयसमयायवे विनिष्ट, ऋतुपुराण भर्तृमति तथ्यमेव ।	
दधतुपरधा कथं विकारं, दिनपति-रात्रिपती तदीयनेने ॥	६४
सरसिमुखि स्र सर्गार, क्लृप्तसमृद्धिसमुदता धरित्री ।	
कलमपि कलहसकामिनीता, गतिनमथ ब्यथयाश्चकार पाण्थान् ॥	६५
कल्यणि कलगीद्वेषे प्रवता, मलयनगधामित नमोविभागं ।	
जगदगदमग्नौ पयध पय, ननु मन्त्रामुदयो मुद न करय ॥	६६
स्नानितमुपगत पयोपरागा, व्यनिरजनि? कुरुयता दिशिष्ट ।	
परिहृतमवनीजने शिल्पिप्रैर्जगत्त्रययत्तविदह-ने ॥	६७
गरगुपत्रयप्रभै पयोदैर्विषयि कृत म्येधित म्ययं न करय ।	
अधिपतिगतिमात्रमुपामृता, तदिय सुगतिमुसमग्रे तेन ॥	६८
भारत मंथ्या केतभास प्रदोष, गेताःप्रादोर्दिव्या दीपवार्त्ता ।	
दुर्गैर्दिग्धा नर्दग यत्र पथ्य, दिष्टा दिष्ट स प्रिष्ट वृथित्याम् ॥	६९
हंसाणा नयनार्त्तद्वन्दो मुक्तानामागर्भैर्दिव मुग्धमुमेव निद्राय ।	
जगामिद्विभुतमागमुं घोरैर्मित्तलेभ्य स्वपनुग्धैश्चमज्जित ॥	७०
स्वपदे धारि निपातिनामगन्धनुर्ध्वेभ्य स्थितान्ध्रम पयोदा भवता मित्तलेभ्यपुनःपुनः गङ्गाया पुन ।	
भानि स्म प्रपद्यन्त्यत्रयतिना तैर्द्विचूनेभ्यः श्यामाग्धैर्धन्वनेनैः स्याद्वद दिवाविनीर्दर्पण ॥ ७१	
॥ इति श्रीगूर्जरेश्वरपुरोद्दिताश्रीसोमेश्वरदेवचिरचने कीर्तिकौमुदीनाग्रि महाकाव्ये परमापेक्षितारो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥	

नवमः सर्गः ।

चिकीर्षिता श्रीसचिवेन तीर्थयात्राऽथ सोऽर्थे समयः समेतः ।

- महात्मनर्महितकार्यसिद्धौ, विधिर्विधत्ते हि सदाऽऽनुकूल्यम् ॥ १
- धर्मैकमित्रोपनिमैत्रणार्थं, तेनार्थिमित्रेण चराः प्रयुक्ताः ।
- न केवलं स्वेन कृतार्थितेन, परैः कृतार्थैः कृतिन कृतार्थाः ॥ २
- रथानथाऽऽनन्दविसंयुतोऽर्थ, लोकः प्रयाणप्रवणांश्चकार ।
- उपक्रमे पुण्यकृतां क्रियाणां, रामस्थमभ्यस्यति को न साधुः ? ॥ ३
- पायेयवन्तः पथि योग्ययुग्माः, सोपानहः सोदकमाजनाश्च ।
- श्रीवस्तुपालेन समं जनीयः, प्रयाणकाय प्रवणा बभूवुः ॥ ४
- आकारितस्तेन कृतादरेण, दूरादपि श्राद्धजनः समेतः ।
- यदुत्तदीयानि पुनर्यगांसि, दिगन्तैरभ्योऽपि दिगन्तराणि ॥ ५
- समे समैरपि बन्धुवर्गैर्निसर्गबन्धुर्विबुधव्रजस्य ।
- शुभे मुहूर्तेऽथ शुभैर्नितैर्मन्त्री स्वनाथानुमतः प्रतस्थे ॥ ६
- पुरः प्रशस्तां फलपुष्पहस्तां, प्रमोदमानः प्रमदां विलोक्य ।
- निरन्तरायां पथि तीर्थयात्रां, मन्त्रीश्चरन्धेतसि निधिकाय ॥ ७
- स्थितः क्षणं क्षीरतरोरपस्तात्, दृष्टानुवृत्तिं मुजनान् निवर्त्य ।
- खलस्य वामं स्वरमध्वगामि, शुश्राव शुश्रावकचक्रशैलम् ॥ ८
- जक्षेपु नित्यं कृतनिग्रहोऽपि, जग्राह तांस्तान् नियमान्मातयः ।
- स्वभावशुद्धाः सुधियो हि तेषां, पावित्र्यलाभाय तथापि लोभः ॥ ९
- रथैस्तुरगैः करभैर्महोत्तैर्गमुस्तदा केऽपि कथञ्चनापि ।
- मन्त्रीश्चैव धर्मपराधुरीणे, तस्मिन् विनाशाय भरस्तु तेषाम् ॥ १०
- न बाह्वेन यस्य स तस्य यानं, नासीद् धनं यस्य स तस्य वित्तम् ।
- न चीवरं यस्य स तस्य वस्त्रं, कन्पट्टकम्पं प्रददौ पदव्याम् ॥ ११
- मुहूर्ते स्म सर्वेऽपि मुक्तबभूवुः, शीते स्म सुत्तेषु स यात्रिकेषु ।
- प्रबुध्यते स्म प्रथमं तदित्थं, सद्गुणमुचरतमाचचार ॥ १२
- प्रभूतभोग्यानि बहुदकानि, सगोरसान्धुमदमानवानि ।
- तत्पातिदुर्गेऽपि पथि प्रयाजान्पुषान्दीन्यासदृशान्यमूवन् ॥ १३

१ 'यं शब्दा समे' मु० ॥ २ निबन्धनार्थं मु० ॥ ३ 'यं स्वयं' प्र० वा० ॥ ४ 'शक्तः

वा० कं० ॥ ५ 'दो पृथिव्याम्' वा० मु० ॥

यात्राप्रसङ्गेन जगाम वेपु, पुपुषु पौरोच्छ्रिततोरणेषु ।	
तेषामर्धांश्चै सचिरोपमेय, सम्मान्यमान सममानयन् तान् ॥	१४
अभ्यर्च्यमान पथिकैरनेकैर्वस्तुन्यनेकान्यपि वस्तुपाठः ।	
तेभ्य प्रभूतानि पथि प्रयच्छन्, नाहङ्करोति स्म न कुप्यति स्म ॥	१५
गतानि जैनान्युचितानि गानुं, जनौ जगौ चर्मणि मध्यमभ्ये ।	
प्रमोदपूरेष्टतरोमराजिनैस्तर तस्य पुनर्यदासि ॥	१६
अनुरुमेण प्रसेताऽस्य साधो, सौ घोरजी यात्रिकघोरणानाम् ।	
यैमानिरैश्यामनि नाकिश्रेकैर्भूमानयष्टिप्रतिमा व्यलोकै ॥	१७
पुरश्च पृष्टेऽपि च पार्श्वयोध, परिस्फुरत खहेनिहस्ता ।	
यात्राजन धर्मणि तस्य गन्धद्वयाधिकृता मुभटा ररक्षु ॥	१८
समुद्रतैर्जोर्णाजिनेद्रहस्येनैव सरोमिध सरोजरस्यै ।	
प्रस्थानमार्गं सचिबस्य सोऽभूदजानानामप्युपलङ्घनीय ॥	१९
यावत्ति निम्नानि ज्मिन्भराणा, येताम्यसणा च फट्म्यकानि ।	
मार्गेषु तेषा मुषिताधितातिं, पूजा स निर्वैर्यं तत प्रतस्ये ॥	२०
स पश्यैर्निर्विषमप्रपञ्चप्रयाणकै प्रीणिर्नमदलोक ।	
धराधर धर्मपुरधर थीशुनुज्जयं शुजुजयी जगाम ॥	२१
आराध सत्रादपि मुद्रेऽस्मिन्सोम्यये कस्मय्युनयेता ।	
मन्त्री मित्रमर्यद्वनोपमर्दं, कपर्दिनं नाम ननाम यक्षम् ॥	२२
स कर्दमेतस्य तनुं कपर्दियन्त्राय यक्षोपवैर्बिन्ध्य ।	
पुष्पैरनैर्बिन्दसद्विवेकशिरोपकृपयस्य चपाय पूजाम् ॥	२३
जज्जप्रमङ्गततमनिषापभोगे भृङ्गभृता जनन ।	
गृह्णावित्यामयिक्मसुरोऽपि, सोऽय मुनेनाऽऽरह मेर्द्ध ॥	२४
तत्राऽऽदिनाथाय नमस्समूर्तं, नान च पूजा च शिषाय मन्त्री ।	
पुग पुरह्नीनयना प्रमोदीत्यमना मुचमकारयन् स ॥	२५
सञ्चितमप्यपददृष्टो, नै ह्यराज विप्लवदमीवम ।	
अमेयतेजोमयमङ्गल्य यथा पुमाय परम म मन्त्री ॥	२६
विरप्पमान मविबन मन पूजार्द्रौ पूयतमभ्य तभ्य ।	
सकुहृत्सङ्गाननङ्गच्छन्, गच्छन्वाऽनोरथन मोगमग ॥	२७
न केदल केवलचक्रवर्ती, हृष्यार्द्र सचिबस्य सोऽभूत् ।	
शुक्लपाङ्केष विप्रेयया, तद्यान नान वर्य नेर्द्विषम् ॥	२८

१ शैतानुद्धिं वा० ॥ २ गृह्यम् प्र० वा० ॥ ३ व्यापारयो यां वा० वा० । रा धोर
 यिर्वा मु० ॥ ४ तपस्यलो वा० मु० ॥ ५ यदीष्ट वा० । यदीष्टः मु० ॥ ६ स्वार्त्तं च मु० ॥
 ७ श्रुत्यात्मना वा० मु० ॥ ८ क्य ततोऽङ्गनाम् मु० ॥ ९ यदीष्टम् वा० मु० ॥

श्रीनामिषु नृपृथगनामिषुल्यैः, पूजोपहारैः प्रचुरैः प्रसन्नः ।	
मन्ये स्वभावादपि वीतरागः, स स्कीतरागः सचिवे बभूव ॥	२९
स धेत-पतिर्यसनेर्न्यषत्, यान्नि प्रमोसस्य महापताकाम् ।	
सरोजराजीरजसाज्जुविहो, त्रिये यया सिद्धसरिअवाहः ॥	३०
धर्मांय निर्मापयति स्म तस्मिन्, मन्त्री धरित्रीश्रुति वस्तुपालः ।	
श्रीनेमि-पार्श्वप्रभुहर्म्यधुम्ममपुमनेत्राचलशृङ्गचारु ॥	३१
प्रासादसौन्दर्यविलोकेन, सम्भृतमृवस्तरसम्पन्नानाम् ।	
विभासितं तत्कान्तिकरम्बितानि, वृत्तमिमतानीव दिग्गं मुखानि ॥	३२
यदुत्तमाङ्गस्थितयातयुग्मकुम्भन्यजस्फूर्जदशीकुञ्जिताः ।	
अन्येष्वनेन्या इव चासरान्ते, विराद् विराजन्ति कराः स्वरांजो ॥	३३
कथं न विधेयकुटुम्बकोऽसौ, यत्पत्न्येन घटवाञ्छकार ।	
यन्मण्डपे चण्डपपौत्रपौत्रः, स्वपूर्वजानां सुहृदां च मूर्त्ताः ॥	३४
स्वस्यानुजस्यापि च मूर्त्तियुग्मं, तुरङ्गयुग्मस्थमचीरुद यः ।	
मनीषिणां मुखयत्तमोऽपि मन्ये, वृत्तमालानमयं न वेति ॥	३५
शैलोपकण्ठेऽयमकुण्डलुदिः, सरः सरस्वत्सदृशं चकार ।	
उष्णेऽपि नोष्णानि भवन्ति यस्य, चारीणि रीयाध्वगजीवितानि ॥	३६
दित्राणि तत्रैव दिनानि नीवा, क्रीडाऽर्पदानैः मुकुतं यगश्च ।	
कथञ्चिदावृच्छच्च तमीमांशं, भाषयत्तौ रैवतकं जगाम ॥	३७
तदुज्जयन्तापरसंज्ञमदिमात्राविधेयमासिद्धसहलोकः ।	
स विश्वमुच्चैरगृन्ते सिद्धनुपागमबन्ध इवानुवाह ॥	३८
तुरङ्गमार्गां चरगाग्रघातैरुद्धतगुलीपटलच्छलेन ।	
तस्य प्रयागे प्रणयिषिपस्यै, नगोऽनुगच्छन्निव स व्यराजत् ॥	३९
नरो न रोगापदमाप कोऽपि, न कापि यानव्यसनं बभूव ।	
कस्याप्यभूत् तस्युद्धतप्रभावाच्च वस्तुनो हानिरहानि तानि ॥	४०
सुखेन साधैः पञ्चि यानिकाणां, सिन्धूरमाषा अपि तास्ततार ।	
संसारनामान्गमपरमस्थि, स तु स्वयं लङ्घयितुं प्रवृत्तः ॥	४१
भनामनालोकितातुर्निमित्तः, पदे पदे प्राज्यतुगोदकाढ्यः ।	
अहिंसजनिवैद्य बभूव तस्य, मार्गः मुदुगोऽपि क्लानुक्रुतः ॥	४२
तीर्थैः समग्रैरुपचर्यमाणं, सिद्धिरनेनैरुपव्यमानम् ।	
ग्लैरनन्तैरुपचीयमानं, मूर्त्तैः प्रमूर्त्तैरुपजीव्यमानम् ॥	४३

फलानि पुष्पाणि मनोरमाणि, यस्य हुमाः प्रत्यहमुद्बहन्ति ।	
अत्यन्तभक्तेषु मन्त्रयस्त्रयं, श्रिये मूर्त्यै महतामुपासितः	॥ ५९ ॥
श्रीनेमिनाथेन जिनेश्वरेण, पवित्रिते यत्र धराधरेन्द्रे ।	
हिंसाः समुञ्चन्ति परःसहसाः, स्वभावसिद्धामपि नैरवुद्धिम्	॥ ६० ॥
तं गोत्रमुख्यं विधृतक्षमं च, सङ्गमाज्जितं च समुन्नतं च ।	
श्रीवस्तुपालः कमलादयकुन्ध्य, स्वैक्यमुपवीचरमाहरोह	॥ ६१ ॥
रीणान् धुरीणान् युगतो विगुह्य, जनेषु यातेषु तपस्विभुजैः ।	
अथायि तेषां शक्रदैरपस्ताव सद्गतिः स्याद् वृषवर्जितानाम्	॥ ६२ ॥
न केवलं शैलशिरोऽपिखड्गः, समानमानानपरीचकार ।	
अपो विपातुं स विशुद्धबुद्धिः, संसारमप्यारभते रथ मन्त्री	॥ ६३ ॥
श्रीनेमिनामानमानवाधैस्तेजोमिरन्भुज्ज्वलयन्तमाशाः ।	
जिनेन्द्रमथैव जनेन्द्रमन्त्री, निदर्शनातीतमसौ ददर्श	॥ ६४ ॥
स्नानं स पात्रप्रतिपादितार्पस्तीर्थोदकैस्तैर्यकरस्य तस्य ।	
कृत्या च कृष्णागुरु-चन्दनाधैर्विलिपने धौतमलानुलेपः	॥ ६५ ॥
घनैः प्रसूनैर्वसनैस्नूनैः, पत्रैः पत्रिवैरग्नैः प्रधानैः ।	
गृतैर्वधूनां च गृह्णीतविभूतैः, सदानैर्विततान् पूजाम्	॥ ६६ ॥ शुभम् ॥
प्रभोः सपर्यावसरेषु तस्य, कर्पूरधूपैः परितः स्फुरद्भिः ।	
तमग्निमेकं सुरभीचकार, दिग्गो यतोभिः स पुनः समप्राः	॥ ६७ ॥
श्रीनेमिनाथावसथान्तरस्ये, कर्पूर-कृष्णागुरुधूपधूमे ।	
पलायमानः कञ्चिप कालस्तत्कालमासीन्मशकानुकाशी	॥ ६८ ॥
धर्मक्रियाविस्मृतराजकार्यस्तत्रैव निन्ये स बहून्यहानि ।	
असक्तमासक्तमर्मान्सितेऽर्थे, कालविपातं न हि वेत्ति चेत्	॥ ६९ ॥
नमनमन्दप्रतिमः प्रभासे, चन्द्रप्रभं चन्द्रसमानकीर्तिः ।	
श्लाघाचलकचरमादुल्लेके, लोकेन सौराष्ट्रनिवासिनाऽसौ	॥ ७० ॥
अभ्यर्थ्य मन्त्रा भवमन तीर्थे, श्रीसोमनाथाभिषया प्रसिद्धम् ।	
प्रतप्रभूनाञ्जलिना प्रदत्तो, जलाञ्जलिस्तेन पुनर्मवाय	॥ ७१ ॥
तेनोपनिर्तिर्षनसारधूपैः, स्वयङ्गमज्ञादितगौनकेतुः ।	
शङ्के स लङ्केऽरुणभाधैश्चिराय निषं सुरभीचक्रम्	॥ ७२ ॥
अनेन सयापितसद्युत्पदेशेन, तदेतन्निवासिनीनाम् ।	
सुवासिनीनां वदनाञ्जलाञ्जौ, निवेशिना स्वस्तुनिराजहंसी	॥ ७३ ॥

१ स्वतुल्यम् ॥ २-३-४ ॥ २ 'यातुं' लुपि ॥ ३ 'रघुज्य' वा० ४२ ॥ ४ स्नानं स
 पु० ॥ ५ 'रघुरैः' परि ॥ ६ ॥

[illegible]

KATHAVATE'S INTRODUCTION

to the first edition of

KĪRTIKAUMUDĪ

Kirtikaumudī, like *Vikramanekadevacharya* and *Sriharshacharya*, is a Panegyric written by a poet on his patron. In this instance the patron is not a king, but the minister of a king. In order to interest the reader in the poem, it is enough to mention that it was the hero of this panegyric and his brother who erected the justly famed *Jaina temples* on Mount Abu. If a sentimental traveller while winding his way to the temples through the mountain, is held enchanted by the huge rocks sending into the skies their fantastic summits, if the thick forest enriched by the fragrant *Champa*, the shady *Jambu* loaded with luscious fruit, the tall *Pangard* covered with a dazzling blossom, the delicious *jasmine* and the delicate *Sirisha*, and made sonorous by endless varieties of the notes of birds charms the senses, if majestic nature subdues his heart by pleasing grandeur on the way, on entering these lovely edifices he is compelled to admit that art, Nature's daughter, has charms which are her own. No better description of these triumphs of art can be conceived than the following —

"The principal feature in each is the usual octagonal dome, forming a vestibule to the adytum, wherein the objects of worship are enshrined and around which is a columned peristyle, roofed with numerous domes. The whole edifice is of white marble and the sculptured ornaments with which every part of the surface is covered are so finely chiselled, as to suggest the idea that they have been moulded of wax, the semi-transparent edges almost realizing by their hardly perceptible thickness, the mathematician's definition of a line. The pendant which hangs from the centre of the dome of the temple of Tejpal is particularly remarkable, and rivets the attention of every visitor. As Colonel Tod justly remarks, 'the delineation of it defies the pen, and would tax to the utmost the pencil of the most patient artist and he is secure in asserting that no ornament of the most florid style of Gothic architecture can be compared with it in richness.' It appears like a cluster of the half-disclosed lotus, whose cups are so thin, so transparent and so accurately wrought, that it fixes the eye in admiration. The sculpture of these temples does not, however, confine itself to the representation of inanimate natural objects, it exercises itself also upon the scenes of domestic life, the labours of navigation and commerce, and the struggles of the battle-field and it may be safely asserted that the student of antiquities, who should devote sufficient attention to these bas-reliefs, would be amply repaid by a large increase of knowledge regarding many interesting points in the manners and customs of mediæval India. — *Forbes Rasmala*

The present account of those great men to whose liberality India is indebted for these artistic structures is further interesting as being a contemporary record. Indeed if commemoration of events of the time had been the author's aim more

than showing his own skill in devising new modes of adulation and winning for his work the name of a Mahākāvya, the purposes of antiquarian inquiry would have been better served. As it is, the poem throws some light on the obscure period when the *Anahillatāda* house was superseded by the *Dhavalakkaka* house. But before making an analysis of the facts contained in the poem, it will be well to note what is known of the author and make some estimate of the merits of his writings.

II

The name of the author is *Someśvara*. It is mentioned at the end of each canto and also in the body of the poem. At the end of each canto it is mentioned that the poet was the family-priest of the king of the *Gāryaras*. In the beginning of the poem the poet says,¹ "*Sri Someśvara* delineates the character of *Vastupāla*, seeing that minister's devotion to himself (*Someśvara*, the author) is extreme, that his (the minister's) family is illustrious, his personal appearance splendid, his conduct excellent, his charity accompanied by courtesy, his elevated position such as humbles his foes, his talents such as defy those of *Bṛhaspati*, his mercy such as crushes all germ of fear, his fame an ornament of the earth, his administration regulated by justice." He further declares, in his own way, that it was genuine admiration of his hero that prompted the poem. He says, "In consequence of the excessive joy at finding a treasure of rubies in the excellent qualifications of the great minister, the muse of *Sri Someśvara* is impatient to sing" Further on² the poet mentions that he was the priest of *Lavanaprasāda* of *Dhavalakkaka*, a prince descended from one of the kings of *Anahillapura*.

I have met with several inscriptions composed by *Someśvara* two in the temple on Mount Abu, built by *Vastupāla*'s brother, are given in the Appendix. These are dated 1297 *Samvat* or 1241 A.D. There is a third at *Dabhoi*, in the territory of His Highness the *Gāyakhāda*, on one side of the gate called *Hirā Bhāgoja*. Greater part of it has become illegible. The stone on which it is inscribed is broken, and many lines are altogether effaced. It contains several found in the *Kirīṣkaumudī* and in one of the inscriptions on Mount Abu. The line in which the author's name is mentioned runs thus:—

प्रालिखिता सर्वभूतसुखपुरोहितेका :

बद्धा सोमेश्वरेन्द्रनाथा यामार्गनित्यब्रह्महविष्यतः ।

It is dated 1311 *Samvat* (1255 A. D.) *Jyeshtha Sudī Budha Dine*, Wednesday the day of the moonlight fortnight of *Jyeshtha*. The inscriptions in *Vastupāla*'s temple on the *Satruñjaya* hill are the composition of this poet. I have not seen them, but from the photographs which Dr. *Bühler* kindly showed to me, I find they are dated 1288 *Samvat* (1232 A. D.), the 10th day of the dark fortnight of *Phālguna*.

From this evidence it is clear that *Someśvara* was the family-priest of *Dhīmadra* of *Anahillatāda* *Patilpa* and of *Lavanaprasāda* of *Dholka*, and that he was patronised by the two Jaina ministers, *Vastupāla* and *Tejhpāla*,³ whom he entertained by his witty poems panegyrics. The *Chaturvintati Prabandh* of

¹ Page 5, Sta 45 to 48

² Page 16, St. 84

³ This work was written in 1905

Samvat, or 1349 A. D., at the instance of *Mahā-senaka* at *Dabhoi*, (*Delhi* ?)

Rājasekhara contains several anecdotes regarding *Someśvara* and his patrons, the two ministers. It appears from one of the *Prabandhas* that there was great jealousy between *Someśvara* and the *Jaina Panditas* of his time. One of these *Harīhara*¹ came to the court of *Vīradhavalā*. By his wit and learning he gained the favour of the king as well as of the minister *Vasupāla*. This roused the jealousy of *Someśvara*, who never attended the court when *Harīhara* was present. But once the king sent for *Someśvara*, and asked him to read before *Harīhara* a poem consisting of one hundred and eight verses which he (*Someśvara*) had composed for being inscribed on a tablet in a new temple of *Vīra Nariyana*, built by the king. *Harīhara* heard the verses, and said they were good—he knew them. The king looked surprised, but *Harīhara* immediately recited them word for word. *Someśvara* was overwhelmed with shame. When all left the court, he went to *Vasupāla* and assured him that the poem was really his own composition, and asked him how he could free himself from the unmerited disgrace. *Vasupāla* advised him to seek the friendship of *Harīhara*. *Someśvara* was obliged to listen to the advice, and when he was thus humbled, *Harīhara* one day went to the king's court and related how he had acquired by certain austerities the power of committing to memory, only by hearing once, any number of verses not exceeding one hundred and eight. He assured the king that the poem in question was an original composition of *Someśvara*. *Someśvara*'s credit was re-established. The *Prabandha* goes on to say that *Harīhara*, after some days, left the court, being disgusted with the jealousy of *Someśvara*.

It will appear from the sequel that *Someśvara*'s influence at the court remained undiminished even after the accession of *Viśaldeva* to the throne of *Patana*, and that he was able to prove the sincerity of his love to his patron by saving him from the effects of the displeasure of that young king.

I have been told that there is a commentary on *Kāvya-prakāśa* written by *Someśvara*, and also a life of *Kumārāpala*. There is a copy of the first at Jessalmir, and one of the second in the celebrated *Bhāndāra* at *Patana*. I tried hard to get at this book, but to no purpose.

As to the poetical merit of the present work, I humbly think that it does show that the author possessed to a certain extent 'the vision and the faculty divine'. It must be admitted that his taste was affected by the corrupt tendency of his age. His work is full of play upon words and all varieties of alliteration. But he employs these generally whenever he is writing on worn out and exhausted topics. Whenever he has got anything new to say, and he frequently has it, his expression is happy and full of feeling. The dream of *Vīradhavalā*, containing the wail of the guardian deity of the kingdom of Gujarat for her past glory, is a splendid composition. It is translated into English by Dr. *Bukler*—(See *Indian Antiquary*, page 189, volume VI, Part LXX.) The descriptions of the morning and evening and of the seasons are also remarkable. Some of the reflections on moral and political subjects are extremely well conceived. In describing the disinterestedness of his hero, he says, he (the minister) was not only free from the desire of appropriating the wealth of the people, but was even above the

¹ He is mentioned in *Kīrtikāumudī*. See page 3 (P. 4 in this edition) St. 25.

temptation of praise. Many an administrator, even at the present day, may well study the precept contained in this. In one place he expresses his wonder at the bewilderment of man who neglects his duty, though the inner soul bears direct testimony to its paramount claim by rejoicing when it is fulfilled. This is another mode of expressing the doctrine that conscience is the final ethical sanction or standard. His style is generally clear and felicitous, and—barring the puns—the writing may be regarded as one of good taste. One accustomed to read *Sanskṛita* poetry may not regard an hour or two spent in reading it as ill spent.

III

For those scholars who do not read *Sanskṛita*, I propose to give a short abstract of the contents of this poem. It opens with an invocation of the blessing of *Viṣṇu*, *Siva* and *Pārvatī* and *Siva* and *Viṣṇu* in incorporate forms, and lastly, *Sarasvatī*, the goddess of learning. Then, after making his obeisance to poets in general, the poet goes on to mention in particular *Vālmiki*, *Vyāsa*, *Kālidāsa*, *Māgha*, *Bhāravi* and *Bāṇa*, paying some graceful compliment to each. Then follow more modern and less generally known authors. They are *Dhanpāla*, *Bhīlana*, *Hemasārī*, *Nilakaṇṭha*, *Prahlādanāḍa*, *Narachandra*, *Vijayasimha*, *Subhāṣa*, *Harīhara*, *Yaśovīra* and *Vastupāla*. Next, a few verses are devoted to the praise of good men and to the deprecation of wicked men. Then the poet mentions that it was his sincere admiration of the virtues of *Vastupāla* and the kindness which that minister always showed to him, which prompted him to write the poem. Thus finishing his introduction, the poet enters upon the subject of his poem. *Anahillapura* is described as a large city protected by a fortification. It has extensive gardens. The palaces in it are large, and the bright terraces seem as if they were all silver. On all sides are heard *Vedas* repeated, joyful songs sung and praises chanted by bards. There is a large temple of *Mahādeva* in it. The population is not exclusively *Jaina*, for sacrificial smoke is described as going up to heaven. The river *Sarasvatī* runs by its side. The women in the city are beautiful, and adorn their persons with rich ornaments. The dust raised by prancing horses is put down by the rut flowing from the temples of elephants. The palaces are lofty like mountains, and their tops are adorned by flags. Beautiful women attract the hearts of young men, yet no irregularity follows, as the administration of justice is perfect. Near the town there is a large lake surrounded on all sides by temples, and having on one side a triumphal column of enormous height.¹

In giving an account of *Anahillapura* kings, the poet does not begin with *Varaṇḍya*, but begins with the accession of *Mālarāja* to the throne. The sovereignty of Gujarat is described as having offered herself of her free choice to *Mālarāja*. This means, I suppose, that he was not the direct heir to the throne, but came by it through the influence of some leading men from the state. Of his exploits, his defeat of the *Lātas* under the command of their general *Nārāya* and the seizure of his elephants and his fight with *Lakṣa*, called *Lakṣa-Paṇḍita*, are mentioned.²

His successor was *Chāmundaṛāja*.³ His son *Vallabharāja*⁴ succeeded him. He

1 The triumphal column is now gone. One can still see the site of the lake. The basin is all filled up, but the limits are visible. It seems it extended over several miles and presumably was used for agricultural and gardening purposes.

2 *Vaṭṭasena* of *Mṛutara* assigns to the

accession of *Mālarāja* the date 1017 *Samvat*

3 This name is omitted in *Vaṭṭasena*

4 1052

was so brave that he won for himself the name of *Jagatkampana*. The next king was his brother *Durīabharāja*,¹ whose hand never fell on the wives of other people, and never on the wealth of *Brāhmanas*. His successor was *Bhīmarāja*,² his nephew, who always kept an efficient check on the king of *Māltā*, but who spared his life though he had fallen into his hands. The crown descended after him to *Karna*,³ whose fame reached far. His son was the well known *Jayāsīnha*,⁴ who subdued all kings. He defeated, in a battle, *Khengāra* of *Soreth*, whose bravery knew no bounds. He reduced to subjection the king of *Sindh*.⁵ He conquered and again restored the kingdom of *Arnorāja*. The king of *Sākambhārī* saw that the enemies of *Jayāsīnha* atoned for their enmity with him, with their lives and yielded to his power. He defeated the *Paramūra* king and took *Narauarman*, the king of *Dhara*, as prisoner, and took possession of his city. The king of *Mahabaka*,⁶ taking a lesson from the fate of *Dhārā*, presented him with sums of money under the colour of his being a guest. His conquests extended in all directions. The *Gonḍa* country, celebrated for ghee, fell into his hands. He conquered *Barbhara*, the chief of Demons, and got the name *Siddharāja*.⁷ His successor was *Kumārāpāla*.⁸ His valour was as great as his accomplishments. He is described as relinquishing the wealth of the deceased, by which, very probably, is meant that he extended the the right of succession to more indirect descendants than was allowed by the law then prevalent. Among the kings whom he conquered were the *Jangala* king, and the kings *Ballala* and *Malikārjuna* of *Māltā* and the *Concan*. The fact of his having yielded to the influence of Jainism is described by the poet as his having made a vow, at the request of kings and beasts of the forest, not to take any life. His successor⁹ was *Ajayapāla*. He forcibly wrested from the *Jangala* king, as a punishment, a gold *Manjapāṭā*¹⁰ and his furious elephants. His return to *Hindu Orihodoxy* is described as his having given to *Brāhmanas* the earth after he purified by his weapons. He is described as daily marrying wives, daily giving gifts, and daily punishing kings. His son was *Malarāja*,¹¹ who scattered the forces of the king of the *Turushkas*.¹² He was succeeded by his brother *Dhīma*.¹³ The kingdom of this simple king was divided amongst themselves, by his ministers and dependent kings. *Arnorāja*, a scion of another branch of the *Choudakya*¹⁴ family, resented this act of spoliation, and began to establish the sovereignty of his house again. He fought bravely all his life, and killed in his attempt at re-organising the kingdom which was broken up. His son, *Lavanaprusiddha*, is described by the poet as being his (poet's) contemporary. He conquered the king of *Nadula*. The king of *Dhārā* came to invade his dominions, but, finding him firm in his opposition, retraced his steps. *Singhana*, the king of the southern country, whose army was numerous but personal valour limited, avoided hostility with him, as his personal valour was great, though his army was small. His son, *Isradhava*, was equal to

1 1106. 2 1078. 3 1120. 4 1150. 5 I am not sure सिन्धु means the king of Sindh. It may be a proper name. 6 Madanavarman. 7 Those that keep in subjection evil spirits are called Siddhas. 8 1199-1188 says that at the end of the reign of Jayasinha (Aśvika sudi tithi 3) there was an interregnum of 3 days. Kumārāpāla is described as the grandson of Dhīmaśva through the male line. 9 1212. Dhīma: Pāṇḍava sūta. An interregnum of 33 months and 7 days after the death of Kumārāpāla. 10 Probably what is now called Ambica. 11 1234. Chandra Sudi Chaitrī 11. 12 Mahoravata. 13 1236. 14 1202. 15 1202. 16 1202. 17 1202. 18 1202. 19 1202. 20 1202. 21 1202. 22 1202. 23 1202. 24 1202. 25 1202. 26 1202. 27 1202. 28 1202. 29 1202. 30 1202. 31 1202. 32 1202. 33 1202. 34 1202. 35 1202. 36 1202. 37 1202. 38 1202. 39 1202. 40 1202. 41 1202. 42 1202. 43 1202. 44 1202. 45 1202. 46 1202. 47 1202. 48 1202. 49 1202. 50 1202. 51 1202. 52 1202. 53 1202. 54 1202. 55 1202. 56 1202. 57 1202. 58 1202. 59 1202. 60 1202. 61 1202. 62 1202. 63 1202. 64 1202. 65 1202. 66 1202. 67 1202. 68 1202. 69 1202. 70 1202. 71 1202. 72 1202. 73 1202. 74 1202. 75 1202. 76 1202. 77 1202. 78 1202. 79 1202. 80 1202. 81 1202. 82 1202. 83 1202. 84 1202. 85 1202. 86 1202. 87 1202. 88 1202. 89 1202. 90 1202. 91 1202. 92 1202. 93 1202. 94 1202. 95 1202. 96 1202. 97 1202. 98 1202. 99 1202. 100 1202. 101 1202. 102 1202. 103 1202. 104 1202. 105 1202. 106 1202. 107 1202. 108 1202. 109 1202. 110 1202. 111 1202. 112 1202. 113 1202. 114 1202. 115 1202. 116 1202. 117 1202. 118 1202. 119 1202. 120 1202. 121 1202. 122 1202. 123 1202. 124 1202. 125 1202. 126 1202. 127 1202. 128 1202. 129 1202. 130 1202. 131 1202. 132 1202. 133 1202. 134 1202. 135 1202. 136 1202. 137 1202. 138 1202. 139 1202. 140 1202. 141 1202. 142 1202. 143 1202. 144 1202. 145 1202. 146 1202. 147 1202. 148 1202. 149 1202. 150 1202. 151 1202. 152 1202. 153 1202. 154 1202. 155 1202. 156 1202. 157 1202. 158 1202. 159 1202. 160 1202. 161 1202. 162 1202. 163 1202. 164 1202. 165 1202. 166 1202. 167 1202. 168 1202. 169 1202. 170 1202. 171 1202. 172 1202. 173 1202. 174 1202. 175 1202. 176 1202. 177 1202. 178 1202. 179 1202. 180 1202. 181 1202. 182 1202. 183 1202. 184 1202. 185 1202. 186 1202. 187 1202. 188 1202. 189 1202. 190 1202. 191 1202. 192 1202. 193 1202. 194 1202. 195 1202. 196 1202. 197 1202. 198 1202. 199 1202. 200 1202. 201 1202. 202 1202. 203 1202. 204 1202. 205 1202. 206 1202. 207 1202. 208 1202. 209 1202. 210 1202. 211 1202. 212 1202. 213 1202. 214 1202. 215 1202. 216 1202. 217 1202. 218 1202. 219 1202. 220 1202. 221 1202. 222 1202. 223 1202. 224 1202. 225 1202. 226 1202. 227 1202. 228 1202. 229 1202. 230 1202. 231 1202. 232 1202. 233 1202. 234 1202. 235 1202. 236 1202. 237 1202. 238 1202. 239 1202. 240 1202. 241 1202. 242 1202. 243 1202. 244 1202. 245 1202. 246 1202. 247 1202. 248 1202. 249 1202. 250 1202. 251 1202. 252 1202. 253 1202. 254 1202. 255 1202. 256 1202. 257 1202. 258 1202. 259 1202. 260 1202. 261 1202. 262 1202. 263 1202. 264 1202. 265 1202. 266 1202. 267 1202. 268 1202. 269 1202. 270 1202. 271 1202. 272 1202. 273 1202. 274 1202. 275 1202. 276 1202. 277 1202. 278 1202. 279 1202. 280 1202. 281 1202. 282 1202. 283 1202. 284 1202. 285 1202. 286 1202. 287 1202. 288 1202. 289 1202. 290 1202. 291 1202. 292 1202. 293 1202. 294 1202. 295 1202. 296 1202. 297 1202. 298 1202. 299 1202. 300 1202. 301 1202. 302 1202. 303 1202. 304 1202. 305 1202. 306 1202. 307 1202. 308 1202. 309 1202. 310 1202. 311 1202. 312 1202. 313 1202. 314 1202. 315 1202. 316 1202. 317 1202. 318 1202. 319 1202. 320 1202. 321 1202. 322 1202. 323 1202. 324 1202. 325 1202. 326 1202. 327 1202. 328 1202. 329 1202. 330 1202. 331 1202. 332 1202. 333 1202. 334 1202. 335 1202. 336 1202. 337 1202. 338 1202. 339 1202. 340 1202. 341 1202. 342 1202. 343 1202. 344 1202. 345 1202. 346 1202. 347 1202. 348 1202. 349 1202. 350 1202. 351 1202. 352 1202. 353 1202. 354 1202. 355 1202. 356 1202. 357 1202. 358 1202. 359 1202. 360 1202. 361 1202. 362 1202. 363 1202. 364 1202. 365 1202. 366 1202. 367 1202. 368 1202. 369 1202. 370 1202. 371 1202. 372 1202. 373 1202. 374 1202. 375 1202. 376 1202. 377 1202. 378 1202. 379 1202. 380 1202. 381 1202. 382 1202. 383 1202. 384 1202. 385 1202. 386 1202. 387 1202. 388 1202. 389 1202. 390 1202. 391 1202. 392 1202. 393 1202. 394 1202. 395 1202. 396 1202. 397 1202. 398 1202. 399 1202. 400 1202. 401 1202. 402 1202. 403 1202. 404 1202. 405 1202. 406 1202. 407 1202. 408 1202. 409 1202. 410 1202. 411 1202. 412 1202. 413 1202. 414 1202. 415 1202. 416 1202. 417 1202. 418 1202. 419 1202. 420 1202. 421 1202. 422 1202. 423 1202. 424 1202. 425 1202. 426 1202. 427 1202. 428 1202. 429 1202. 430 1202. 431 1202. 432 1202. 433 1202. 434 1202. 435 1202. 436 1202. 437 1202. 438 1202. 439 1202. 440 1202. 441 1202. 442 1202. 443 1202. 444 1202. 445 1202. 446 1202. 447 1202. 448 1202. 449 1202. 450 1202. 451 1202. 452 1202. 453 1202. 454 1202. 455 1202. 456 1202. 457 1202. 458 1202. 459 1202. 460 1202. 461 1202. 462 1202. 463 1202. 464 1202. 465 1202. 466 1202. 467 1202. 468 1202. 469 1202. 470 1202. 471 1202. 472 1202. 473 1202. 474 1202. 475 1202. 476 1202. 477 1202. 478 1202. 479 1202. 480 1202. 481 1202. 482 1202. 483 1202. 484 1202. 485 1202. 486 1202. 487 1202. 488 1202. 489 1202. 490 1202. 491 1202. 492 1202. 493 1202. 494 1202. 495 1202. 496 1202. 497 1202. 498 1202. 499 1202. 500 1202. 501 1202. 502 1202. 503 1202. 504 1202. 505 1202. 506 1202. 507 1202. 508 1202. 509 1202. 510 1202. 511 1202. 512 1202. 513 1202. 514 1202. 515 1202. 516 1202. 517 1202. 518 1202. 519 1202. 520 1202. 521 1202. 522 1202. 523 1202. 524 1202. 525 1202. 526 1202. 527 1202. 528 1202. 529 1202. 530 1202. 531 1202. 532 1202. 533 1202. 534 1202. 535 1202. 536 1202. 537 1202. 538 1202. 539 1202. 540 1202. 541 1202. 542 1202. 543 1202. 544 1202. 545 1202. 546 1202. 547 1202. 548 1202. 549 1202. 550 1202. 551 1202. 552 1202. 553 1202. 554 1202. 555 1202. 556 1202. 557 1202. 558 1202. 559 1202. 560 1202. 561 1202. 562 1202. 563 1202. 564 1202. 565 1202. 566 1202. 567 1202. 568 1202. 569 1202. 570 1202. 571 1202. 572 1202. 573 1202. 574 1202. 575 1202. 576 1202. 577 1202. 578 1202. 579 1202. 580 1202. 581 1202. 582 1202. 583 1202. 584 1202. 585 1202. 586 1202. 587 1202. 588 1202. 589 1202. 590 1202. 591 1202. 592 1202. 593 1202. 594 1202. 595 1202. 596 1202. 597 1202. 598 1202. 599 1202. 600 1202. 601 1202. 602 1202. 603 1202. 604 1202. 605 1202. 606 1202. 607 1202. 608 1202. 609 1202. 610 1202. 611 1202. 612 1202. 613 1202. 614 1202. 615 1202. 616 1202. 617 1202. 618 1202. 619 1202. 620 1202. 621 1202. 622 1202. 623 1202. 624 1202. 625 1202. 626 1202. 627 1202. 628 1202. 629 1202. 630 1202. 631 1202. 632 1202. 633 1202. 634 1202. 635 1202. 636 1202. 637 1202. 638 1202. 639 1202. 640 1202. 641 1202. 642 1202. 643 1202. 644 1202. 645 1202. 646 1202. 647 1202. 648 1202. 649 1202. 650 1202. 651 1202. 652 1202. 653 1202. 654 1202. 655 1202. 656 1202. 657 1202. 658 1202. 659 1202. 660 1202. 661 1202. 662 1202. 663 1202. 664 1202. 665 1202. 666 1202. 667 1202. 668 1202. 669 1202. 670 1202. 671 1202. 672 1202. 673 1202. 674 1202. 675 1202. 676 1202. 677 1202. 678 1202. 679 1202. 680 1202. 681 1202. 682 1202. 683 1202. 684 1202. 685 1202. 686 1202. 687 1202. 688 1202. 689 1202. 690 1202. 691 1202. 692 1202. 693 1202. 694 1202. 695 1202. 696 1202. 697 1202. 698 1202. 699 1202. 700 1202. 701 1202. 702 1202. 703 1202. 704 1202. 705 1202. 706 1202. 707 1202. 708 1202. 709 1202. 710 1202. 711 1202. 712 1202. 713 1202. 714 1202. 715 1202. 716 1202. 717 1202. 718 1202. 719 1202. 720 1202. 721 1202. 722 1202. 723 1202. 724 1202. 725 1202. 726 1202. 727 1202. 728 1202. 729 1202. 730 1202. 731 1202. 732 1202. 733 1202. 734 1202. 735 1202. 736 1202. 737 1202. 738 1202. 739 1202. 740 1202. 741 1202. 742 1202. 743 1202. 744 1202. 745 1202. 746 1202. 747 1202. 748 1202. 749 1202. 750 1202. 751 1202. 752 1202. 753 1202. 754 1202. 755 1202. 756 1202. 757 1202. 758 1202. 759 1202. 760 1202. 761 1202. 762 1202. 763 1202. 764 1202. 765 1202. 766 1202. 767 1202. 768 1202. 769 1202. 770 1202. 771 1202. 772 1202. 773 1202. 774 1202. 775 1202. 776 1202. 777 1202. 778 1202. 779 1202. 780 1202. 781 1202. 782 1202. 783 1202. 784 1202. 785 1202. 786 1202. 787 1202. 788 1202. 789 1202. 790 1202. 791 1202. 792 1202. 793 1202. 794 1202. 795 1202. 796 1202. 797 1202. 798 1202. 799 1202. 800 1202. 801 1202. 802 1202. 803 1202. 804 1202. 805 1202. 806 1202. 807 1202. 808 1202. 809 1202. 810 1202. 811 1202. 812 1202. 813 1202. 814 1202. 815 1202. 816 1202. 817 1202. 818 1202. 819 1202. 820 1202. 821 1202. 822 1202. 823 1202. 824 1202. 825 1202. 826 1202. 827 1202. 828 1202. 829 1202. 830 1202. 831 1202. 832 1202. 833 1202. 834 1202. 835 1202. 836 1202. 837 1202. 838 1202. 839 1202. 840 1202. 841 1202. 842 1202. 843 1202. 844 1202. 845 1202. 846 1202. 847 1202. 848 1202. 849 1202. 850 1202. 851 1202. 852 1202. 853 1202. 854 1202. 855 1202. 856 1202. 857 1202. 858 1202. 859 1202. 860 1202. 861 1202. 862 1202. 863 1202. 864 1202. 865 1202. 866 1202. 867 1202. 868 1202. 869 1202. 870 1202. 871 1202. 872 1202. 873 1202. 874 1202. 875 1202. 876 1202. 877 1202. 878 1202. 879 1202. 880 1202. 881 1202. 882 1202. 883 1202. 884 1202. 885 1202. 886 1202. 887 1202. 888 1202. 889 1202. 890 1202. 891 1202. 892 1202. 893 1202. 894 1202. 895 1202. 896 1202. 897 1202. 898 1202. 899 1202. 900 1202. 901 1202. 902 1202. 903 1202. 904 1202. 905 1202. 906 1202. 907 1202. 908 1202. 909 1202. 910 1202. 911 1202. 912 1202. 913 1202. 914 1202. 915 1202. 916 1202. 917 1202. 918 1202. 919 1202. 920 1202. 921 1202. 922 1202. 923 1202. 924 1202. 925 1202. 926 1202. 927 1202. 928 1202. 929 1202. 930 1202. 931 1202. 932 1202. 933 1202. 934 1202. 935 1202. 936 1202. 937 1202. 938 1202. 939 1202. 940 1202. 941 1202. 942 1202. 943 1202. 944 1202. 945 1202. 946 1202. 947 1202. 948 1202. 949 1202. 950 1202. 951 1202. 952 1202. 953 1202. 954 1202. 955 1202. 956 1202. 957 1202. 958 1202. 959 1202. 960 1202. 961 1202. 962 1202. 963 1202. 964 1202. 965 1202. 966 1202. 967 1202. 968 1202. 969 1202. 970 1202. 971 1202. 972 1202. 973 1202. 974 1202. 975 1202. 976 1202. 977 1202. 978 1202. 979 1202. 980 1202. 981 1202. 982 1202. 983 1202. 984 1202. 985 1202. 986 1202. 987 1202. 988 1202. 989 1202. 990 1202. 991 1202. 992 1202. 993 1202. 994 1202. 995 1202. 996 1202. 997 1202. 998 1202. 999 1202. 1000 1202. 1001 1202. 1002 1202. 1003 1202. 1004 1202. 1005 1202. 1006 1202. 1007 1202. 1008 1202. 1009 1202. 1010 1202. 1011 1202. 1012 1202. 1013 1202. 1014 1202. 1015 1202. 1016 1202. 1017 1202. 1018 1202. 1019 1202. 1020 1202. 1021 1202. 1022 1202. 1023 1202. 1024 1202. 1025 1202. 1026 1202. 1027 1202. 1028 1202. 1029 1202. 1030 1202. 1031 1202. 1032 1202. 1033 1202. 1034 1202. 1035 1202. 1036 1202. 1037 1202. 1038 1202. 1039 1202. 1040 1202. 1041 1202. 1042 1202. 1043 1202. 1044 1202. 1045 1202. 1046 1202. 1047 1202. 1048 1202. 1049 1202. 1050 1202. 1051 1202. 1052 1202. 1053 1202. 1054 1202. 1055 1202. 1056 1202. 1057 1202. 1058 1202. 1059 1202. 1060 1202. 1061 1202. 1062 1202. 1063 1202. 1064 1202. 1065 1202. 1066 1202. 1067 1202. 1068 1202. 1069 1202. 1070 1202. 1071 1202. 1072 1202. 1073 1202. 1074 1202. 1075 1202. 1076 1202. 1077 1202. 1078 1202. 1079 1202. 1080 1202. 1081 1202. 1082 1202. 1083 1202. 1084 1202. 1085 1202. 1086 1202. 1087 1202. 1088 1202. 1089 1202. 1090 1202. 1091 1202. 1092 1202. 1093 1202. 1094 1202. 1095 1202. 1096 1202. 1097 1202. 1098 1202. 1099 1202. 1100 1202. 1101 1202. 1102 1202. 1103 12

Kathavate's introduction

him in valour and risked his life in battles most freely. One night *Lavanaśprasāda* saw a strange dream in which he saw that the guardian deity of the kingdom of *Pāṭana* came and threw a garland around his neck. The king immediately sent for his son and his religious preceptor the poet and asked the latter what the dream meant. He explained to him that it was an offer made to him by providence of the sovereignty of Gujarat and that he should immediately set about to establish his sovereignty over the country, which was at that time divided by powerful men among themselves. As a preliminary step to this the king proposed to appoint some able minister to govern the country he had conquered. No sooner did this idea suggest itself to the king than he thought of the two able brothers *Vasupāla* and *Tejapāla*. They were sent for immediately and when they came he explained to them how he wanted to re-establish the decaying power of *Pāṭana*. He extolled their honesty and their abilities and told them that a conqueror could never get peace of mind unless there be at the helm of administration really able and trustworthy men. He congratulated himself on having found two such able ministers and them to take up the responsible duties. *Vasupāla* then humbly expressed his joy at having been so fortunate as to be held in such high estimation by the king. He ventured however to state that hard times had come when bad counsellors led proud kings by dangerous ways till both came to grief. Further he stated that if the king would promise to be just and to control his passions and not to lend his ear to the insinuations of wicked persons if he would promise to rescue the kingdom from the oppression of the wicked then he would cheerfully obey his command. If he had other views in his mind the proud minister said he would bid him farewell. The king heard these words of the celebrated statesman and put into his hands the minister's seal¹. The minister having taken charge of his duties went to *Śāmbhāṣīrīha* modern *Ahambayal* pronounced by Europeans as *Cambay*. He redressed many of the wrongs committed by previous governors. During his administration low people gave up earning money by base means the wicked turned pale the righteous prospered. All honestly carried on their businesses in security. He put an end to piracy and stopped by constructing platforms the promiscuous mingling² of all castes in shops where whey of curds was sold. He was liberal in his gifts. Even those who had been long dead came under his obligation because he repaired the public works left behind by them. He planted groves of trees sunk wells and made public parks dug tanks built a city and erected innumerable other works of public utility. He made no difference of caste or creed but treated all subjects equally. While peace was thus reigning all over the kingdom *Singhava* the king of the *Dekkan* having heard of the prosperity of Gujarat ordered his army to make a depredatory excursion into the province. The whole of the population was seized by consternation. The king's army though small was strong and the father and the son *Lavanaśprasāda* and *Isradhanala* dauntlessly went forth and met the enemy when he had advanced as far as *Bīragukatchha* (*Bharucha* or *Broach*). While these two warriors were thus engaged four kings from Marwar seized the opportunity and advanced against them. Indeed the conduct of the father and

the son was critical with a powerful invader in the front, and a combination of four hostile kings in the rear, any other prince would have lost courage. To add to the embarrassment of his position, the kings of *Godraha* and *Lāta* allied themselves with the Marwad kings and seceded from the camp, and left these two to themselves. But *Viradhavala* and *Lavanaprasāda* were equal to the occasion. They pursued with great vigour, at first, the army of the *Yadus*, but, when harassed in the rear by the combined kings, they turned their forces against them. The southern army was so completely broken that it had not the courage to make any diversion again on the rear. While the king was thus engaged in a destructive war, *Sanhha*, the son of *Sindhurāja*, sent an emissary to the minister, *Vasiupāla*. He extolled the bravery of *Sanhha* as shown in his contest with *Yadavas* though unfortunately *Sanhha* was taken prisoner in the contest. Further, he stated that the town of *Stambhapura* was, by right of descent, his, as his ancestors had formerly held it. He also held out to him the hope of being made a governor of the town if he surrendered it to *Sanhha*, and he ended by threatening him with an instant expedition. Though *Vasiupāla*'s feelings of hope, fear and justice were thus appealed to, he remained firm. He refused to surrender the town, and pleaded his king's right of conquest against the hereditary title of *Sanhha*, and distinctly told him that he was quite ready to take the field if *Sanhha* should have the audacity to declare war.

This defiance of *Vasiupāla* swelled the tide of *Sanhha*'s anger, and he at once advanced to the side of a tank called *Vaikhupa* (*Vaḍhuvo*). The minister defended with great bravery the town which he occupied. After some time the minister attacked the position of *Sanhha*, though his army was numerous. When the battle commenced, *Bhuvanapāla* of the *Gula* family, on the side of the minister, assailed *Sanhha*, who was also called *Saṅgrāmasimha*, but was himself attacked by *Sāmanāta*, an ally of *Sanhha*. The two fought desperately, *Bhuvanapāla* slew *Sāmanāta*, and proceeded against *Sanhha*. *Sanhha* cut off his head in a single fight. This sharpened the edge of the minister's anger. The fight now became general, and several warriors were killed on each side. At last *Sanhha*, finding the minister invulnerable, withdrew his shattered forces, and retired from the field. The minister led back his successful army, receiving congratulation of his subjects on the way. *Lavanaprasāda* too, with his valiant son, returned to his capital, having repelled the southern invader on one side, and the combined forces of neighbouring princes on the other.

In honour of this victory the citizens held a great festival to witness which and to make his obeisance to the goddess called *Ekallatīnī*, whose shrine was outside the town, the minister passed the principal street in the town. The minister worshipped the goddess according to the proper ceremonies, and prayed to the goddess that she might always bless by her presence his own heart and his king's arm.

The poet now proceeds to describe the sufferings and pleasures of the hot season, and the way in which the minister passed it—a noticeable fact, in which connexion is that a great part of the minister's leisure was spent in the company of literary men, among whom probably the author held a prominent position. His gifts to these men are described as having been princely, and more than an adequate return for the pleasure which the men afforded to him. The poet next proceeds to describe the evening and moonlight. He employs the most fanciful

conceits in describing the pleasures of the citizens. Wine seems to have played a prominent part in helping the cause of Love. Giving for some time considerable freedom to his amorous muse, the poet winds up his account of revelry by a grand conceit describing the approach of dawn. As if to atone for the revelry of the previous canto, and by way of preparing the reader for his hero's pilgrimages, the poet introduces in the eighth canto a series of moral reflexions, which are very neatly and elegantly expressed. The canto concludes with a beautiful description of the beauties of autumn. The ninth and last canto is devoted to the description of the minister's visits to the holy shrines held in reference by *Srīśaṅkas*. One must keep before his mind's eye through how many different principalities of contending princes pilgrims had to pass, and how provinces were infested with marauding tribes, in order to be able to realize the importance which the poet attaches to the minister's having taken out with him a numerous band of fellow-pilgrims. In one of the *Prabandhas* the minister's retinue is described to have consisted of 4,500 carts, 700 palanquins, 700 carriages, 1,800 camels, 2,800 *Srīkarana*,¹ (1) 12,100 *Śīdāmbaras*, 1,100 *Digambaras*, 450 Jain singers, 3,500 bards. The author seems to have taken up for description, only two or three holy places visited by the minister. After mentioning generally that he made rich gifts to all shrines that he came across in his way, and made repairs and additions to temples, wells &c., where they were necessary, the poet proceeds to mention that he visited the shrine on the mountain of *Satrunjaya*. He commemorated his visit to the holy mountain by building two temples—one for *Neminātha*, and another for *Pārśvanātha*. In the hall of this temple were placed the images of his ancestors and friends, and equestrian statues of himself and his brothers. From *Satrunjaya* the minister proceeded to the mountain *Rairatalaka*, where he offered the best incenses to the shrine of *Neminātha*, and having lived here for many days, he went to *Prabhāsa Pattana*, and then worshipped *Siva*, known by the name of *Somanātha*. He took leave of the shrine of the great *Jina* at this place, and returned to his own city (*Pañjara*). When he arrived there, he first paid his respects to his king, and then went to his own house. Having thus completed his pilgrimage, he duly honoured the men who had accompanied him on his pilgrimage and sent them to their own places.

Here the poet's narration ends. It seems strange that the poet should have omitted to mention the famous temples on mount Abu. It cannot be said that the Abu temples were built later, that is, after the date of the poem; for the inscriptions in the temples on *Satrunjaya* bear the date 1288, *Samvat*, while those in the Abu temples are dated 1287 of the same era. The *Prasasti* on these temples is composed by the author of this poem, and therefore the omission of the mention of the famous work from this panegyric seems the more strange. The only explanation that suggests itself to me is that the poet could make room for the description of one temple only, and he chose the *Satrunjaya* temple, because the one on Mount Abu was built in the name of the wife and son of *Tejapāla*, and may, in one sense, be regarded as a special work of *Tejapāla*. It appears that *Someśvara*, though a friend of both the brothers, was a special favourite of *Vastupāla*. That is the only reason I can assign for no mention of the Abu temple being made in this poem.

¹ May it mean a clerk?

how the minister could do such a thing *Someśvara* offered to go and speak to *Vastupāla*. The king consented. *Someśvara* called upon *Vastupāla*, and explained to him how his rash act had roused all the *Jethurās*. *Vastupāla* said he was prepared for the worst, and did not care for his life. *Someśvara* returned to the palace, and told *Viśala* that *Vastupāla* was prepared to die in defending himself. He represented to the king how it would be noble to overlook one fault of a man who had rendered such signal services to the state. He said that the minister's life was very valuable, and might be spared for some critical occasion. The king relented. He asked *Someśvara* to bring *Vastupāla* to the court. He came, but fully armed for fight. At his sight, the memory of all his obligations came to *Viśala's* mind, and he humbly pacified his anger, behaving towards him with all the respect one would pay to his father. He strongly censured *Simha* for having struck a servant of the *Śrāvaka* temple, and threatened to punish him severely. Soon after this, the minister had an attack of fever. In 1287 *Samvat*, when *Narachandrasārī* died, he had predicted that 1298 *Samvat* would be the minister's last year. The year had come. The minister made up his mind to go to *Saṭrunjaya*. Before setting out on his last journey, he called the minister *Nagada*, and recommended the followers of the *Jaina* religion to his care. The *Brahmana* minister promised to pay all respect to *Śeṭṭhībaras*, and told the minister not to be anxious on that account. *Vastupāla* started to go to *Saṭrunjaya*, but became worse on the way, and died at the village of *Ankeśala*. *Tejapāla* and *Jayanisimha* the son of *Vastupāla*, performed the obsequies on the *Saṭrunjaya* hill, and built a temple on the spot called *Śvargurehanaprusada*.

V

The *Jaina* accounts of these ministers are naturally more detailed and faithful. There are some facts given therein to which a *Brahmana* admirer has naturally not given prominence. It is stated in those accounts that *Vastupāla* and his brothers were the fruit of the second marriage of their mother. The statement runs as follows - In the city of *Patana* *Haribhadrasārī* a *Jaina* priest, while preaching once, constantly looked at a young widow who was exceedingly beautiful, and whose name was *Kumardeti*. One *Aśtaraja* remarked this, and, after the *Pūrṇa* was over asked him the reason. He replied that the widow was destined to be the mother of sons who would be like the sun and the moon of the *Jaina* religion, *Aśtaraja* on hearing this, went to the father of the widow and entered his service. In time he succeeded in ingratiating himself in the favour of the widow and her father, and married her. The prophecy was fulfilled, and he became the father of *Vastupāla* and *Tejapāla* and several other children. According to these accounts, when *Vastupāla* and *Tejapāla* took up the ministerial duties, they made a condition that, at the termination of their office they should be allowed to retire with all the property they possessed at the time when they entered upon their office. The impulse which led to the building of these temples is said to have been given by *Anupama*, the wife of *Tejapāla*. When the ministers found they had amassed a good deal of wealth, they began to think how they could keep it secure. Once while engaged in this deliberation they did not notice that it was growing late, and that the time of the evening meal had nearly gone. *Anupamā*, after sending servants to remind them several times, came to them, and making them

leave their deliberation, asked them what they were thinking about. When they explained their difficulty to her, she told them that the best way to dispose of their wealth was to keep it on the top of mountains in such a way that every body could see it, but none could misappropriate it. She explained her meaning by stating that it should be devoted to the building of temples on mount *Abu*, *Satruñjaya* and *Girinār*. The ministers listened to her advice, and proceeded to execute the plan. The *Prabandhas* say that the work on mount *Abu* was progressing very slowly, and the ministers being-dissatisfied with the men in charge, went to see the state of things for themselves. When they found it was too cold for the workmen to go and work, at the recommendation of *Anupama*, they ordered that each workman should have provided for him a fire to warm himself with while he working, and that ready dinner should be provided for all the operatives in the evening.

The way in which *Vastupāla* and *Tefahpāla* became possessed of funds where with to raise these superstructures is, by the *Jaina* chroniclers, described as follows. - When *Vastupāla* was appointed governor of *Starubhatirika*, he found that a *Mohamedan* merchant, whose name was *Syed*, did not submit to his authority. He refused to see him and pay him homage, whereupon *Vastupāla* declared hostilities with him. *Syed* called *Sanhka* to his aid, *Vastupāla* defeated him in a battle, though his army was more numerous. *Syed* was apprehended all his property was confiscated. When the victory and confiscation were reported to *Lavanaprasāda*, he ordered that all valuables should be credited to the account of the state. *Vastupāla* had reported that the merchant was so rich that even the dust in his house-गृहेण (which probably meant trifling things) was of great worth. The prince assigned the 'dust' to *Vastupāla*. Shortly after this, some of the ships of *Syed* took fire, and, it is said, a large quantity of valuable metals was reduced to रेणु dust, which, by the king's order, became the property of *Vastupāla*.

In *Vastupāla* *charita* of *Harshagana*, it is mentioned that when they went to a place, in *Kathiarwad*, called *Harālaka* to bury under-ground the wealth they had obtained, they found, when they dug into the earth, an immense treasure. Some say they applied this to the building of temples and other public works by the advice of their mother. Others say that while the brothers were once consulting as to what they should do with their money, they heard a *Jaina* ascetic recite the following verse:-

क्षेत्रे विद्याय पुद्गेय संधिली, प्रीतिं कुरुष्व बद्ध दिग्दलसाले ।
क्षेपेदेवे-निविशतारवराण्ये, चामोदेवे ता सन्ध्यानि कः संधियम् ॥

1. The meaning of the verse is not very clear I understand it as follows—Oh lotus, since it is the daytime, favourable to you, open your bed and show love towards the bee that seeks your sweets, at night who will come near you when it will be dark, or when the rays of the moon will infect upon you severe pain.

Several words in this verse have a double meaning. In allusion to the meaning assigned to the foregoing translation, क्षेत्र means a treasure. संधिली means on the class of protectors क्षेपेदेवे, when an occasion is brought, निविशतारवराण्ये may mean when the opportunity caused by the existence of the king is great. Consequently, the verse suggests the idea that a man should open his treasure and be kind to the poor about him while his prosperity lasts. No one will come near him when he is in difficulty and harassed by the necessities and demands made by the king.

When they heard this verse, and revolved in their mind the double meaning it conveyed, they thought it was a providential warning expressly given to them and foreseeing the loss of royal favour, devoted their money to charitable purposes. It appears from the Prabandhas that *Vasupala* associated very much with *Brāhmaṇa* Panditas. This brought on him the remonstrances of *Iṣṭyāsenasārī*, their father's priest, which, being strongly supported by their mother, made them turn the current of their charity more towards the *Jaina* religion.

The society of learned Hindoo Panditas is described as having affected *Vasupala*'s religious opinions to a very great extent. One of his *Jaina* biographers states that he had even put on the *Ananīadoraka*¹ *Iṣṭyāsenasārī*, who always used to complain of *Vasupala*'s Hindoo tendencies to his mother pointed this out as a proof of his assertion. This brought matters to a crisis. At the bidding of his mother *Vasupala* cut off the *Ananīadoraka* and began to abide strictly according to the advice of his hereditary religious teachers.

I shall briefly state here some of the important facts detailed in the *Chaturvīṅśatprabandha* with regard to *Vasupala* and *Tejapala* and their chiefs.

Soon after *Viradhavala* and his minister *Tejapala* had commenced their victorious career they went to *Īmanasīthali* to conquer the ruler of the place. The two young Rajputs, named *Sungana* and *Chamunda* the brothers of *Jayatalde*, the wife of *Viradhavala* refused to submit *Jayatalde*, who knew the power of her husband, advised them to avert hostilities by making homage and rich presents to *Viradhavala* but the proud brothers would not listen. In the desperate fight which ensued *Viradhavala*'s life was in imminent and both armies raised the cry of his being killed but all of a sudden *Viradhavala* appeared mounted on his famous horse *Upasānata* and accompanied by the follower of his army, proceeded personally against *Sungana* and *Chamunda*. The two brothers manfully met him and both were slain. The wealth for which *Īmanasīthali* was celebrated the hoarded treasures of generations fell into the hands of the king.

Once three Rajaputs *Samantapala*, *Anangapala* and *Trilokasīnha* *Bhayats* of the king of *Jabalpur* came and offered their services to *Viradhavala*. *Viradhavala* was pleased with their address and bravery, but on being told that their terms were a lack of coins (*Draṃma*) of *Lānasapur* told them that a thousand warriors could be maintained by that sum and that he had no need for their services. *Vasupala* and *Tejapala* requested the king to secure their services stating as their reason that men were more valuable than money but the king paid no attention to the advice and dismissed them. The offended Rajaputs went to *Bhīmasīnha* the king of the sea coast town of *Bhadreśvara* with whom *Viradhavala* had already declared war on his having refused to render submission. *Bhīmasīnha* at once accepted their terms and entertained their services. At their instigation he sent a fresh defiance to *Viradhavala* and appointed *Panchagrama* as the place of the combat. The two ministers told the king that his enemy *Bhīmasīnha* had strengthened his hands by securing the services of the three Rajaputs but assured

1 *Ananīadoraka* is a silk cord knotted in a prescribed way with certain spells pronounced over it. It is supposed to represent god *Viṣṇu*. The day fixed for its worship is the fourteenth of *Bhadrapada*. The cord is kept on the arm by some during the whole year.

him, at the same-time, that they were still more than a match for *Bhīmasinha's* army, and that they should set out at once for the place appointed for the battle. On the night before the battle the three Rajaputs sent a word to *Viradhatala* that he should keep in readiness for his protection the numerous soldiers he had kept by the three lacks of cows which he had refused them. The king politely replied that the next day's fighting would decide the question. In the battle which ensued the three Rajaputs broke through all those that defended *Viradhatala*, and pointed their spears at his forehead, but spared his life in consideration of the *Vidā* they had eaten at his court. However, *Viradhatala* was thrown from his horse *Uparatala*, who was seized by the three Rajaputs. The fighting for the day ceased, but *Viradhatala* was none the worse for the casualties of the day. The ministers of *Bhīmasinha* advised him to make peace. *Bhīmasinha* sent back *Uparatala* to *Viradhatala*. Peace was made. By and by *Viradhatala* became more powerful, and having conquered *Bhīmasinha* destroyed his power.

There was a king named *Ghughula*, who reigned at *Godraha* in the district of *Makhtāsa*. He seized the goods of the merchants who came to trade with Gujarat. *Vastupala* and *Tejāhpala* sent messengers to remonstrate with him, and advised him to abide by the commands of *Viradhatala*. *Ghughula* in return sent a box of eyewash and a pair of women's clothes to him, to show that he regarded him, along with other kings, as no better than his mistresses. *Viradhatala* called together his chiefs, and asked if any one would offer to undertake an expedition against *Ghughula*. *Tejāhpala* alone offered to go. He went and stationed his army at a distance from *Godraha*. He detached a small number of soldiers to go into the proximity of the town and seize the cows of the cowherds. When the cowherds came to the town to complain of it, *Ghughula* went at the head of a small force to punish the offenders. The minister's soldiers feigning a flight, drew *Ghughula* towards the minister's army. *Ghughula* did not perceive the manoeuvre until he came face to face with the minister's army. Without losing courage, he sent a word to his chiefs to come to his succour, and commenced fighting at once. He succeeded in dispersing the minister's army, but *Tejāhpala* with seven Rajaputs determined to conquer or to die, and held fast. The example encouraged the worsted soldiers to return to the fight. *Tejāhpala* forced his way up to *Ghughula* and challenged him to a duel. The challenge was accepted. The minister threw *Ghughula* from his horse, and took him alive. He was confined in a wooden cage and sent to the king. All his wealth was seized. *Viradhatala* caused the box of eyewash, which *Ghughula* had sent to be tied around his neck with a string, and he was made to wear the pair of clothes he had sent. Unable to bear this disgrace *Ghughula* killed himself by biting off his tongue.

Chaturvintatisaṁśodha says that the victory over *Ghughula* enabled *Vastupala* to extend the sway of *Viradhatala* to the borders of *Mahārāṣṭra*.

The same *Prabandha* also mentions that *Vastupala* was directed to proceed against Sultan¹ *Moujadin*². Being forewarned that the army of the Sultan was going to enter by side of the *Ahu*³ mountain, he directed *Dhārdevaśha*, the king of

1 This word is Sanskrit word and written as Moujadin.

2 *Moujadin* is *Fakhrudaula*.

3 The warning is said to be given by *Mahapadma*.

who owed allegiance to *Viradhavala*, to keep himself in a state of readiness. He advised him to let the Mahomedans pass southwards, and then close the mountain passes against their return. The plan succeeded. The Mahomedans being attacked by *Vastupāla* in the front, and pressed by *Dhārṣarsha* in the rear, became panic-stricken. The slaughter which ensued was great. Cart-loads of their heads were sent to *Viradhavala* at *Dholka*.

Some years after this the mother of *Moujadin* started on a pilgrimage to Mecca. Having heard this news from his messengers, he ordered his sailors to take possession of all her property and bring the same to him. This being done, the captain of the ships employed by *Moujadin*'s mother came and complained to *Vastupāla* that pirates had robbed the property of an old Mahomedan lady, their passenger. On their stating further that she was the mother of *Moujadin*, *Vastupāla* received her with the greatest respect, and feigning to have caught the pirates restored the property to her. He showed her every mark of respect, and provided most carefully for her comfort and safety. On her way back to *Delhi*, she insisted upon *Vastupāla*'s accompanying her. With the permission of *Viradhavala*, *Vastupāla* went to *Delhi*. He was received there with great honour. He obtained from the emperor a promise to keep friendship with *Viradhavala*, and, for himself, five large pieces of marble, of which he caused statues to be made to be placed in *Jaina* temples. On his return *Viradhavala* received him with great pomp and distinction. *Merutunga* in his *Prabandhachintamani* says it was not *Moujadin*'s mother, but his religious preceptor who led to the formation of friendship between him and *Viradhavala*. *Merutunga* further says that *Vastupāla* saved the emperor's preceptor from the violence of the father and the son, *Lalanaprasada* and *Viradhavala*, as a sheep from two foxes. Such are the principal facts which may be gathered from *Jain* compositions.

It seems clear from the account given in this book and several inscriptions of the time that *Lalanaprasada* and *Viradhavala* though they had cast *Bhīmaśāh* into shade had not yet formally assumed the title of the kings of *Pattana*.¹ As is often the case among the *Hindus*, those who actually attain high power by the strength of their arm rather take a pride in keeping formally their former status and rendering cheerfully, or even boastfully, submission to the hereditary monarch who has it no longer in his power to compel it by force. It may well be illustrated by the attitude of the First Maratha conquerors towards the Emperor of *Delhi* and that of the *Peishwas* towards the *Maharājās* of *Sattara*. The *Peishwa* held a grand *Durbar* at *Poona* for the assumption of the title which *Sindia* had obtained for him from the fallen emperor of *Delhi* and no *Peishwa* ever assumed authority without going through the form of obtaining the robes of state from *Sattara*. However, those who succeed these great men by right of birth have not got for their satisfaction the true glory of personal achievements, and they become impatient of the acknowledgment of fictitious subordination. By this time the old dynasty also has generally lost its hold on the affections of the people and a public assumption of sovereign power by the new line does not give much offence to any

1 One in the *Prabandhas* says that *Vastupāla* proposed to *Viradhavala* that he should assume the title of *Maharāja*, but *Viradhavala* did not approve of it. He said he was contented with his title of *Kapala*.

one Thus, it would appear that *Viśaladeva* put his foot on the step from which *Lavanaprasada* and *Viradhavala* kept themselves back half out of chivalry and half out of policy In the grant of *Viśaladeva* the title *Maharajadhiraja* is applied to him though up to his time the kings of the house of *Pattana* alone were considered as entitled to it The last mention I have found of the king of *Pattana* is in connection with *Lavanaprasada* s having asked for money in a friendly manner from *Bhūmadeva* There is no mention anywhere of any actual hostility between the house of *Dholka* and *Pattana* *Bhūmadeva*, though personally valiant, seems to have allowed himself quietly to be superseded by his ambitious kinsmen first in actual power and then in rank

VI

In concluding this introduction it remains for me to acknowledge that the publication of this book is entirely due to Doctor G Buhler He lent me two manuscripts one A, a copy of some old manuscript made for him, and another B, which he had borrowed from Mr Javerlal Umāśankara He also handed over to me a portion of the poem copied out by him for the press and obtained the permission of the Director of Public Instruction for the inclusion of this Publication in the Bombay Sanskrit Series Besides, I am indebted to him for pointing out most of the sources of information which I have embodied in these pages In fact but for him I should not have been able to do the little I have done For the third manuscript I got later on, I am indebted to Mr Vrajatal Shashtri of the Gujarat Vernacular Society All the three manuscripts seem to be copies of the same original manuscript the differences they show being generally due to the varying intelligence or rather ignorance of the copyists

Professor G. BÜHLER's critical study of THE SUKRITASAMKIRTANA OF ARISIMHA

*
(TRANSLATED FROM THE GERMAN OF THE LATE PROFESSOR G. BÜHLER, C.I.E., LL.D., VIENNA BY E. H. BURGESS, UNDER THE DIRECTION OF JAS. BURGESS, C.I.E., LL.D.)

Published in the INDIAN ANTYQUARY, Vol. XXXI (1902) (Pp. 477-495)

[The paper, of which the following is a translation, appeared in the *Sitzungsberichte* of the Imperial Academy of Sciences of Vienna (Vol. CXIX., 1888), and some copies of it were struck off in a separate form, chiefly for distribution to friends. There are many scholars, both in Europe and India, who are interested in the subject of the paper but are not familiar with the German language, to them the following translation is offered in order to make its contents accessible.—J.B.]

In my *Report on the Search for Sanskrit MSS.*, 1879-80, p. 5, I announced the discovery of a *historical poem* which bears the title *Sukṛitasamkīrtana*, and was composed by *Arisimha* in honour of his patron, the Jaina *Vastupāla*, who served the *Vāghelā* prince *Rāmaka-Vīradhava* of *Dholkā* and his son *Vīśaladeva* a minister from *Vikrama-Samvat* 1276 to 1296 or 1297. Although since then, by the publication of *Someśvara's Kīrtikaumudī*, the most important source concerning the origin of the power of the *Vāghelā* dynasty of *Gujarāt*, has become generally accessible, yet a discussion of the contents of *Arisimha's* poem will not be superfluous. For this touches on several details about which *Someśvara* is silent, and gives new and in part valuable accounts of other incidents. The manuscript which I have used for the following examination is No. 302 of my collection in the library of the India Office. This was copied in August 1880 from the same original in *Ahmadābād* from which No. 415 of the *Dekhan College Collection* of 1879-80 was taken; and it was then carefully collated with No. 411 of the *Dekhan College Collection* of 1880-81. It is therefore, — with the exception of the confusion between the sibilants, between *a* and *i*, *ra* and *ri*, as well as *ka* and *pha*, — pretty free from errors, and text is almost throughout easily intelligible.

THE CHARACTER AND ARRANGEMENT OF THE WORK

The *Sukṛitasamkīrtana* is, as the inscription of each canto intimates, a *Mahā-kāvya* or artistic poem, composed according to the rules of prosody, and it contains 11 *Sargas* with 553 verses. Five verses at the end of each *Sarga* are due not to *Arisimha* but to *Amarapandita*. It says, I. 46-— "In this work which *Arisimha* composed, *Amarapandita* wrote these four last verses canto by canto."† The number

† The German original is accompanied by the Sanskrit text of the passages that are translated in this paper.

refers to the preceding four verses 42-45 and the fifth which is repeated at the end of each *Sarga* is not reckoned. These verses have no close connection with the contents of the preceding parts. The first three either contain general praises and blessings upon Vastupala or mention incidents not described by Arisimha. The fourth always names Arisimha as the author of the work and praises his poetic skill.

The titles of the separate *cantos* are as follows

I — *Chapotkalamyavarana* Description of the Chapotkala dynasty (of Gujarat), 46 verses principal metre Vasantatilaka

II — *Chaulukyanvayavarana* Description of the Chaulukya dynasty (of Gujarat) 56 verses principal metre Upajati

III — *Mantri-prakāśa* Appearance of the ministers, 67 verses principal metre Anushṭubh

IV — *Dharmopadeśana* Instruction in the holy law, 49 verses principal metre Rathoddhata

V — *Saṃgha-prasthāna* Departure of the (Jaina) congregation 55 verses principal metre Vamśastha

VI — *Suryodayavarana* Description of the sunrise 40 verses principal metre Malini

VII — *Satrumujayadarśana* Visit to Śatrumujaya 48 verses principal metre Svagata

VIII — *Śrī Neminādarśana* Visit to (the shrine of) the divine Neminatha 28 verses principal metre Pramitākshara

IX — *Shadṣṭhi-varana* Description of the six seasons of the year 56 verses principal metre Dṛṣṭiavalambita

X — *Purāṇa-praveśa* Entrance into the town (Dholka) 47 verses the metres vary every two verses or still more frequently

XI — Enumeration of Vastupala's buildings 41 verses principal metre Vasantatilaka

Besides the metres already mentioned the following also occur in single verses: *Ārya*, *Indravajra*, *Upendravajra*, *Pushpatagra*, *Manjubhashini*, *Mandakranta*, *Śardula*, *vikṛidita*, *Śikhariṇi* and *Sragdhara*. *Amarapandita* usually begins his first verse in the metre with which Arisimha ceases. In spite of the pains both poets have taken with the versification it often happens that the first and third foot of a verse stop in the middle of a simple word. And although the really distinguished poets often use the weak caesura by ending the first *paśas* of a half verse with one part of a compound yet they avoid dividing simple words. This abuse first occurs in later poetasters. The more difficult feats of art like *Pratimānūloma*, *Gomutrika* etc. neither Arisimha nor *Amarapandita* has tried. On the other hand there are numerous *anuprasas* or alliterations and — although more seldom — even *yamakas* or rhymes. As for the diction one easily perceives the zealous striving to vary the turnings of the classical models and to find new expressions or figures. The result is not a brilliant one however and the *Sukritasamkīrtana* nowhere rises above the level of the mediocre. At some points one may doubt whether the

He answered 'Om'. Then the king said 'Recite something suitable to the occasion'. Thereupon Arisimha recited four verses in which he praised Visaladeva's sword. The prince was so charmed that he bestowed a permanent appointment and a high salary upon the poet. Soon afterwards the salary was doubled because he sang in a masterly manner of a blade of grass which the king held in his hand.

Like the records of most of the *Prabandhas*, this one also contains, besides what is undoubtedly correct, much that is not so. In the first place it is true that Amarachandria wrote a work called *Padmānanda*. Peterson found it and bought it for the Bombay Government (see *First Report*, p. 126, No. 205). From the extracts given there from the Cambay Library MS., it appears that it bears also the title *Jinendracharita* and is a *Mahakavya* containing 12 Sargas (cf. also Peterson, *loc. cit.* p. 58).

The statement, then, that Arisimha was the teacher of Amarachandra in the fine arts agrees with the contents of the above second verse of the *Kavyakāpalata*. The reverential way in which Amarachandra expresses himself in his verses about Arisimha speaks for the same thing.

I 45 — "Arisimha, a lion for his elephant-like opponents composed this work, which like the glances of the ever-gracious Vastupala, dispenses rivers of nectar."

VIII 48 — "This work, a flood of beams from the moon of the face of Lavanyasimha's son, which draws off the swarms of bees from these waterlilies, the faces of the unworthy, produces, mighty waves in the milk-ocean of fame of the excellent minister and prince Vastupala."

Only a pupil speaking of his teacher, or a client of his patron, would express himself thus.

On the other hand, the *Prabandha* is incorrect in stating that Amarapandita and, through him, Arisimha came to the court of Dhnikā only during the reign of Visaladeva, circa Vikrama-Samvat 1296 to 1318. For soon after Visaladeva's accession Vastupala lost his high position and died as Narachandra had prophesied, in the Vikrama year 1293. From the *Sukritasamkirtana* it is apparent, however, that it was written when the minister was in the zenith of his power. This is proved, for instance, by two verses at the end of the first and second cantos —

I 42 — "Dearly, illustrious prince of the council Vastupala the Brahmanas cry blessings on you. "Long may you live!" — the bard princes "May you attain the age of Brahma!" — and noble women "May you never grow old and be immortal!" But I will also say something "May you rejoice in your life as long as your far-reaching fame dances in the sky."

II 52 — "Heavenly (wishing) cow, (paradise) trees, (wish-fulfilling) precious stones! Why hide ye yourselves in the tottering rocks of the divine mountain

1 The swarms of bees are the admirers who formerly hung upon the lips of the bad poets but now turn to Arisimha.

2 *Kiritaśmudh* pp. xviii-ix *prabandhaśekhā* p. 288 — Śrī Vastupalaḥ jayavarṇitena poṭh-latejaḥpālam spuraṇḍarāṇaṁ saṁpūtrām cha jayam tasmābhāṣakāḥ

Valśah Śrī Narachandrasūtrabhīmaladhārībhāṣ 1987 varśah Bhādrapada Bauḥ 10 aṁśe diva gamakṣamayaḥ 10 amuktāḥ

Manirū 1268 saṁgrāhaṇam bhavatyachā 1

(Meru)? Adorn the earth, nobody demands you! May the illustrious minister Vastupāla alone live for ever!"

It is hence certain that both poets stood in close relation to the minister who served Visaladeva's father, and their connection with him, according to the last verse, is scarcely doubtful. For when an Indian poet praises the generosity of his hero in the above manner, it is a certain sign that he has either experienced the same or hopes to do so. There are, however, a number of other passages which make it still clearer that Amarachandra and probably also Arisimha belonged to Vastupāla's suite of poets which the *Prabandhas* often mention. The next verse, II 54, ought to suffice to convince the most incredulous. It says—"Poverty has resignedly deserted so completely those men who continually rejoice in praising Vastupāla that she, indolent in spite of the command of the gods, does not even cross the threshold of their neighbours' houses." That is to say, in simple prose, that the singer and other poets were well paid by Vastupāla. If one must accept from this that Rājasekhara places the prime of Amarachandra and Arisimha too late,¹ it need not therefore be concluded that they had no connection with Visaladeva. It is very possible that they kept themselves in favour at the Court of Dhulka after Viradhavala's death and the fall of Vastupāla.

As the exact date of composition of the poems we need not be content to ascribe it merely in general to the period of Vikrama-Samvat 1276-1299 or 1297, during which Vastupāla occupied his high position. It will be seen later, from the comparison of his statements concerning Vastupāla's buildings with the inscriptions, that it was probably written about the Vikrama year 1285. It is probably some years younger than the *Kirtikāumudī*. The *Sukritasamkīrtana* seems never to have found much esteem even with the Jamas. Neither Rājasekhara in the *Prabandhakosha*, nor Jinaharsha in the *Vastupalacharita*, quotes it, although the latter gives long extracts from older sources. Both follow Someśvara's *Kirtikāumudī*, the greater fame of which put the poem of the less distinguished Arisimha in the shade. Its author Arisimha is perhaps mentioned in Śārngadhara's *Paddhati*, where a verse of a certain *Arasi-Thakkura* No. 76 (Peterson's edition), is mentioned. *Arasi* stands for Arisi, and is a quite correct Prakrit form of Arisimha (see *Ueber das Nāṭyaśāstrasāhityacharita* p. 39), which is still frequently used in Gujarāt. The identity of the two persons is, of course, by no means proved by the similarity of their names but is only a possibility.

NOTES ON THE HISTORY OF THE CHAUDAS AND CHAULUKYAS

The first Sarga, which contains the genealogy of the Chāpōṭakata or Chaudā kings, gives the following names -

	Verses	
I — Vamarāja		1-26
II — Yogarāja	—	27-28
III — Ratnāditya	—	29-30
IV — Vasuśimha	—	31-32
V — Ashemarāja	—	33-34
VI — Chāmunda	—	35-36

1 As a further proof of this it may be mentioned that the Cambay MS. of the *Samantasamudaya* was written in the Vikrama year 1297.

son and of the Chaulukya prince Rāṣṭra is unhesitatingly accepted though it contains the absurdity of Rāṣṭra's marriage having taken place and his son having grown up within these seven years.¹ It is plain from Arisṃha's statements that the *Tileraṭa* does not stand alone in its representations but rests upon older traditions. Since Kṛṣṇaṇḍi's *Ratnamālā* is perhaps as old as the *Sakyaśaṃkīrtana* the two contradictory accounts of the Chāṣṭṭi kings existed at least in the thirteenth century and probably earlier still. It must be left to the future to establish their real history when authentic documents are found. For the present we must be content with the conclusion that the version current in India through Forbes's *Rās Malā* has no particular claim to be received and was not uncontested in the tradition.

The notes about the Chaulukya kings in Sarga II are considerably fuller. Of the first king Mālārāja it is related that he particularly venerated Somanatha and it is said verse 3. Which hero (Mālārāja) plainly proving his veneration prostrated himself every Monday before Somanatha and obtained great splendour and fame from the hot flames out of the eye on the forehead of that god.

Possibly Arisṃha knew the absurd legend of the *Prabandhachintāmani* p. 43 according to which Mālārāja made a pilgrimage every Monday to Somanathapattana near Veraval until the god to please the king settled first nearer Anhilvad in Mandali or Mandol and at last came even into the capital. Mālārāja's worship of Śiva is proved besides by his presentation of land. The following verse 4 seems to refer to the erection of the Tripurushaprasada in Anhilvad. From among the military undertakings of Mālārāja the victories over Barapa and Lakṣa, king of Kachh, are mentioned. The former is made a general of the king of Kanyakubja. Of the next king Chaminda vi. 8-9 Arisṃha has nothing positive to say. On the other hand a victory of Vallabharāja over the king of Malva is celebrated in verse 13 and in verse 14 the remark is made that Vallabha had the *śrūṭa* of Jagajjhampana which does not occur elsewhere. The *Kṛtishāmundi* which also mentions the probably apocryphal victory II. 11 gives him the *śrūṭa* of Jagajjhampana. It says of Durlabharāja vv. 15-16 that he was very modest and was ashamed when his court poets compared him to Kṛṣṇa. In the *Kṛtishāmundi* also Durlabha is praised for this virtue. Of his successor Bhīma I we are told only that he conquered the celebrated king Bhoja of Dillā. This statement agrees again with that of the *Kṛtishāmundi* II. 11-12 and also with those of the later *Prabandhas* whilst it does not occur in Hemachandra's *Dnyasūrya*. Bhīma's son Karna vi. 20-23 is praised for his beauty mentioned also by Hemachandra in the *Prasasti* to his Grammar verse 17 in the *Ratnamālā* and in the *Kṛtishāmundi* II. 21. Then Arisṃha states that Karna conquered the king of Malva and brought home from there a statue of Nīlakantha or Śiva. It says verse 23. Who (Karna) conquered the king of Malva with his army and truly brought with him Nīlakantha the fame of him for whom the number of paths through the river on the head of this god was multiplied he extended in the three worlds.

Most *Prabandhas* and even Hemachandra's *Dnyasūrya* mention no kings during Karna's reign. The latest discoveries however shew that this silence is by no means justified. Bhīma's drama *Karnasinduri* which was found by Parādit

¹ I first drew attention to this atrocious nonsense in the *Indo-Anquiry* Vol. VI pp. 181-182.

Durgaprasad and published in the Bombay *Aanyamala* speaks of a fortunate war with the Muhammadan princes of Sindh and Ghazani. Since Bilhana was in Anhilvad during Karna's reign, and probably made an unsuccessful attempt to become the court poet of that king, his statement deserves credit. Then Someśvara Arisimha's contemporary, narrates in the *Surathotsava*,¹ found by Dr Bhandarkar that his ancestor *Ama*, house-priest of King Karna, compelled an evil spirit (*kṛtiya*) raised by the house-priest of the king of Dhara to kill its originator. The reason why the Paramara prince's priest sought to destroy the Chaulukya ruler was that the latter had invaded the dominion of Malva. Someśvara then without hesitation confirms Arisimha's assertion and we may accept it as a fact that the feud between Malva and Gujarat did not rest during Karna's reign.

Of *Jayasimha*'s deeds it is related vv 23-33 that his cavalry bathed their horses in the Ganges (v 32), that the 'air walker' *Barabaraka* earned him about in the atmosphere (v 33) that he took prisoner *Yasovarman*, king of Dhara (v 34) that he had the tank called *Siddhasaras* dug (v 35) and a high pillar of victory (*Aristsumbha*) built (v 37). All these points are sufficiently known. It is only of interest that *Barabaraka* has here, as also in most of the other *Prabandhas*, become a purely mythical being. Verse 36 speaks of *Jayasimha*'s worship of his mother, and alludes indeed to the narrative (*Prabandhachintamani*, p 133) according to which the king at the request of Mayanalladevi remitted a tax imposed on pilgrims going to Somanathapattana by the officials at *Banuloḍa*.

Verses 39-43 referring to *Kumarapala* first praise the favouring of the Jaina religion by this king who abolished the confiscation of the goods of tradesmen dying without male heirs and caused *Viharas* to be built in every city.² Then his victories over the *Jangaleśa* i.e. *Arnoraja* of *Sakambhari* or *Sambhar* and over the *Kaunkana* emperor i.e. the Kadamba king *Malikarjuna* who ruled over the *Konkan* (*Kirtikāumud* II 47-48) are celebrated. With respect to the latter, Arisimha gives a note which contradicts Someśvara's reports but shows on the other hand that the representation of the later *Prabandhachintamani* is correct. It says verse 43: 'What is wonderful in this strong one's (*Kumarapala*'s) conquering even the *Jangala* princes seeing the ruler of the marshland the *Kaunkana* emperor, was defeated by his very tradesman (*banij*)?'.

Someśvara in the *Kaumud* ascribes both victories to the king himself in the *Prāśasti* of *Tejapala*'s temple at Abu (vv 35-36) on the other hand the first is ascribed to the Paramara *Yatodhanva* and the second to his son *Dharavarsha*. Merutunga on the other hand records in the *Prabandhachintamani* p 201 ff. that the Śrīmali Vama Amrabbhata son of the counsellor Udayana³ advanced twice against the king of the *Konkan*. At first he suffered defeat but in the second campaign he is said to have slain *Malikarjuna*.

Kumarapala's successor is called in verse 44 *Ajayadeva* instead of *Ajayapala*. This form of the name is also found elsewhere (see *Ueber das Leben des J. M. Hemachandra* S 55 note 6). Like all *Prabandhas* the *Sukritasamkirtana* mentions

1 Report on the Search etc. 1883-84 p 20

2 See Böhrer *Ueber das Leben des J. M. Hemachandra* Sa 39-40

3 See *Ueber das Leben des J. M. Hemachandra* S 9 and note 28

with praise that the king sent him as a tribute from *Sapāḍalaksha* in Eastern Rājputana a golden *marīṭapika* i. e. a little ornament in the form of a *manīṭapa* or pillared hall. Not less known is the victory which (v. 46) Ajayadevas son *Mahārāja* II gained over the Turushkas i. e. over *Muhammad Shāh al-ʿAīdīn Ghori*. The Muhammadan authors (see Elliot History, Vol II p. 24) confirm this information which is found also in the *Prithī irājarīyā* (*Kashmir Report* pp. 62-63).

Much more important is that part of the work (Sarga II 48-57 Sarga III, 1-62) which follows next relating to *Bhimadeva II* representing his relation to *Laxanaprasada* and his son *Viradharata* the Rana of Dholka and stating how *Laxanaprasada* became minister to the latter. Anandha gives an account here which differs markedly from Somesvara's narrative in the *Āṭīkṣasūtra*. It will therefore be as well to give the most important verses of this part word for word.

II 48 Now his (Mahārāja's) brother, the illustrious *Bhimadeva* whose invincible terrible arm like the post of a gate destroyed all his enemies wears amulet of the sphere for which the shores of the ocean furnish the pearls.

49 His whole life long he held fast to the reflection: This seat of the gods (Mount Meru) ought not to disappear through my liberality which lasts but for a moment; and so he abstained from uprooting the golden mountain (Meru) in order to distribute gifts of gold.

II 50 That beggars always experienced his liberality we hear from the songs of the pleasure-seekers (nymphs) who settled in the neighbourhood of his palace on the gold mountain terraced for pleasure in the belief that these were spurs of Mount Meru.

51 *Bhima* the husband of the earth whose entire riches had disappeared through continual and too liberal gifts whose brilliant glory had departed whose kingdom was bit by bit violently devoured by the barons—ate his inmost heart out in long accumulated cares.

III 1 All at once the prince whose whole possessions had become small saw in a dream at the end of the night a glorious and splendid god.

12 Thereupon the god poured upon the lord of the earth who was as it were the root of the creeper of his lot the nectar waves of his eloquence as follows—

13 I thy grandfather¹ king *Kumarapala* who have won the bliss of heaven through the laws of Arhat am come because I love thee in thy misfortune.

14 Son I will give thee a proud governor of the kingdom through which thou obtainest great glory as fire does by wind.

15 The great armed Arnoraja son of the illustrious *Dharata* was an elephant in the forest of the *Chandukya* stem an eagle for the serpents his enemies.

16 This man of adventurous spirit who was the cause of my glory was made by me whose heart he won by his courage lord of the city of *Bhāmapāli*.

¹ If *Bhāmapāli* calls himself *Bhāma's* grandfather the expression as is often the case with the indication of grades of relationship is very likely only indefinitely used. For *Kumarapala* was according to all the *Prabandhas* the great-uncle of *Bhima* whose grandfather's name was *Mahipala*. (see Forbes's *Rās Mānd* p. 153).

19 "When evil councillors opposed thee, this strong one made thy accession the means of repaying my favour for ever

20 "His son is *Lātanyaprasāda*, whose arm, brandishing the sword — one would think it was his tongue — prepares to destroy his enemies in fight "

23 "If thou make this ornament of the sphere lord of all (*saricēvara*) thou wilt become the husband of Fortune and rest in happiness like Vishnu in the Ocean

24 "He has a son *Vīradhaśa*, who for the sake of the battle wishes to perform again the oath of the descendant of Dhṛiṣṭi (*Paraśurama*) to destroy the Kshatriya-race "

27 "Give this strong-armed one, whose shining toe-nails have become jewels on the heads of hostile kings, the rank of heir to the throne (*janarāja*), and thyself wilt rule yet a long time

26 "Still more! save thou the Jain faith which helped me to attain unhindered to the fields of heaven, and which now almost sinks into the Kali-(period) "

27 "When the king heard this, he embraced smiling the lotus-feet (of the god) as if he wished to hold in his hands the Fortune that lies in the water-lilies

30 Honouring him graciously, the god, lovingly attached to him, laid his hand which resembled the Lotus, the house of the Kamali, on his head

31 "When in the morning the sound of the trumpet announced the sunrise to the ruler of the world, sleep, which closed his lotus-eyes, departed, like the night which closes the eye-like water-lilies

32 "When the prince saw with astonished gaze the light of the lamps, (he said) 'There is indeed visibly a god!' and then quickly he left his bed

33 Then the husband of the earth who had accomplished the duties of the morning, visited his hall, whose thick buttresses of jewels streamed forth rich splendour,

35 "The ruler caught sight of the devoted barons among the company, shining like sparks of their courage

36 "The father and the son whom the god pointed out, the king anointed lords over all, with his eyes which were like nectar-jars

III 37 Thereupon the king directed joyfully this gracious speech before the nobles to *Lātanyaprasāda* -

34 "Through thy father, the terror of his enemies I was set up (as king) in this kingdom do thou therefore increase my diminishing prosperity

39 "Accept from me, thou great in war, the rank of a lord over all, *Vīradhaśa*, who shines in virtue shall be my successor "

40 Thus requested by the king, himself worthy to be entreated in a matter in which they ought to have been the suppliants, the two spake joyfully "Your Majesty's command is law to us

41 Laying his hollow hands together as if he held in them the Father's Writery (Fortune), *Vīradhaśa* turned again towards the husband of the earth (and said) -

42 "Master, I am in need of an adviser without one, the brave lion springs at the thunder-cloud, taking it for an elephant and suffers a great fall

43 "Give me such a counsellor, distinguished by extraordinary virtues, acquainted with the use of weapons, with books, with the acquisition of wealth and with battle "

44 Greatly delighted by this speech which was like a stream of nectar poured out to invigorate the hana -- (creeper) of his happiness, the master of the world thought a little and then said

45 "Once upon a time was *Chandapa*, fiery in his splendour, a branch of the ever-fresh hana of fame of the distinguished *Prāgāla* lineage, a servant (of the king) in this realm

47 "His son, named *Chandaprasāda*, was furnished with skill and alfability,...

48 "To him was born a son named *Soma*, who flooded the firmament with his glory.

50 "Who had no master but king *Siddha* and no god but the lord of the Jinas

51 "His descendant *Aśvārāja* made the universe splendid with his glory he who accomplished seven pilgrimages to escape the seven hells

53 "His beloved wife was *Kumāradevi*, who, though the first among the Jina-believing (women), worshipped the husband of Gauri

54 "To these two were born three sons, whose power made their enemies tremble ...

55 "First among them, *Malladeva* is famous a treasury of wisdom he who obtained autocracy in his kingdom by the will of his preceptor

56 "His younger brother is the wise *Vasudhāla*, a dwelling-place of the fine arts, whose feet the later-born *Tejapāla* daily worships

57 "These two like wands to whirl about the ocean of deeds, like paths leading to conjunction with Fortuna I will give you for counsellors but they protect their friends "

58 As *Vivadhaxala* rejoiced at this speech, the husband of the earth called to these two sons of one mother who bowed their heads, (and said) -

59 "May you who alone have crossed the ocean of state affairs, be clothed with the dignity of counsellors of the great *Vivadhaxala*

60 "His courage will attain to sight if you serve him as eyes unceasingly vigilant may he trample down all my enemies

61 "Yet more—may you two, who hang on the feet of the Jina prince, like bees on a lotus, glorify the faith in the lord of the Jinas this great wish of king *Kumarapāla*, which he entrusted to me in a vision, must of necessity be fulfilled "

62 When the king had given these instructions, to which a good invisible god called out his approval—falsely taken for the echo from the vault of the audience chamber, — he gave over the two to the heroic *Vivadhaxala* "

If we compare this narrative with that given concerning events by *Someśvara* in the *Ārtiśaṁkudā*, a considerable difference, especially in the rôle allotted to

Bhima II. is unmistakable According to Someśvara's representation, the Gūjararājālakṣmī, the Fortuna or protectress of the kings of Gujarat, appeared in a dream to Lavanaprasāda, the Rānā of Dholkā, and called upon him, with the help of his son, to save the kingdom which had fallen into decay in the unskilled hands of Bhima.¹ Someśvara further states that he himself was called before Lavanaprasāda on the following morning and asked concerning the meaning of the vision He convinced his master, he assures us, that he was appointed by Providence to save his fatherland and induced him to obey the command of the goddess.² Thereupon Lavanaprasāda entrusted to his son the execution of the duty laid upon him.³ A short time afterwards, Vastupāla and Tejapāla were appointed his ministers.⁴ If we reject the mythological additions in this record, which Someśvara, as a good court poet and artist, held himself bound to put in, it merely says that *Bhima* was a weak and unskilful ruler, and that *Lavanaprasāda* and *Vīradhavalā* made use of his weakness in order to found a kingdom of their own To this understanding we are led particularly by the circumstance, the Someśvara, in the description of the kings of Anhilvād, expresses himself by no means respectfully concerning Bhima II, when he says (*Kīrtikāumudā*, II 61) "Powerful ministers and barons gradually divided the kingdom of this young and foolish (*balasya*) ruler," and elsewhere again (*ibid* II 4) he gives the king the same not very complimentary epithet *bala* On the other hand, there is nowhere a question of Lavanaprasāda's service, and in the numerous inscriptions in the temples built by Vastupāla and Tejapāla on Gīrnār and Ābū, and in other places, any mention of the suzerain of Gujarat is entirely wanting On the other hand in the Gīrnār inscriptions, which were written V S 1266, ten years before Bhima's death, *Vīradhavalā* receives the title of Mahārājādhirāja, as if he were an independent ruler Such a disregard of the forms which Indian etiquette prescribes for Vassal-princes and their servants, shews that *Bhima* did not stand in great esteem at the court of Dholkā, and that he was not powerful enough to force from Lavanaprasāda and Vīradhavalā the respect due to him In spite of this it was probable, before the discovery of the Sukritasamkīrtana, that Someśvara's account did not quite correctly represent the true relation of his master to Bhima II For Merutunga says in the *Prabandhaśālinī* (p. 250 (Bombay edition), quite clearly, — "श्रीमद्भीमदेवराज्यचिन्तापति व्याघ्रपालिनादभिरुद्ध श्रीमदानासकन्दर्प श्रीरघुप्रसादविरर राज बसर ।" — 'the administrator of the illustrious Bhimadeva, the illustrious Lavanaprasāda, son of the illustrious Ānaka (Arjorāja) surnamed Vyāghrapāliya (Vāghelā) ruled a long time' This note led me in my first discussion of Someśvara's works (*Indian Antiquary*, Vol VI 187 II) to suppose that Lavanaprasāda was for a time in Bhima's service, and that he only later, — when Bhima's folly, to this day proverbial in Gujarat, his arrogance and extravagance, convinced him that there was no help for it, —

1 *Kīrtikāumudā* II 59-107

2 *Kīrtikāumudā* II 81-86 100-113

3 *Kīrtikāumudā* II 114-115

4 *Kīrtikāumudā* III 51 compare also II 112 where Someśvara accentrates to his lord the necessity of appointing capable advisers

5 The edition and MSS of my collection write evidently incorrectly *Vyāghrapāliya* *Lavanaprasāda* is the reading of I O L B S MS No 296 instead of the *Lavanaprasāda* of the published edition

undertook to found a kingdom of his own. As the date of this defection I thought proper to fix the Vikrama year 1276, in which according to the Girmar inscriptions, Vastupāla was appointed minister. Arisumba's account, which, coming from a contemporary, possesses as much authority as Someśvara's, confirms only a part of these suppositions, whilst he makes it necessary to modify another part of the same. We learn from him that Bhīma II, through his inability to keep the vassals in order and through various difficulties, was forced to seek help and support, and that he himself chose his relative. The choice was prompted partly by Lavanaprasāda's personal qualities, the description of which agrees with that of other sources partly through his father Armarāja's having (v 18 above) already done important service to Kumarapāla and having been helpful to Bhīma himself in obtaining the throne (vv 19 and 38 above). The title *Sarveśvara* Lord over All which Lavanaprasāda according to Arisumba's representation received has much the same meaning as Merutunga's expression *vajrachakṛin* and hints that Lavanaprasāda's position was a very independent one. The further statement that Viradhavāla was at the same time named heir to the throne (*Isarāja*), takes for granted that Bhīma had no sons. Nor do the *Prabandhas* make any mention of such. It must however, be remarked also that neither as Viradhavāla's appointment anywhere mentioned. In any case it remained without practical consequences, for Viradhavāla died several years before Bhīma. Also in the statement that Bhīma gave the brothers Vastupāla and Tejapāla to his Sarveśvara for counsellors Arisumba stands alone. Someśvara says nothing particular at all as to how the two Jains acquired their dignity. In the third Sarga of the *Kirtikāumudī* he gives first a description of their genealogy which agrees with that given by Arisumba (vv 45-46 above) and adds (vv 51 and 52) that the two at once occurred to the prince who desired to win able men. He considered their great qualities and then sent for them. Further on his address and Vastupāla's answer are given in full without however, affording any possibility of learning anything from them of the earlier circumstances of the latter. The later *Prabandhas* *Rajasekhara's Vastupālārabandha* and *Jinaharsha's Vastupālārabandha* state that the brothers had come accidentally to Dholk on their return from a pilgrimage to Satrumāja and were immediately engaged by Lavanaprasāda and Viradhavāla who had just seen the supernatural appearance mentioned by Someśvara. These statements like a great deal more seem to be borrowed directly from the *Kirtikāumudī* and are hence of no value. Someśvara's representation is however certainly defective for he leaves it uncertain how Vastupāla and Tejapāla had so distinguished themselves that Lavanaprasāda could take them for suitable instruments for his plans. On the other hand if one accepts as Arisumba hints (v 57 and 59 above) that they had both been already in the royal service this difficulty disappears. The probability of these statements is also supported by the circumstance mentioned by Someśvara (*Kirt* III 14) and by Arisumba (v 50 above) that their grandfather *Soma* had held a high position under Jayasūmha. In the case of the brothers having been in royal service however Bhīma's consent was naturally necessary to their entering Lavanaprasāda's service. Thus we must declare Arisumba's account to be more worthy of credit. We can only doubt whether Vastupāla received his appointment at the same audience at which Lavanaprasāda was appointed *Sarveśvara*. The date of the former event is fixed as already

mentioned, by the *Girnār inscriptions*, where it is repeatedly said that, from the (Vikrama) year (12)76, in Dholiā and other cities, he sealed "affairs with the seal." ¹ The acceptance of Arisimha's statements makes it, of course, necessary to reject the suppositions expressed on a former occasion (*Indian Antiquary*, loc cit) that the appointment of Vastupala and Tejapala marks the period when Lavanasasāda deserted Bhīma and began to found a kingdom of his own

The new discoveries made since 1877 render it doubtful whether the Sarvesvara or his son ever was unfaithful to his master II appears rather as if Lavanasasāda, in his relation to the latter, although he practically ruled independently over the southern part of the Gurjara kingdom, yet conducted himself at least outwardly as a vassal, and that Professor V A Kativate is quite justified in comparing ² his relation to Bhīma with that of the Marāṭha Peshvas to the court of Sātārā. Of special significance for this point is the *Lekhapanchāśaka* ³ discovered by Dr R. G Bhandarkar, which, as he correctly acknowledges, was composed in the Vikrama year 1288, that is, twelve years after Vastupāla's appointment as minister and during Bhīma's reign. This little work gives formulæ for letters and documents of different kinds. Among the latter there is a gift of land, dated V -S 1288 in which the *Mahamandalesvarādhipati*, 'the great overlord of the tributary princes,' Rāṇā Lāvanyasasāda, is named as giver. Before his name stands the whole genealogy of the Chaulukya kings of Anhilvād, and it is remarked that, by the grace of his master Bhīma II, he possessed the *Khetakahārāpathaka* 'district of *Lāra*.' ⁴ Then the same work contains, as an example of a state treaty, an agreement of the same date between the *Mahamandalesvara* Rāṇa Lāvanyasasāda and Simhana (Simghana), the *Maharājadhira* of Devagiri, in which both contracting parties respectively promise to respect the other's boundaries, to keep peace and to help each other. Although the first of these two documents is evidently nothing more than a formula, and of the second nothing can be certainly proved as to whether it is a copy of a real treaty, yet their value remains considerable. Then, as the author of the *Lekhapanchāśaka* was a contemporary of Lavanasasāda, we may take for granted that he describes the political relations in general correctly. We may believe him on the one hand that in the Vikrama year 1266 Lavanasasāda was authorised to make treaties with foreign princes and consequently possessed a high degree of independence. On the other hand we must admit that if Lavanasasāda at that time made gifts of land he employed the form ordinarily used by tributary princes and acknowledged the overlordship of Bhīma. If this be correct, there can be no question of a defection on the part of Lavanasasāda, at least until V -S 1288. The relation must rather have been as Arisimha gives it. Lavanasasāda stood higher than all other rulers of districts, and governed the kingdom of his master in the strength of the trust committed in him. However free and high may

1 *Archæ Reports of Western India* Vol II p 170. Vastupāla calls himself in this and in corresponding passages in other inscriptions *Sarvesvara* his brother on the other hand *Mahāmātya*.

2 *Kirīṭanāmā* p 227.

3 *Report on Search for Sanskrit MSS* 1882-83 p 28 ff and p 222 ff.

4 This should be written p 223 for *khetakahārāpathaka* and p 224 for *khetakahārāpathaka*.

As in other passages of the formulæ the expression is incorrect. For *āditya* originally corresponded approximately to the modern *zillā* and *pathaka* to *distric*. Moreover similar combinations of the two expressions are found in real presentations of land in later times.

have been his position, he had not become a rebel. The confirmation, which Arisumba's statements receive through the *Lekhapāñchāṣikā*, make it advisable, in the representation of this period of the history of Gujaraṭ to trust him more than the insinuations of Someśvara.

In concluding the discussion of this part of the *Sukṣīlasamkīrtana*, the mythological clothing must still be mentioned. In the treatise by Zachariae and myself on the *Navasahasankacharita*, p 46, I shewed that the court-poets often deemed it suitable, at crises in the history of their heroes, to make the gods actively interfere. When Arisumba then makes the spirit of Kumārāpāla descend from the fields of heaven to move Bhīma to the appointment of Lavanaprasāda as his *Sarvōstara*, it is not difficult to see what moved him to make use of this *deus ex machina*. Kumārāpāla was well known as the adherent and protector of the Jaina faith. After his death a Brahman reaction took place under Ajayapāla and though Ajayapāla reigned only a short time, the Jaina sect seems not to have regained its former importance under his sons Mularāja and Bhīma II. Only when Vastupāla and Tejapāla became ministers in Dholka did it again raise its head. Both belonged to one Jaina family and were filled with great enthusiasm for their religion. They spent a great part of their rich incomes on the erection of temples, asylums and benevolent institutions, so that at least the outward lustre of the Jainas was restored. Arisumba tried to unite the two prosperous periods of his sect by representing Kumārāpāla as the intellectual originator of the second. In doing so, he has not refrained from putting words into King Bhīma's mouth which he certainly never spoke, when he makes him call upon Vastupāla and Tejapāla (v. 61 above) 'to glorify the belief on the lord of the Jainas.' According to all we know of Bhīma, he favoured exclusively the Brahmins, and especially the Śaivas, to whom he made many presents. To excite Vastupāla's enthusiasm for his faith was, however, absolutely unnecessary.

VASTUPĀLA'S PILGRIMAGE TO ŚĀTRUVJAYA AND GĪRNĀR

In the fourth Sarga Arisumba turns to the description of the *Saṅgīta* of pious works of Vastupāla, by which he adorned the Jaina religion. First he mentions shortly that Viradhavala, with the help of his minister, soon 'conquered the ocean-girt earth and put down all wrong and violence' (vv 1-7). Then he relates how in that happy time Tejapāla came to his brother, praised his successes, and advised him to keep in mind the king's command and support the Jaina religion (vv 8-13). Vastupāla agreed and declared he would at once visit his spiritual director to hear his preaching and begin his works of piety according to his advice (vv 14-26). On this occasion the succession of the monks of the *Nagendra gachchha* is gone over, which, since the time of Chandapa had served the family as spiritual advisers. The names are precisely the same as those in the *Praśasti* of Tejapāla's temple on Mount Abu¹ - (1) Mahendrasuri (vv 15-16) (2) Śāntisūri (vv 17-18) (3) (a) Ānandasuri and (b) Amarasuri (who received from King Jayasumba the title of honour *Vyāghraśīkhau*, 'the young tigers,' because even in early youth they were able to withstand proud disputants resembling fiery elephants (vv 19-21) (4) Haribhadrasuri (vv 22-23) and (5) Vīśvajayasena

¹ *Aśvameśvādī App. A* pp 9-10

{Vastupāla's spiritual counsellor, vv. 24-26}. Next we are told how Vastupāla went into the monastery with his brother and offered his homage to Vijayasena. The sermon following by the latter (which fills vv. 33-43) commends, as the most meritorious undertaking, a pilgrimage, and extols, as happy above all others the *saṃghādhīpati*, the leader of pious pilgrims. The consequence is naturally that Vastupāla resolves to undertake a pilgrimage of the congregation to the holy places in Kāthiavād.

The fifth Sarga then describes (vv. 1-6) the preparations for this journey. Vastupāla, it says, sent letters to the believers in every town to invite them. He visited personally the monks in the monasteries and invited them respectfully. For those who responded he cared in every way. Whoever had no carriage, he gave him one, whoever wanted provisions for the journey, got them, and for those who had no servants he provided them. Medicines and physicians also were not forgotten, so that those who sickened by the way might have assistance. When all preparations were complete, he had himself solemnly consecrated by his Guru as *Samghādhīpati*, and set out 'surrounded by a wonderful army of carriages' (vv. 7-8). In verses 10-13 the names of some distinguished monks who took part in the pilgrimage are mentioned — Narachandrasūri, Jinadattasūri of the Vāyāṣa gachcha, Śāntisūri of the Sanderaka gachcha, and Vardhamānasūri 'the sun of the Gallakas'. In Kāsahrada, which is probably identical with the modern Kāsandra or Kāsandhra near Gāmph,² a halt was made, and (v. 16) a great festival was instituted in the temple of Rāshabha. Of other stations by the way nothing is said. The Sarga closes with the arrival of the pilgrims at the foot of Mount *Saṭrumgaya*, where Vastupāla pitched a great tent-camp (v. 41) and distributed rich presents, especially of provisions, to all in want. He cared not for himself, it says, until he had assured himself by means of his herald, that no one wanted anything.

After, in the sixth Sarga, a conventional description of sunrise, which in a *Mahākāvya* must not be wanting, there follows in the seventh the description of the ascent of the mountain and the festivities engaged in there. The ascent took place on the morning after the arrival. The first shrine which the pilgrims reached was that of the Yaksha Kapardin (v. 12). Vastupāla offered his homage and celebrated him in a song of praise (vv. 13-16). Then he hastened to the temple of *Adinātha*, whither the pilgrims followed him in crowds (v. 17). Still covered with the dust of the way, Vastupāla fell down outside before the lord of the Jamas (v. 26), and praised him in a hymn (vv. 27-33). Only then did he purify himself, the pilgrims following his example, and then he entered the Chaitya with them amid the performance of dances and songs (vv. 34-37). Thereupon he washed the image, as the rule prescribed, with saffron-water, rubbed it with musk, and wreathed it with flowers. The pilgrims burnt at the same time so much incense that the temple was wrapped in thick darkness. And at last the *ārātrika* was performed, numerous lamps being swung to and fro before the statue (vv. 38-42).

² Instead of *karada* (ank *drada* occurs in the Pāli text so that Kāsandhra would correspond exactly to the Sanskrit Kāsahrada. The further correction conforms to the rules of Gujarati phonetics. Kāsandra lies (see *Trig. Surv. Maps Gm. Ser. Nr. 82*) in 72° 14'E. long and 22° 19'N. lat., pretty nearly on the direct route from Dholā to Pāṭanā. In the text Kāsahrada is called a *paṭṭana* 'a town'. The modern Kāsandra is a village of about 400 inhabitants.

"Vastupāla, in the year 77 (V S 1277), attained the dignity of a Saṃghādhīpati or head of the congregation by the grace of the illustrious over-god of the gods, who, in consequence of the mighty working of the festive pilgrimage undertaken to Śaṭrumjaya Ujjayanta (Girnār) and other shrines, revealed himself "Someśvara, on the other hand, dedicates the whole of the last Sarga of his poem to the pilgrimage, and his description of it agrees on the whole with that given by Arisimha. Yet there are the following differences. The halt in Kāsahrada is not mentioned. It is said on the other hand (*Kṛi* IX 19,20), that the route followed by the minister could be traced by means of the restored old temples of the Jinas and the freshly dug tanks, as also that the pilgrims offered homage in all the temples to which the procession came. On *Śaṭrumjaya*, Vastupāla stopped according to Someśvara (*Kṛi* IX 36) only 'two or three days'. In spite of this, it is said immediately before (IX 30-36) that he presented a flag of yellow-white stuff to the temple of *Ādinātha*, that he built two temples to *Nemsaṃtha* and *Purṣvanātha*, and had a large tank dug. It is not doubtful that the last two notes refer to a later time. Further on in the course of his report Someśvara (IX 66-69), places the visit to *Girnār* before that to *Devapaṭṭana* or *Prabhata* (IX 70-71). He states also that Vastupāla was 'many days' on *Girnār*, and that in *Devapaṭṭana* he worshipped, besides Śiva-Somanātha,² the Jaina Tīrthamkara Chandraprabhū. Probably this contradiction is explained in that two visits to *Devapaṭṭana* took place. Arisimha hints at this when he says the pilgrims went to Vāmanasthali on their return-journey. Vāmanasthali or Vantālī lies about nine miles south-west of Girnār and on the direct road to *Devapaṭṭana*. Whoever travels by Vantālī on the return from the *Girnār* cannot readily take any other way afterwards towards the mainland of Gujārat than that which leads from *Devapaṭṭana* first along the south and then along the east coast of the peninsula. This seems to have been in early times the ordinary route for caravans and pilgrimages.³

VASTUPĀLA'S BUILDINGS AND PIOUS INSTITUTIONS

The eleventh and last Sarga begins with the statement, that *Vastupāla*, after he was made lord of the town of *Śaṃkhaluṭha* by *Viradhaṭa* began to build temples (*Aṣṭanāmi*) which resembled embodiments of his fame on earth, and in verses 2-31 forty-three buildings, restorations and institutions of different kinds are enumerated. This list is much more modest than those which occur in the later *Prabandhas* of Rājasekhara and Jinaharsha. It contrasts also advantageously with the absurd boastfulness of the *Girnār* inscriptions, in which it is said⁴ that *Vastupāla* and *Tejapāla* caused new places of religion (*Dharmasthānāni*), i.e. temples, asylums abodes for the performance of perpetual vows, tanks and so on, to the number of ten millions (*koṭīśaḥ*) and also caused very many restorations to be made. Arisimha gives the following details —

I — In *Anahilapuri* or *Anhilil-Pāṭan* —

- 1 The restoration of the temple of *Prācāsara-Pūrṣvanātha* which *Vanarāja*

1 The worship of Śiva and tīng for a Jaina, is also admitted by *Jinaharsha*—i. *Cār* VI 533

2 In the *Vastupāla* *śaṭkṛti* VI 515 & the way is more minutely described and the stations between *Śaṭrumjaya* and *Girnār* are (1) *Taladhva* or *Talāḍa*, (2) *Kopāri* of *Kopāri*, (3) *Devapaṭṭana* and (4) *Vāmanasthali*.

3 *Arch. Rep. Western India* Vol. II p. 173 15 transcription

(p 63 above) had caused to be built (§ XI 2) With this agrees Jinaharsha in the *Vastupālacharita* VII 66, where it is added that the building took place when Vastupāla visited Pātan after a battle against the Muhammadans at Ābū, which he won by the help of Dhārāvārsha of Chandrāvati Muhammadan authors mention nothing of attacks upon Gujarat in the first half of the 13th century At the same time it is possible that during or after Shamsuddin Altamsh's expedition against Ranthambor, A D 1226¹ parts of the victorious army may have come as far as Ābū and attempted an invasion of Gujarāt If Jinaharsha's note be correct we may perhaps accept that the restoration of the temple in Anhilvād took place in the year A D 1226 or 1227

II — In *Śaumbhadritha* or *Cambay* —

2 The erection of a golden *re*, a gilded, flag staff and knob on the temple of Bhīmeśa (§ XI 3) The *Vastupālacharita* (IV 720) gives the same note, and has, instead of the vague *ketu* (literally "banner"), the plainer expression *dhvajadanda*

3 The erection of an Uttanapatta before Bhaṭṭaditya and of a golden wreath on his head (§ XI 4) The *Vastupālacharita* IV 719, speaks of an Uttanapāda (?) in the temple of Bhaṭṭaditya The technical meaning of Uttanapatta is unknown to me

4 The excavation of a well in the temple-grove (*pājanāyana*) called Vahaka of Bhattarka (§ XI 5)

5 The erection of a *mandapa* or vestibule overlaid with stucco (*śukhāmādhura*) before the temple of the sun-god called Bakula (§ XI 6) The *Vastupālacharita* (IV 721) speaks of a *raṅgamandapa* or painted vestibule before the temple of Bakulasāmiḍeva.

6 The restoration of the *mandapa* and of the temple of Śiva-Vaidyanātha (§ XI 7) The *Vastupālacharita* (VI 718) says more plainly, "The temple of the god Vaidyanātha, together with the *mandapa*, he made new again to the everlasting safety of his king"

7 The erection of high walled enclosures for the sale of sour milk (*takra*, § XI 8) Both Someśvara (*Ārit* IV 17) and Jinaharsha (*V Char* IV, 716) mention this The *uchchāṣṭhapaḍa* or *redhāṣṭha* must, as Prof A V Kathvate in the notes to the *Āritkaumudī* says have been erected for the purpose of protecting the wares from contamination by people of low caste

8 9 The erection of two asylums (*upāśrayas*) for Jama monks (§ XI 9) Someśvara (*Ārit* IV 36) speaks of many *paṣṭhādhaśilās*, which Vastupāla caused to be erected in Cambay

10 The erection of a drinking hall with round windows (*garāḥṭha*) on two sides (§ XI 10) Someśvara (*Ārit* IV 33) again speaks of many such

III — In *Dhavalakha* or *Dholkā* —

11 The building of a temple of Ādinātha (§ XI 11) According to *V Char* III 457, this temple was called Śatrumjayāvatara

¹ Elliot, *History of India* Vol II P 326

² वंदनायस्य दत्तस्य मन्दिरं मण्डपौष्ठरम् । अथनं निबन्धनमुक्तेने येन सुवर्णम् ॥

the first was built for the welfare of Vastupāla's first wife Lalitadevi, and the other for the welfare of the second Saukhyalata or Sokhuka

30 The erection of a *pristhapalla* i.e. of a tablet behind the statue of Juna (Ādinatha?) of gold and precious stones which seemed to give the statue a halo (*bhāmanāla*) (§ XI 23)

31 The raising of a golden *torana* (§ XI 24) ¹

V — In the neighbourhood of *Padalāpura* or *Palitana* —

32 The excavation of a large tank (*sarah* § XI 26) mentioned also by Someśvara (*Kirtihavmudr* IX 36) and by Jinaharsha (*V Char* VI 577) In the latter passage it is added that the tank lay near Vagbhāṭapura the place built by Kumarapāla's minister Vagbhāṭa and bore the name of Lalitasarah in honour of Vastupāla's first wife

33 The erection of an asylum (*upaśraya*) for Jaina monks (§ XI 27)

34 Of a pump-room (*prapa* § XI 28)

VI — In the village of *Arkapaṭita* or *Ankavaliya*

35 The digging of a tank (*taḍaga* § XI 29) Jinaharsha (*V Char* VI 690) adds that Vastupāla had this tank dug for his own welfare According to the same author he erected in the same place a pump room for the benefit of his mother a *sattra* or alms house for the benefit of both his parents and further a temple of Śiva (*parabhīdo devasya*) and a rest house for travellers There are several villages in Kathiavād with the name of Ankavaliya Probably the one meant here is that which lies eastward from Bhimnath 71°59' E long and 22°15' N lat (Trigonometrical Survey Map Kath Ser No 14) on the river Lolka There is a large tank and the village lies on the old road from Dholka to Śatrumjaya

VII — On Mount *Uggayanta* or *Garnar* —

36-37 The erection of two temples of Pārśvanātha of Stambhāna and of Ādinātha of Śatrumjaya (§ XI 30) These two temples are mentioned in the Gmār inscriptions (*Arch Rep IV I Vol II* p 170 16) first among the buildings erected there Jinaharsha (*V Char* VI 695) speaks only of the temple of Ādinātha

VIII — In *Stambhāna* ²

III The restoration of the temple of Pārśvanātha which was adorned with statues of Ādinātha and Neminnātha (§ XI 31) Jinaharsha says (*V Char* VI 518) that Vastupāla deposited 1000 *dināras* in the treasury of Pārśvanātha for the purpose of the restoration not that he himself had it done

39 40 The erection of two pump-rooms (*prapa*) near the temple of Pārśvanātha (§ XI 32)

¹ In verse III the author says that he would be able to describe all the buildings erected on the Śatrumjaya, III the creator had given him a place in the firmament like the teacher of the gods (the planet Jupiter)

² This place lay as is often mentioned in the *Prabandhas* on the river Sejhī or Shejhī and thus in the eastern part of the present collectorate of Kheda Peterson's identification of it with Stambhātīrtha or Cambay (*Arch Report* p 26) is untenable for the Shejhī is more than 30 miles distant from Cambay and Stambhāna is named along with Stambhātīrtha in the Gmār inscriptions (Stambhāna is an old name for Thāmna on the Sejhī, 10 miles south west from Thārā is Anand thāka lat. 22° 43' N long 73° 59' E J B)

IX — In *Darbhavats* or *Dabhov*

41-42. The placing of gold capitals on the temple of (Śiva) Vaidyanātha, because the old ones were carried off by the king of Mālava, and the erection of a statue of the sun-god (Ś XI 33) Jinaharsha mentions these (*V Char* III 371), but ascribes them to Tejapāla

X — On Mount *Arbuda* or *Ata* —

43 The building of a temple of Malladeva (by whom may be meant Mallideva or Mallinātha) for the benefit of his brother Malladeva (Ś XI 34) In the *V. Char* VIII-76, it is stated that the temple for the benefit of Māladeva was built on Śatrumjaya Since only one temple of Neminātha built by Tejapāla, is found on Ābū, and its position makes it improbable that a second ever existed, the mistake may be on Arisimha's side

In this list of Vastupāla's buildings the restorations of Brāhman temples, as well as of the decoration of such buildings, have a special interest They prove, as does also his worship of Śiva-Somanātha in Devapattana (p 77 above), that he was no exclusive Jaina, but was rather lax in his religious views, and thereby confirm some hints in the later *Prabandhas* on this point (see *Ārtikaumudī* p xxii) The reasons for his lax view may have lain partly, as Professor A V Kathvate says, in the passage quoted in his familiar intercourse with the high priest Someśvara and other Brāhman savants but may partly be due to his position at the Brāhman court of Dholka The latter is hinted at by Jinaharsha also He adds apologetically, on mentioning the worship of Śiva-Somanātha in Devapattana, that Vastupāla performed this act to please his king¹ He also says further on, that the minister, 'at the command of his master,' prepared a *roundamāḍā*, or 'skull-chain' or 'tara, adorned with rubies, for Śiva These well-authenticated pieces of information have their significance in the judgment of cases where something similar is stated of court Jains, as, for instance, of Hemachandra,² in works less worthy of credit

The second interesting point in the catalogue is the mention of *only two temples on Girnar* This shews plainly that the great threefold temple, which now forms the principal ornament of the mountain, was not yet finished, perhaps not yet begun The date of the six inscriptions, identical in their first parts, in the Vastupālayāhira, = Vikrama-Samvat 1288 Phālgua śukla 10, which according to Jacobi's calculation, *Indian Antiquary*, Vol LVII p 151 f., corresponds with the 3rd March A D 1232 The *Sukritasamkirtana* must therefore have been written before that time, and we must not put its authorship earlier than Vikrama-Samvat 1285 From a comparison of the list of Vastupāla's buildings in the *Kirtikaumudī* it is further clear that the latter work was written in a little earlier than the *Sukritasamkirtana* For in the *Kirtikaumudī* the buildings on Śatrumjaya are mentioned, but not two temples on Girnar

¹ *V Char* VI 535-536 —

श्रीवीरपद्मश्रीसप्तान्तमन्त्रोपदेवः । सोमेदरं वृत्तानं मन्त्री नावनिषाचनं ॥ ५१५
नरेन्द्रदेवतो मन्त्री सोमनाथमहमिन्दु । मालेक्यगन्धि सुप्रभातप्रयत्नवारम् ॥ ५१६

² See *Ueber das Leben des Jaina-Weisens Hemachandra* S 27 f

NOTES ON VASTUPĀLA'S WARLIKE DEEDS

While Anusimha, true to his plan, sings only of the *sukṛtas*—the pious deeds of Vastupāla, Amarapaṇḍita endeavours to acquaint posterity also with the heroic deeds of his patron. He evidently knows of only one, the victory of Vastupāla over *Samgramasimha*, the son of *Sindhuraja*, who seems to have been a petty vassal-prince or village chief in Vataḥkupa near Cambay, and over his ally *Śankha*. He says, I 44: 'They call him a Jama, but the illustrious minister Vastupāla is devoted also to Śiva. He washed the master who wears the form of air (i.e., goes naked) with the water of shining fame which he took from *Śankha*.' Further, VII 46: 'Thy sword illustrious Vastupāla, beautiful in rising and brandishing valiant in deed, defeated in the world that *Samgramasimha*. And X 45: 'Thy glory O Vastupāla, which shines by the victory over *Sindhurāja* is like the moon in the sky since the spot in it is certainly the face of *Sindhuraja* which was blackened by his deep shame.'

Vastupāla's feud with *Samgramasimha* and *Śankha* is related at length by Someśvara in the *Kṛṣṇaśmudh* IV V, and Someśvara also is unable to report any other warlike deed of his friend. Since, then, we possess two eulogies, which, although otherwise independent of each other, mention only this one exploit, we may conclude that the accounts in the later *Prabandhas* of the numerous heroic deeds of Vastupāla and Tejapāla, in the beginning of their career, deserve on great confidence.

In conclusion, it may be mentioned that Amarapaṇḍita twice addresses Vastupāla by the name of *Vasantapāla*. This was his poet name, under which he wrote the *Narandīyānāṇḍa kavya*, which I found in Aphitād in 1875.¹

INTRODUCTION

of the *Sukritasankirtana* text by late
Muniraja Shri Chauravijayaji Maharaja

सप्तसंज्ञिनापिपतिचर्मनृपाद्वरक्षो जागति नृत्तितमना मुदि वस्तुपालः ।

The *Sukritasankirtana* is a historical *Mahākāvya* describing the good deeds of *Vastupāla*. It consists of eleven cantos and at the end of each canto are appended five verses composed by a *Amara Pandita*. Three out of these are eulogistic, the fourth mentions *Ansimha* as the author of this work and praises his poetical skill, while the fifth records the fact that these four verses are composed by *Amara*.

The popularity Of the work. The *Sukritasankirtana* does not seem to have been popular even among the Jains. Verses from *Someśvara's Kirtikaumudī* are often found in the *Prabandhakośa* and *Jinabharsha's Vastupālcharitra*, but none from the *Sukritasankirtana*. *Bālachandra* has also composed his *Vasāntāvīlas* on the style of the *Kirtikaumudī*.

Literature about *Vastupāla*.—The main works about *Vastupāla's* history are as under,—

Contemporary

- | | | |
|-----|--|--------------------------|
| I | <i>Sukritasankirtana</i> | |
| II | <i>Kirtikaumudī</i> | |
| III | <i>Dharmābhyudaya</i> | } <i>Udayaprabha</i> |
| IV | <i>Sukrtakirtikalohit</i> | |
| V | <i>Hammuramadarnadana</i> | } <i>Jayasimha Sūtri</i> |
| VI | <i>Vastupāla Tejapālā Prafasta</i> | |
| VII | <i>Vasāntavīlāsa</i> by <i>Kālachandra</i> . | |

Later

- | | |
|------|--|
| VIII | <i>Vastupālaprabandha</i> in the <i>Prabandhachintāmaṇi</i> |
| IX | <i>Vastupālaprabandha</i> in the <i>Chaturvimsatiprabandha</i> |
| X | <i>Vastupālcharitra</i> of <i>Jinabharsha</i> |

The author and his religion.—The author of the *Sukritasankirtana* is *Ansimha*, son of *Lavanasimha*. He was a protege of *Vastupāla* and we understand from the *Upadeśatarangī* that like *Someśvara*, the author of the *Kirtikaumudī*, he too got a *gras* and other gifts for this work¹. It is not clear to what caste he belonged, whether he was a *Bania* or a *bard*. He has got the appellation *Thakura* and this appellation was common among the *Banias* too. As to his religion, it is not quite certain whether he was a *Jaina* or a *Shaiva*. The fact of his bringing the spirit of *Kumārāpāla* and making him to order *Bhima* to revive the glory of *Jainism* speaks in favour of his being a *Jaina*, while his omission of salutation of *Jina* in the beginning of his poem and his telling us that *Vastupāla's* mother *Kumāradevi*, though a leader among those following *Jainism*, had faith in *Śiva* too, which is not mentioned by any other writer, may lead one to believe that he was a *Śaiva*,

(1) स्वसङ्घितनृपकुलसंजितदासप्रतिपादककीविशेषीसुहृत्सङ्घीतिकाव्यहस्तमेवकारिसिंहसोमप्रभासदुर्लादि-
दान यावज्जीवाहं दण्डम् ।

of course, not staunch Jahlapa's Suktumuktāvalī quotes four verses of Arasi Thakkura,² who is most probably the same as our author

Amarachandra and his relation with Arisimha — Amarachandra is an illustrious figure in Sanskrit literature. The fame of his works was not only restricted among the Jainas, but also extended to the Brahmmins among whom his works *Bālabhārata* and *Kavikalpalatā* were popular. His other available works are *Chhandoratnavali*, *Syādisābdasamucchaya* and *Padmānanda Kāvya*. The last work was composed at the request of *Koṣṭhāgarika Padma*, a *Vayada Bania* of *Pattan*.³ It is otherwise known as *Jinendrachantra*, as it gives the lives of Tirthankaras. The *Prabandhakosa* mentions two other works of his, *Sūktāvalī* and *Kalākālīpa*. He compared in one place in his *Bālabhārata* the braid (वेणी) to a sword and for this he was known as *Venikṛpina Amara*. Amara was the pupil of *Jinadatta Sūri* of *Vayaḍagachchha* the author of the *Vivekavilāsa*. *Jinadatta Sūri*'s name is mentioned in this poem among the *Ācharyas* who accompanied in *Vastupa*'s pilgrimāge *Śatruṅjaya*. The *Prabandhakosa* tells us that *Amarachandra* got the charm of *Siddhasārasyata* from *Kaviraja Arisimha*, pupil of *Jinadatta Sūri* and by his chanting this for twenty one days the Goddess of Learning appeared before him from the disc of the moon at the midnight of the twenty-first day and gave him the boon that he would be a *Siddha Kavi*, honoured by all kings. The same *Prabandha* describes his entry into the court of *Viśaladeva* and through him of his teacher in fine arts, *Arisimha*. But the *Prabandhachūntāmāṇi* tells us that *Amarachandra* had entered the court of *Dholka* in the time of *Vastupāla* and was recognised as a poet of power and note. *Amarachandra* does not mention in any of his published works that he was a pupil of *Arisimha* in fine arts but it is only clear from the works that he held *Arisimha* and his poetry in high esteem. The story about *Amara*'s getting *Siddhasārasyata* charm from *Arisimha* and also his introduction of *Arisimha* into the court of *Viśaladeva* should be accepted with much reserve. One thing is, however, clear from this that both *Amara* and *Arisimha* occupied a remarkable position in the literary court of *Viśaladeva*. Just as *Amarachandra* had composed four verses in the *Sukṭasankīrtana*, so the *Sūtras* of *Kavikalpalatā* of *Amarachandra* were composed partly by *Arisimha* and partly by

- (2) अतिविपुलं कुचयुगलं रहसि करैरामृगमुहुर्दम्बा ।
तदपहृतं निरुद्धं जयति हरिर्गुणमया इव ॥
मम्येन तस्या निजिनं कृपाप्राप्त्या पद्मानन्दं जाननवदत्तम् ।
तस्यां हनन्त्यममनीयैवैव कुम्भी गगनात् कुण्डलो मिननि ॥
दक्षिणवर्तिनो गलेऽलम्बयन्निदमादमद्वयमनयो विप्रविश्वकसेन ।
भवतिसकन्देदमपराधेन कृपाप्राप्तमिव दिवगादौ व्यपशपिष्यन्निदम् ॥
बन्ताऽस्मद्देवस्य कथयति गमिनान्व नराणोऽपमद्वय
पुण्योद्योगीयं मृगसाहसिपरिग्रामेऽन्ते अयते ।
इयं तद्भारिणी मिति नरपते । जनुज्जीवदम्ब
प्राप्त्या जनुज्जीवो नयति पुनश्चरति पद्वानाम् ॥

Jahlapa's Suktumuktāvalī

- (3) पद्मानम्बिका न श्रीत्रिनेत्रचरिताद्वयम् ।
वाक्साहस्यो महाबाह्व्य विममे निमयेधर ॥ पद्मानन्द १-४३

Arnarā¹ Amarachandra mentions in his Kavikalpalata one more work of Arisūmha, Kavitarahasya. Amarachandra calls Arisūmha in the Sukṛtasankirtana as an able disputant.

Analysis of the work—The first canto gives the genealogy of the Chāpotkaṭa kings. Of Vanarāja it is said that he founded the city of Anahulla Pattana and that he erected there the temple of Panchāsara Parśvanātha.

After him Yogarāja, Ratnaditya, Vairisūmha, Kshemaraja, Chāmunda, Rābada & Bhūbhata successively ruled over Gujarat. This list of Chavda kings is identical with that given in the Sukṛtakīrtikalloṭhi of Udayaprabha. In view of the concurrence of these two authorities the statement in Krishnaja's Ratnamāla, which is not so old as is believed is unreliable.

The second canto describes the reigns of the Chauḷukya kings. Muṭṛāja's pilgrimage to Someśvara every Monday is also mentioned in Bālachandra's Vasantavilāsa. The fourth verse refers to his erection of Tripurusha Prasāda in Anahullavāda. Mularaja defeated Barapa, the general of the king of Kanyakubja, and Laksha, king of Cutch. Vallabharāja's victory over the king of Malva is celebrated in verse 18th. He had the *biruda* of Jagajzampana. This *biruda* is found in the Kumārāpālprasūbodha, Kīrtikaumudī, Sukṛtakīrtikalloṭhi and Vasantavilāsa. Durlabharāja was very modest and was ashamed when his court poets compared him to Kṛṣṇa. Bhīma defeated Bhoja of Dhārā. Karna conquered the king of Malvā and brought home from there an image of Nīlakantha Śiva, Jayasūmha conquered Barbaruka and took prisoner Yaśovarma, king of Dhara. He had the tank called Siddhasaras dug and a high pillar of victory built. Jayasūmha was very devotional towards his mother Kumārāpālā abolished the confiscation of the property of tradesmen dying without male heirs and caused Jain temples to be built in every city. He conquered the king of Jangla. Arnorāja of Śākambhari, and his general Āmbada who was a Bama, defeated and killed the Kadamba king Malhka Arjuna of the Konkaṇa. This victory of Āmbadī is corroborated by Bālachandra in his Vasantavilāsa. Ajayadeva generally called Ajayapāla got from the king of Sambhara a golden Mandapikā. Muṭṛāja II, though a child defeated the Turushkas, Mahamad Sīhabuddin Ghori. Bhīmadeva II was very charitable and extravagant. His kingdom was being devoured by his powerful Mandalesas, whom he was unable to control. Bhīma was thus filled with anxiety about the fate of his kingdom. One night a glorious and splendid god the spirit of his grandfather Kumārāpālā appeared to him in a dream and said that in order to restore order and to prevent dismemberment of the kingdom and to save the Jain faith which was almost sinking, he should make Lavaprasāda son of Argorāja, son of Dhavala, to whom he had given the principality of Bhīmapalli his Sarveśvara and make his son Viradbavala his Yuvaraja. Viradbavala then requested king Bhīma to give him good counsellors. Bhīma said that there served in this realm, Chandapa fiery in splendour, of the Porāda lineage. His son was Chandaprasāda. His son Soma, who served under Jayasūmha acknowledged no master but king Siddharāja.

(1) सारस्त्यायुतमहर्षिर्गणितेन्द्रोर्ध्वासिद्धिदुर्वचः कवितारहस्यम् ।

किञ्चिद् सञ्चितमात्रमत्र च किञ्चिद् व्याख्यास्यते । सारित्त्यायुतमहर्षिः इत्यम् ॥

साम्प्रत्यन्तर्गतः ।-। ।

Jayasinha and no god but the lord of the Jinas. His son Aśvarāja who made the universe splendid with his glory made seven pilgrimages in order to escape seven hells. His wife Kumāradevī though eminent in the Jaina religion also had faith in Śiva. They had three sons—Malladevī, Vastupāla and Tejapāla. Bhīma then gave Vastupāla and Tejapāla as Virādhavala's counsellors and said to him that his heroism which will have sight with these two as eyes may now trample down his enemies by searching them out. The two ministers should fulfil also the message of Kumārāpala—the glorification of the Jaina faith. This account though it materially differs from that given by Someśvara in this Kīrtikāurnudī agrees with that in the two other contemporary works (1) Jayasinha's Vastupāla Tejapālaparāśasti and (2) Udayaprabhā's Suktyakīrtikālochinī. Vastupāla's own words should have, however more weight in this respect. In the Naranārāyaṇānanda he calls himself as the high minister of the Gujjarastara and in its last canto he says that he accepted the dependence of the high ministership of Bhīma, the lord of Gujarat for the incessant occurrence of the festival of faith without any obstacle which is sweet on account of its splendid power.¹ Bilchandra's account however agrees with that of Someśvara.

In the fourth canto Arisinha says that Virādhavala with the help of his ministers conquered the earth and put down all wrong and violence. Tejapāla then requested Vastupāla to keep in mind the king's command and support the Jaina religion. Both approached their spiritual family preceptor Vijayasena Śōri of the Āgendaragachchha. On this occasion the succession of the priest of this gachchha is given (1) Mahendra Śōri (2) Shānti Śōri and Amara Śōri who received from king Jayasinha the title—Tiger Cubs—as they had overcome proud disputants even in their infancy (3) Haribhadra Śōri (4) Vijayasena Śōri. Vijayasena Śōri explained to them the religious merits of becoming a Saṅghādhipatī. Vastupāla resolved to do so.

In the fifth canto are described the preparations for the great pilgrimage. Narachandra Śōri of the Mahādharī gachchha and spiritual adviser of Vastupāla on his mother's side, Jina Jāta Śōri of the Vāṇaḍa gachchha, Śānti Śōri of the Saṅgeraka gachchha and Vardhamāna Śōri of the Gālaka people were among the notable śāhīryas who accompanied Vastupāla. He made of a halt at Kāśahrada in Jern Kāśandra and of the institution of a great festival in the temple of Rishabha.

In the sixth canto we have a conventional description of the sun rise.

In the seventh canto is described the ascent of the mountain and the devotional festivities. After paying his respects to Āparāh, Lakṣmī, the proud og deity of the Tirtha, Vastupāla entered the main temple of Śidhāttha. The Saṅgha stayed on the mountain for eight days.

In the eighth the pilgrimage to Devapattana and Mount Girnar is described. From Santrunjaya the Saṅgha started to Devapattana for offering worship to Somanātha. Thence it proceeded to Girnar. A camp was pitched at the foot of the mountain and a festival was held. Then follows the description of the worship of Nemnattha and the festival. Having paid homage to Amālī, the guardian deity of the Jain temples on Mt. Girnar and Śambha and Pradyumna who had obtained salvation here, the Saṅgha descended after a stay of eight days.

(1) જયસિંહાસપ્તમી વિજયારાવલોચનકવિજગજ સાગરમાં.

In the *ninth* is given a poetical description of the six seasons which the minister saw while descending.

In the *tenth* begins the return journey. The Saugha entered Vāmanasthali—the modern Vantah, in all magnificence. When the procession reached near Dholka, not only Tejapāla but Viradhavala came out with citizens to receive him. For a fuller description of the pilgrimage compare the last canto of the Dharmābhyūdaya and the cantos eleven and twelve of the Vasantavilāsa.

In the *eleventh* canto the author describes the temples built and restored by Vastupāla.

In Anahlavāda Pattan:-

- (1) The restoration of the temple of Panchāsara Pārivanātha of Vanarāja.

In Cambay:-

- (2) The erection of a golden staff and knob on the temple of Bhīmeśa.
- (3) The erection of an Uttānpaṭṭa before Bhattāditya and of a golden wreath on his head.
- (4) Excavation of a well in the temple grove called Vahika of Bhattārka.
- (5) The erection of a vestibule before the temple of the Sun-god Bakula.
- (6) The restoration of the Maṇḍapa and of the temple of Vardyanātha.
- (7) The erection of high-walled enclosures for the sale of sour milk to avoid contamination.
- (8) The erection of two Upāsrayas.
- (9) The erection of a drinking hall with round windows on two sides.

In Dholka:-

- (10) The Building of a temple of Ādinātha.
- (11) The erection of two Upāsrayas.
- (12) The restoration of the temple named Rāgaka of Bhattārka.
- (13) The construction of a Vāpi.
- (14) The erection of a Prapā.

On the Śāstrujaya Hill:-

- (15) The erection of an Indramandapa before the temple of Ādinātha.
- (16) The erection of the temples of Neminātha and Stambhana Pārivanātha.
- (17) The erection of a statue of the Goddess of Sarasvatī
- (18) The erection of the statues of his ancestors.
- (19) The setting up of three statues on elephants, his own, that of Tejapāla and that of Viradhavala.
- (20) The erection of sculptures representing four summits of Mt. Gīmar, Avalokana, Ambā, Śimba, and Pradyumna.
- (21) The preparation of a Torana before the temple of Ādinātha.
- (22) The erection of temples of Surjya of Breach and Mahāvira of Sicker.

- (23) The erection of a Pṛsthapaṭṭa of gold and precious stones below the image of Ādinātha
- (24) The raising of a golden Torana
In the vicinity of Pālitānā
- (25) The excavation of a large tank
- (26) The erection of an Upāstaya
- (27) The erection of a Prapā
In the village of Ānkevaliyā
- (28) The digging of a tank
On Mt Gurnar -
- (29) The erection of temples of Stambhana Parśvanātha and Adisvara of Śatruṅṇaya
In Stambhana (Thamna near Umreth) -
- (30) The restoration of the temple of Parśvanatha.
- (31) The erection of two Prapās near the temple of Parśvanātha
At Dabhoi
- (32) The placing of golden capitals on the temple of Vaidyanatha as the old ones were carried off by the king of Malva and also the erection of an image of the Sun god
On Mount Abu -
- (33) The building of a niche of Mallideva (in Samvat 1278) for the religious merits of the spirit of his elder brother Malladeva

For fuller and more complete list of Vastupala's temples and works of piety public utility the reader is referred to Junaharaha's Vastupalacharitra

The date of the composition of the work—The *Sukṛtasankīrtana* was written before Samvat 1287 in which year the inscriptions on Mt Abu are dated and after 1278 the date of building a niche of Mallinātha on Mt Abu mentioned in the present work

Dr Buhler contributed a very valuable and exhaustive paper *Das Sukṛta sankīrtana* in the *Sitzungsberichte* of the Imperial Academy of Sciences of Vienna (Vol CXIX 1887) and an English translation of the German paper was published in the *Indian Antiquary* Vol XXXI (1902) pp 477-495. For a complete and critical study of the career of this one of the greatest minister Gujrat has ever produced one should read the introductions of the Naranārāyaṇānanda Vasantavilāsa and Hamīramadamardana in the Gaekwad's Oriental Series. A photo of the statues Vastupala and his two wives will be found in the edition of the Naranārāyaṇānanda in the same series

कीर्तिकौमुदी-सुकृतसंकीर्तनमहाकाव्ययोर्विशिष्टनामानुक्रमः ।

	पृष्ठ		पृष्ठ
मच्छोद (सरोवर)	की० ६	कादम्बरी (गद्यकाव्य)	की० ३
अजयदेव (अजयपाल चौलुक्यरूप)	सु० १०३	कान्यकुब्ज (जनपद)	सु० १००
अजयपाल (चौलुक्यरूप)	की० ९	कालिका (देवी)	सु० १०२
अणद्विलपाटक (गुर्जरराजधानी)	सु० ९६	कालिदास (कवि)	३४, १३३
अणद्विलपुर (गुर्जरराजधानी)	की० ५	काशि (काशीपुरी)	की० ५
अणद्विलपुरी (गुर्जरपालयत्री)	सु० १३३	कासहद (ग्राम)	सु० ११२
अनुपमा (तेजःपालयत्री)	की० १४	कुङ्कुमेश (कोङ्कुमरूप)	की० ८
अनूप (रूप)	सु० १०३	कुमार (गुर्जरराजपुरोहित, सोमेश्वरदेवपिता)	की० ११
अमिताद (कवि)	की० ४	कुमारदेवी (स्तुपालमाता)	१४, १०६
अम्बुदयसिंह (भट)	की० २५	कुमारपाल (चौलुक्यरूप)	८, १०२, १०४, १०६
अमरपण्डित (कवि) सु० ९९, १०४, १०७, ११०, ११४, ११७, १२१, १२४, १२९, १३३, १३६		कुमारपुत्र (सोमेश्वरदेव)	की० १०
अमरसुरि (मालेन्द्रगर्वाधर)	सु० १०८	कुलसिंह (भट)	की० २५
अम्मा (रैवतशिखर)	सु० १३४	कौटिल्य (जनपद)	सु० १०३
अरिसिंह (कवि) सु० ९९, १०४, १०७, ११०, ११४, ११७, १२१, १२४, १२९, १३३, १३६		कौरवेश्वर (सुबोधन)	की० ५
अर्कपालितक (ग्राम)	सु० १३५	कैमराज (बागोत्तररूप)	सु० ९८
अर्णोराज (क्षपादलक्षरूप)	की० ८	अज्ञात (वीराद्वय)	की० ८
„ (चौलुक्य)	९, १०४	गङ्गा (नदी)	की० ५
अर्जुन (पर्वत)	सु० १३५	गजाक्षय (हस्तिनपुर)	की० ५
अर्जुनाक्षल (पर्वत)	की० ९	गल्लक (गच्छविशेष)	सु० १११
अथलोकना (रैवतशिखर)	सु० १३४	गान्धेय (वीष्मसितामर)	की० ५
अथ्यराज (भन्त्री, स्तुपालपिता)	१३, १४, १५, २३, १०६	गुलकुल (वत्सविशेष)	की० २४
आनन्दसुरि (मालेन्द्रगर्वाधर)	सु० १०८	गुर्जर (गुर्जरदेशवासी)	की० ११, १२
आमरार्मा (गुर्जरराजपुरोहित)	की० ११	„ (जनपद)	सु० १३१
आहद (बागोत्तररूप)	सु० ९९	गुर्जरराजपिपराजधानी (अन्दिलपुर)	की० ११
अन्धमण्डप (स्वायत्तविशेष)	सु० १३४	गुर्जरपुर (अणद्विलपुर)	की० ११, १३
उज्जयिन्त (रैवतक)	३९, १३४, १३५	गुर्जरराज (गुर्जरभट, नीमदेश द्वि०)	की० १८
कच्छ (जनपद)	७, १००	गुर्जरराज्यलक्ष्मी (गुर्जरराज्याधिपति देवी)	की० १०
कपर्दी (यस)	३८, ११८, १३४	गुर्जरेन्द्र (गुर्जरदेशस्थानी)	की० ११
कर्ण (अत्राय)	की० ५	गुर्जरेश्वर (गुर्जरदेशस्थानी)	की० ७
„ (कर्मदेव, चौलुक्यराज)	की० ७	गौदद (जनपद)	की० १९
कर्णदेव (चौलुक्यरूप)	सु० १०१	गौद (गौददेशाभि)	की० ८
		कण्डप (भन्त्री, जामाट)	१३, ३९, १०६, ११७
		कण्डपसाद (भन्त्री, कण्डपपुर)	१३, १०६
		कम्पा (नगरी)	की० ५
		काणक्य (वीरिन्ध)	की० १३, १४, २५
		काचिगदेय (भट)	की० २४

	पृष्ठ		पृष्ठ
सह्यामसिंह (शङ्ख, सिन्धुराज) २४, २५ १०७,		सिन्धुराज (शङ्ख, स्यामसिंह) सु०	१३३
१२४, १२९		सिन्धुराजसूनु (शङ्ख स्यामसिंह) की०	२०, २१
सण्डेरकगच्छ (श्वेताम्बरगच्छविशेष) सु०	१११	सिन्धुराजाम्बज (शङ्ख स्यामसिंह) की०	२३
सत्यपुर (नगर)	सु० १३४	सीता (यन्त्रियोगप्रदनी अश्वराजमाता) की०	१३
सपादलक्ष (जनपद)	सु० १०३	सुमट (कवि)	की० ४
सरयू (नदी)	की० ५	, (सेनानायक)	की० ९
साकेत (नगरीया)	की० ५	सोम (मन्त्री अश्वराजपति)	१३, २५, ९९, १०६ ११०, १३१
सामन्त (भट)	की० २४	सोमनाथ (ज्योतिर्लिंग)	४१, १०० १०२ १२१
सिंह (वृष)	की० २१	सोमसिंह (भट)	की० २५
सिंहन (वृष)	की० १८ १९ २०, २२	सोमेश्वरदेव (गूर्जरराजपुरोहित)	की० ५, १०
सिताम्बर (श्वेताम्बरजनकप्रदाम)	सु० १०८	सौराष्ट्र (जनपद)	की० ८ ४१
सिद्ध (सिद्धराज ज्योतिर्लिंग)	की० ६	स्तम्भतीर्थ (नगर)	१७, १३३, १३६
सिद्धराज (ज्योतिर्लिंग)	की० ८ १३	स्तम्भन (तीर्थ)	सु० १३४ १३५
सिद्धसर (सरोवर)	सु० १०२	हिमालय (पर्वत)	की० ५
सिद्धेश (सिद्धराज ज्योतिर्लिंग)	की० १३	हरिप्रदसूरि (नागेन्द्रगच्छीय)	सु० १०८
सिद्धाधिपति (सिद्धराज ज्योतिर्लिंग)	सु० १०६	हरिहर (कवि)	की० ४
सिद्धेश्वर (स्वयंविशेष)	की० २१	हैमसूरि (कविस्वरसर्वज्ञ सर्वज्ञ- स्वतन्त्र आचार्य)	की० ४
सिन्धुपति (सिन्धुजनपदवृष)	की० ८		

द्वितीय परिशिष्ट ।



श्रीअरिस्तिहविरचितं

सुकृतसंकीर्त्तनमहाकाव्यम् ।



[अष्टाङ्क ९६-१३६]

	शृङ्ग	छा
चापोत्कट (राजराज)	सु० ९६	नरचन्द्र
चामुण्डराज (चौलुक्यवृत्त)	७,१००	नरचन्द्रसूरि } (कवि नागेन्द्रगच्छीय) की० ४,१११
" (चापोत्कटवृत्त)	सु० ९८	नरयमा (धाराधीन) की० ८
चादमान (राजराज)	की० ४	नीलकण्ठ (कवि) की० ४
चुलुक (राजराज)	की० २०	नागेन्द्र (भवेताम्बरगच्छविशेष) सु० ११०
चुलुक्य (राजराज)	१९,२०,१०४	पञ्चाक्षर (निगमन्दिर) सु० ९६,१३३
चुलुक्यभार्या (चौलुक्यवृत्त वीरपत्न्य)	की० २६	पत्तन (अमहिलपुर) २०,१३२
चैय (राजराज)	की० ११	चम्पा (सरोवर) की० ६
चौलुक्य (राजराज)	७,२२,९९	चरमार (राजराज) की० ८
चौलुक्यचन्द्र (वीरपत्न्य)	की० २५	चाङ्गनिसपुर (नगर) सु० १३५
चौलुक्यनृप (वीरपत्न्य)	की० २३	जतापमह (चौलुक्यसेनानायक) की० ११
चौलुक्यवध (राजराज)	की० ९	जघ्मन (विराटिसर) सु० १३४
जगज्जम्पन (वरमराज-विन्द)	७,१००	जमाश (तीर्थविशेष) की० ४१
जाद्वेध (प्रतीहार)	की० ११	जहाङ्गनदेय (कवि उपति) की० ४
जयन्त (भट)	की० २४	जगन्नाथ (वगवित्तोष) १३,१०६
जयसिंह (चौलुक्यवृत्त, विन्दराज)	८,१०८	जकपाटक (नगर) की० २१
" (चतुर्गालवृत्त)	की० १४	जकुल (जकुलेश्वर-सूर्यमन्दिर) सु० १३३
जाङ्गल (जनपद)	की० ८	जर्जर } (राक्षस) ८,१०२
जाङ्गलेश (जाङ्गलवैश्वर्यवति)	९,१०३	जलाल (नग) की० ९
जामदग्न्य (परशुराम)	की० ९	जाण (कवि) की० ३
जिह्वक्षरि (वाष्पगच्छीय)	सु० १११	जारण (सेनानायक) ७,१००
जोयो (नगी)	की० १९	जिह्व (कवि) की० ४
जुरष्क (भातिविशेष)	सु० १०३	जट्टादित्य (सूर्यमन्दिर) सु० १३३
जुरष्काधिपति (जुरष्कजातीयवृत्त)	सु० ९	जारावि (कवि) की० ३
जैन-पाल (मन्त्री चतुर्गालवृत्त)	१४,१०६, १३०,१३४	जोम (चौलुक्यवृत्त, प्रथम) ७,१०१
जिपुरी (नगरी)	की० ५	" (चौलुक्यवृत्त, द्वितीय) ९,१०३
दक्षिण (जनपद)	की० ९	जोमदेय (, ,) सु० १०३
दक्षिणेन्द्र (दक्षिणदेशाधिप)	की० १८	जोमपत्नी (शत्रु) सु० १०४
दर्शक (?)	की० ४	जोमेश्वरेश्वर (शिवमन्दिर) सु० १३३
दर्शनगती (नगरी)	सु० १३५	जुवनपाल (भट) की० २३,२४
दुर्लभराज (चौलुक्यवृत्त)	७,१०१	जुवनसिंह (भट) की० २५
देवपत्तन (नगर)	सु० १२१	मुभट (जापोत्कटवृत्त) सु० ९९
धनपाल (कवि)	की० ३	मुगुकच्छ (मृगपुर) की० १९
धवल (चौलुक्यवृत्त, अण्भोराजसिंह)	९,१०४	मुगुपुर (मृगवृत्त) सु० १३४
धवलकपुर (नगर)	सु० १२९	मोज (धाराधरति) ४,७,१०१
धवलकक (नगर)	सु० १३०,१३४	मयुरी (नगरी) की० ५
धारा (नगरी)	५,८,१०१,१०२	मधूपञ्च (मयुरानगरी) की० ५
धाराधीन (धाराधरति)	की० ९	मरु (जनपद) की० १९
नङ्गलनायक (उपति)	की० ९	मरुभूप (मरुजनपदवृत्त) की० १९

	पृष्ठ		पृष्ठ
मद्भरैव (मन्त्री, वस्तुपालप्रभ)	१४, १०६, १३५	बल्लभराज (चौतुक्वच)	७, १००
महिकार्जुन (द्रव)	की० ९	वसन्त (वस्तुपाल)	सु० ११४, १२८, १३६
अदी (नदी)	की० १९	वसन्तपाल (")	सु० १०७
महेन्द्रसुरि (नागेन्द्रकच्छीय)	सु० १०८	वस्तुपाल (चौतुक्वच-सहायमन्त्री)	ध. ५, १४, १६, १७, २६, २७, ३४, २७, ३८, ३९, ४१, ४२, ९९, १०३, १०४, १०६, १०७, ११०, ११४, ११७, १२१, १२४, १२८, १२९, १३०, १३१, १३३, १३५, १३६
महोदयपति (यदोदयनगररूप)	की० ८		
माघ (कवि)	की० ३, ४		
मानस (सरोवर)	की० ६		
मालव (जनपद)	७, ८, १००, १०१		
मालवेश (मालवद्विपति)	सु० १३५		
मिथिला (नगरी)	की० ५		
मुक्त (धारावीध)	की० ४	सहक (वन)	सु० १३३
मुञ्जालसुत (मन्त्री)	की० ११	वामनरूपणी (स्थलविशेष)	सु० १२९
मूलराज (चौतुक्वच, प्रथम)	७, ११, ९९	वामनरूपणी (स्थलविशेष)	सु० १११
(चौतुक्वच, द्वितीय)	९, १०३	वामनीकि (आदिकवि)	की० ३
यदु (यदुवशीय)	की० १९, २०	विक्रमासिंह (भट)	की० २५
यमुना (नदी)	की० ५	विजय (भट)	की० २५
यशोधर्मा (धारानपति)	सु० १०२	विजयसेन (कवि नागेन्द्रकच्छीयआचार्य)	सु० १०८
यशोधर (कवि, मन्त्री)	की० ४	विदिशा (नगरी)	की० ५
यादवेन्द्र (सिद्धनरूप)	की० १८	विन्ध्याचल (पर्वत)	सु० १०२
यादवेन्द्र (यदुवशीयरूप)	की० २१	विमल (शत्रुप्रवर्ध)	सु० १२०, १३५
योगराज (चापोत्कटनरूप)	सु० ९८	विमलगिरि (")	सु० ११७
रत्नादित्य (चापोत्कट)	सु० ९८	वीर (वीरपत्न)	की० १७, १९, २५
राष्ट्रकूट (राजवंश)	की० ११	वीरधवल (चौतुक्वचवीयपत्न, मन्त्रप्रसादपुत्र)	१०, ११, १२, २३, १०५, १०६, १०७, १३०, १३१, १३३, १३४
रघुलक (पर्वत)	३९, १२२, १२३, १२९, १३५		
लक्ष (कच्छनरूप)	७, १००	वीरनरूप (वीरधवल)	की० २३
लक्ष्मणदेव (द्रव)	की० २१	वीरभूपाल (वीरधवल)	की० २८
लङ्का (नगरी)	की० ५	वीरम (भट)	की० २४
ललितादेवी (वस्तुपालमन्त्री)	की० १४	वैद्यनाथवत्सल (शिवमन्दिर)	सु० १३३
लक्ष्मणप्रसाद (चौतुक्वचवीय)	१०, १८, २०, २५	वैद्यनाथवत्सल (")	सु० १३५
लक्ष्मणप्रसादपुत्र (वीरधवल)	की० २०	वैरिसिंह (नागेन्द्रकच्छीय)	सु० ९८
लक्ष्मणसिंह (कवि अरिमहिषिता)	सु० १३३	शङ्ख (शिन्धुराज, यक्षप्रसिद्ध)	२०, २३, २४, २५, ११०, ११४, १२१, १३६
लाट (जनपद)	की० १९	शत्रुञ्जय (पर्वत)	३८, ११२, ११३, ११७, १२०, १३४, १३५
लाटेश्वर (लाटजनपदरूप)	की० ७		
लावण्यप्रसाद (लक्ष्मणप्रसाद)	९, १०५	शक्रमन्त्रि (जनपद)	की० ८
लावण्यसिंह (लेख पालपुत्र)	की० १४	शान्तिसुरि (नागेन्द्रकच्छीय)	सु० १०८
" (लक्ष्मणप्रसाद)	सु० १२४	" (सन्धेरकच्छीय)	सु० १११
षट्कूप (सरोवर)	की० २३	शम्भु (रैवत-शिखरविशेष)	सु० १३४
धनराज (चापोत्कटनरूप)	सु० ९८, १३३		
धनराजदेव (")	सु० ९६		
धर्ममान (आचार्य, शक्रकच्छीय)	सु० १११		

विषयानुक्रमः ।

१. चापोत्कटान्वयवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ।
 २. चौलुक्कयान्वयवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः ।
 ३. मन्त्रिप्रकाशो नाम तृतीयः सर्गः ।
 ४. धर्मदेशनो नाम चतुर्थः सर्गः ।
 ५. सङ्घप्रस्थानो नाम पञ्चमः सर्गः ।
 ६. सूर्योदयवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः ।
 ७. शत्रुञ्जयदर्शनो नाम सप्तमः सर्गः ।
 ८. नेमिदर्शनो नाम अष्टमः सर्गः ।
 ९. पङ्कतुवर्णनो नाम नवमः सर्गः ।
 १०. पुगप्रवेशो नाम दशमः सर्गः ।
 ११. सकलकीर्तनकीर्तनो नामैकादशः सर्गः ।
-

प्रथमः सर्गः ।

वनराजः

- श्रावेभ्यस्मयमयप्रसन्नप्रतापश्चापोत्तराट् वयमनैरुहरिरेन्द्र ।
 आर्सादसीमचरित परितस्तदनुभालार्पिताङ्गत्रिनयिनो वनराजदेवः ॥ १ ॥
- यत्त्वत्तस्त्रिङ्गितविरोधिशिरोऽधिरकस्रोतस्विर्नभिर्दधिर्विन्द्ये सराग ।
 येनाऽधुनाऽप्यरण्यता भजतस्तदङ्गसम्पर्कनोऽर्क शशिनावुदयशृणेषु ॥ २ ॥
- निर्गम्य कोशबुद्ध्यादसिदन्दङ्ग, श्यामो यथागतमगात् त्वरितं यदीय ।
 एतेषु मास्म त्रिगन्धेय परैस्तीव्र, रक्षेणु वस्त्रविप्रेषु कराङ्गुलीभि ॥ ३ ॥
- खट्वाङ्गसङ्गतकरस्तरवारिलग्नकृत्तारिमुण्डमिषन् समराङ्गणे य ।
 भालापितोपितहुताशनचण्डचशुराभादिभासुरविरोधिविभासुरा ॥ ४ ॥
- तेन कृतान्तसमता रसनासनाभि धारोद्गुरो यदसिरन्नमञ्जुलश्री ।
 अहाय यस्य युधि दर्शनसंजयैव, मिन्दन्नरीनधित किङ्करता कृतान्त ॥ ५ ॥
- स्तव्यप्रकम्पितविलीनविशेषगात्रै, त्विन्नैर्विभङ्गुरवस्फुरदध्रुलेशम् ।
 उमुच्य पौरुषमवाप्य च भीरुभाव, य सेव्यते रिपुभिरुत्पुलकै प्रसन्न ॥ ६ ॥
- आकर्ण्य तूर्णमुपकर्णयितुं च यस्य, कीर्तिं मुहुर्मुज्जगमीरुगणेन गीताम् ।
 चक्षु श्रवा रसवशेन दृश्या निमेषोन्मेषक्रियामनिमिषोऽपि चरार शेष ॥ ७ ॥
- यत्कीकृते धनुषि मौक्तिकताडपत्रज्योत्स्नान्धुमारमृति पञ्चलता दधाने ।
 यस्याऽऽजन विकचवारिजकम्पमन्तर्मेजे विहाय परराजकरान् जयश्री ॥ ८ ॥
- श्रीमत् पुर सुवि पुरन्दरपत्तनाभ, तेनाऽऽद्वेषेऽण्डिलपाटक्रान्तमेवम् ।
 लीला मुखे स्मरतपस्विवनेऽजनीन्दुषण्णप्रियोस्सुहृदोरपि यत्र योग ॥ ९ ॥
- भक्त्यर्पसद्वनजनादमुतमारतो मूर्मा भ्रष्टतादिति शृश वनराजदेवः ।
 पञ्चासराह्नवपार्श्वजिनेशवेश्मन्याजादिह क्षितिधरं नवमातृताम् ॥ १० ॥

- यस्मिन् सदैव निरुक्तानि निरुक्तनाम-आग्रमगिषुतिभैरितमां तमांसि ।
 आरामकालिमिषेण बहि-स्थितानि, तानि प्रसर्पद्वरै रटन्ति ॥ ११
- जाड्यं जनेषु रजनीजनितं विमिन्द-भृदौपयनपि दिवाकरकान्तचुट्टीः ।
 जालान्तरागतकरस्तरगिर्दिग्धाऽपि, यस्मिन्मृदनुगृहं ननु स्पकारः ॥ १२
- यस्मिन् विलाससदनेषु विलासवत्यः, पलुः करेऽपद्मनवपरोत्तरीकम् ।
 रत्नप्रदीपनिकलीकृतफूलस्त-भैत्रे निमील्य सुरातो दपतेऽवधारम् ॥ १३
- पर्वक्षणे न खलु निश्चिनुते दिनेषु, मूर्धं सुवर्णमुरसप्रकिरीटकुम्भैः ।
 यत्रेन्नाल-यशिरःपुरयोपिदाल्यै-र्नैव क्षिपोपतिमपि क्षणदामु राहुः ॥ १४
- सङ्कोचिताम्बुजकुलोऽपि हतार्ककान्त-श्रीडोऽपि पङ्क्तिस्थाङ्गपुटुम्बकोऽपि ।
 प्रगतः प्रयाति विधुलम्बल एव यत्र, सौयावनिष्कलितयामनि धामनाये ॥ १५
- रुद्धेऽपि यत्र मरुदम्बनि वारिवाहै-लोकैः सदा नियमभानुविलोकभोजी ।
 पूर्वाग्रिमोलिप्तमेव गृहाधिरोह-दकै विलोक्य छानि व्यवसायवीथ्याम् ॥ १६
- यत्र प्रतिक्षणविद्वद्वरसातिरेक-निष्कम्पदम्पतिकदम्बकैतरेन ।
 रत्या सहाजनि निष्काममनेकमूर्त्ति-रेकाङ्गमोहनरसैः स्पृतिभूरतः ॥ १७
- यत्रोच्चसौम्यवि सम्प्रकारात्पिण्डविग्रिमिणां गगनसिन्धुजलद्विषाणाम् ।
 कुम्भान् विमृष्यति मीरुगणः स्वभास सिन्दूरपुलिभिरसम्पकरोद्गताभिः ॥ १८
- यस्मिन्नुपयुपरि गन्धुमग्न्यन्तो, दूरेण सूतुरगाः परितः स्फुरन्तः ।
 उच्चैर्विशालमणिसालगतत्वन्मिव स्पृष्टाऽदृष्टौर्दिनमिति वसिमाणयन्ति ॥ १९
- चेद् योग्यताऽस्ति परिष्ठां पिव मे त्वमेहि, विन्ध्योऽप्युदबन्तु मयाऽपि हतोऽर्कमार्गः ।
 यत्रेति केतुपटङ्किङ्किणिकारवैः खे, वप्रो वदत्युदधिपामिन्प्रप्यगस्तिम् ॥ २०
- मन्त्राकिनौ विर्यनि तुङ्गविशालसाल-रोधद्विधाप्रसमरा परितः स्फुरन्तौ ।
 शङ्के सुराधिपतिनिग्रहविग्रहाय, यत्रान्तरालपरिखाग्रियमादधाति ॥ २१
- ह्रस्वानि भूमिधरभामुरसाटमिति-भागेषु सारविवगण्यमितोऽपि यत्र ।
 न्योमापमाज्जगजप्रतिमानसीम-निर्मलदन्तहलिलम्बनिभानि गान्ति ॥ २२
- यदन्वेस्यपरिगार्जनिकारजोगि-र्गोचरैरुपकवावनिद्रोषभीत्या ।
 अञ्जलिहो वगति य. पटुस्तनयैर्, कूटः क्रिजजनि जनेषु सुललसानु. ॥ २३
- यस्मिन् जनाय मगिदेवदिमाविमिज-स्वान्तोऽक्रेऽपि कथयन्ति विमानमास्म् ।
 हीनासरोवरसरोरहिणीपिकाश-सौरम्यलुम्बदलिनीकलङ्कजितानि ॥ २४

सत्यश्रमेण वृत्तकानि गृहेषु हत्वा, हन्तव्यरूपकृतानि विग्रीर्णदन्त ।
 सत्या यपि प्रतिमयेन न तानि हन्ति, सम्प्राप्तधर्म इव यत्र बिडालकोटसि ॥ २५
 यदानिदानमुदितेन वनीपकेन, लभ्य प्रभूतमुक्तैः कथमप्यवाप्त ।
 छाया निभूषण पयोर्ध्वण्डेतुरेव, देवद्वस्त्रं पुराणविगबोधसि भजे ॥ २६

योगराजः

तन्मयवनीनिभुरभूद् वनराजराज-य-राजीवभानुरारिचर्मनीहृत्सानु ।
 श्रीयोगराज इति यस्य राज्ञ पाणि पद्मेऽन्विपशुभगा भ्रमरीव भूमि ॥ २७
 यत्प्राप्तियेनुक्तके नवनगवलि पत्रोफो मुखमुपेयुषि ममज्ज्ञे ।
 सयस्करकरसनैरभिरारण्य-माश्लिष्यते रम जगती नवमोहनेन ॥ २८

रत्नादित्यः

भार भुवो भुजभरेण उभार रत्ना-दित्यस्तत शिनिपमण्डलमौलिरवम् ।
 चण्डासिदण्डदन्तितोरतरावनीम् इदालिविस्फुरितमौक्तिकरूपकीर्तिं ॥ २९
 भावेशपत्रमिव यत्तरवारिदण्ड, धीमयैव दण्डधरचण्डधराधिपस्य ।
 चक्रे प्रयागरूपमरानिरेन्द्रवर्ग, स्वर्गं प्रति त्वरितपद्भुनगीतिभावात् ॥ ३०

वैरिसिंहः

दुर्धारवारणफटो रुढवैरिसिंह, श्रीवैरिसिंह इति भूदयितस्तनोऽभूत् ।
 य-ऊर्ध्वतर्कातिविगदेषु अगस्तु पाणि-स्पर्शेन चन्द्रमसगच्छन्ति तारा ॥ ३१
 प्रत्यर्धिपार्थिवमग समगङ्गणेषु अश्वानिभीषतरणिधुतिभास्तुधै ।
 तत्तो महोभिरिव यस्य श्वागण्डि घाण्डगृह-यनिकान्यसनी बभूव ॥ ३२

क्षेमराजः

श्रीक्षेमराजवृषतिर्वसुधा सुधाश्रु-व्येत्नासप्तसु-बल्यशः प्रशशास तस्मात् ।
 मस्यासिबद्धिरिमगुम्भविमद्वल्गु-मुक्तकञ्चैः सुसुमिता कञ्चिता जयन ॥ ३३
 धूर्मीमवयवदसिबद्धिरितवर्तन, कोपान्त्र किमपि बरय दृष्टि प्रदत्त ।
 प्रत्यर्धिपार्थिवचमूमागीतमूह-बाष्पाभुभिर्दृग्मय अमयाम्बुधे ॥ ३४

चामुण्डराजः

निश्रपशु गुनुकक दुःखितामिमुग्ध-श्यामुण्डराज इति राजयति रम नगमात् ।
 पूर प्रसर्पति यदीयव-स्तन्या, दृगदमज्जुदुष मन् ताग्रीधे ॥ ३५
 निर्दयं पयोमयपयोपिञ्जल पनात, धी-पाणिनो नानि यस्य यन् प्रकाशम् ।
 अयापिनापनति पारमिति प्रसर्पन्, लोक-स्वर्ग-लोक-गौरे स्वर्गितो मुगति ॥ ३६

आहटः

भासीदथ प्रनलज्ज्वलय गलाङ्ग-श्रीराहुराहट इति शितिजीवितेगः ।
 निर्योडितोऽमुतगदीमङ्गलकलापै-मङ्गः शशी हिन् तदीयमग सपुदे ॥ ३७
 यत्कीर्तिमेव धवलमवलोक्य लोके, लोकोऽयमन्वहमन्यत पूर्णमासीम् ।
 एतां पुन सततमा मनि चन्दचारं, पर्यन्तं कुहूतिविबिर्कमनापदर्कः ॥ ३८

भूमटः

श्रीभूमटो विपुमटोच्चयभेदरक्त-प्रोलासपल्लवित्वत्तत्तस्ततोऽभूत् ।
 दिक्कुन्मिनुभमिपदिगन्तिताकुचाप्र-क्रांटाङ्गिगृह्यलयगा जगन्मिनुजङ्गः ॥ ३९
 दानच्छटासुरभिजीतलदिकेण-लीलाचलप्रवगतान्मरुतरक्षैः ।
 मन्कीर्तिमन्वहमिलाप्रविडासरिना, दिव्योपितो जलपिसीमनि दीनवन्ति ॥ ४०
 हरहसितसितानि तानि तन्व-मननुवपानि जगन्वीर्यशक्तिं ।
 चिरमयमवधि शशास भास्व-पुस्तस्वारिनिवारितारिबर्गः ॥ ४१

क्रिच-

दीर्घाधुर्भवतादिति द्विजवैर्मलासुरियन्वहं,
 बन्दीन्द्रैरजामरेति च पुल्लम्भिस्त्वभाशास्यसे ।
 श्रीमन्नीचर वस्तुपाल ! निमपि ममस्तु निस्तारिणी,
 कर्तित्वैर्यति यापदेव दिवि ते तावद् भगान् नन्दताव ॥ १
 उद्भान्तै सहसा पिनाकचले क्षीरार्णोद्भृता-ज्ज्वालै रगदुपगप्रमनप्रारम्भसंग्मिने ।
 उधे रावगतासमासुखैरेमिर्मोभिर्नभौ, श्रीमोमाचयजोऽयमर्गुलजशोगीररस्पदैया ॥ २
 जेने किलेनं जगदु दिव्येऽपि, श्रीवन्मुपालः सचिपस्तु भक्तः ।
 गङ्गा गृहीते शुचिकर्तित्वीयै-ससिलपद् मोऽङ्गमूर्तिर्षीमाम् ॥ ३
 सदा प्रसादोन्मुक्तस्तुपाल-दत्तातपोपूषसाधुसारम् ।
 जगुं प्रपन्थ प्रतिवादिदन्ति सिंहोऽरिमिदो रचयाज्जगत् ॥ ४
 प्रतिसर्गप्रवन्धेऽस्मि-परिसिंहजिनिर्भने । इनाग्यरुज चबाधि, कान्वाव्यमरपण्डितः ॥ ५

॥ इति श्रीसुवृत्तसङ्कीर्तननाम्नि महाकाव्ये चापोत्कटान्वयघर्षणो
 नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

मूलराजः

पदेऽथ तरयामनि भागिनेय , चोत्पन्नयन्गन्धर्वचन्द्रः ।
 श्रीमूलराजः प्रमिगुग्गज सगुन्निर्भूतवन्द्यम् ॥ १

तथाऽस्य तेजोभिररातिराति-रवाप तापव्यसनं वनान्ते ।	
यथा हिमान्म कणसद्गमज्ञे, दवस्फुलिङ्गेषु लग्नु मेने ॥	२
सुन्यक्तमकि प्रतिसोमवार, य सोमनाथं प्रणिपय वीर ।	
तद्रालनेमानलचन्द्रमभि र्ममार तेजस्य यथाश्च पुष्टम् ॥	३
सम्पूर्णगतित्रयसम्भवा य, अम्भुत्रयद्विवृत्तलेन ।	
क्रीतिखिपा मूर्त्तिमनी पताका-हस्तैर्नटन्तार्थेष्टयाञ्चकार ॥	४
विजित्य य मयनि कन्यकुब्ज-महीमुखो वारपदण्डनाथम् ।	
जहार हन्तिप्रकर करप्र-म्कारसदीपितपौरपाणिम् ॥	५
न भूयत केऽपि यदप्रमाणे, भेजुर्गुरुत्व किञ्च साऽपि मग्ना ।	
अदृश्यता वचरवातिवति निचौ दधौ कच्छपल्लसुतेना ॥	६
स्वर्गं जिगोषुधरणाप्रलम्भ-मार्ति विधूय प्रबलप्रताप ।	
महो महीमानसहिष्णुरग्यद, निभेद मानोरपि मण्डल य ॥	७

चामुण्डराजः

स्मात्सुण्डमासुण्डलवण्डराति-श्यामुण्डराजः प्रवाशारा तत्तात् ।	
द्विषा मुख कण्डुमत्सनिवाप्त, वृत्ता तत्राहुर्दक्षिर्विवेश ॥	८
वज्रतमसैर्बनपादपाना, यस्यातिनारीभिरकारि सेक ।	
सान्द्रच्छदच्छायतया महान्त-स्ताम्बोऽपि ते प्रपुम्पुर्वते स्म ॥	९

वट्टमराजः

तस्माद् मुगजेन्द्रमुखो वभूव, भूयद्धमो वट्टमराजदेवः ।	
याकीर्त्तिदासांश्रुतकौमुदीन्दु-मुखांमुपेचौ विशदोऽयमद ॥	१०
अटन्नद्वया यदरातिवैगो, दरातिरेकोऽन्नतराजलेक ।	
रीगोऽप्यतिक्रम्य पराक्रमेण, हरिम् दर्शन्दिवाशरार ॥	११
अटालमौलिर्धृग्वर्गमासा, नि त्व कण्ठादी वनमध्यवासी ।	
गन्यायदुम हृदि ये तपस्वी, सदाऽपि रूपव्यमरानिमूष ॥	१२
वचिन महोऽस्य भविष्यतनि, माले र्निषि भान्त्रमृनिमर्तु ।	
आरुण्य बूडामगिनिम्बदम्भा-न्दुलोप रोगो यदसिर्गदच ॥	१३
ऊर्ध्वरेषाकातिचमसमूह प्रच्छाद्रनोच्छृङ्खलसैर्यरु ।	
यो धैर्यपुयो जगति द्वितीया, दधौ जगत्तन्म ह दक्षिण्याम् ॥	१४

दुर्लभराजः

अभूदथ न्यायपरः परलो-मुदुर्लभो दुर्लभराजराजः ।	
यः कृष्णसाये कथितः कर्वादै-र्विचिन्त्य गोपीचरितं लल्लजे ॥	१५
तमीदिने न्यक्तयतो वितेनु-र्यदैरिणः प्राप्य मंहीधन्त्रम् ।	
तदौपरीन्द्रप्रितमाप्रदोपात्, तमिलमिश्रं पुनराप्रभावात् ॥	१६

भीमराजः

अथावनीशोऽननि शौर्यसीमा, भीमाभिधो येन युवि द्विपन्त ।	
श्रीभीम । रक्षेति हं स्मरन्तः, स्वध्यानबुद्ध्या मुक्तिर्न मुक्ताः ॥	१७
विप्रस्यतो मालवमभिर्भु-र्भेष्टेऽलुके गुमश्रुतनपस्य ।	
यत्सैन्यधूर्तभिरहयवक्त्रा-भ्योक्तस्य भोजस्य हृदा न दीर्घम् ॥	१८
सर्वत्र सञ्चारिषु यक्षरेषु, चरन्त्येऽरिनेत्रवर्गः ।	
दरेण नदर्थैल्लुपुक्रन्दोऽपि, गुणाय कार्यं गणयाम्बभूवे ॥	१९

कर्णदेवः

श्रीकर्णदेवोऽथ वृषाखिलोक-विलोऽरुनीयधुनिरागिरासीत् ।	
ये क्षीय नारीहृदयैरुपासो-धिकं द्विधाऽभून्मदनोऽप्यनन्तः ॥	२०
पूजासु पाणिष्ठितपुष्पमाल-मालोकयन् यं पुरतः पुरारिः ।	
क्रुद्धोऽपि पुष्पायुधबुद्ध्या, भेजे अगर्नीहसितः प्रसत्तिम् ॥	२१
सम्पालयन्तो यदरिम् दरीषु, स्फुटं कुतुम्बिबगता गिरिन्धराः ।	
अद्यापि दीर्घीषधिदीप्तता, क्षणां सदाङ्गाः क्षपयन्ति शक् ॥	२२
जित्वा बलेर्माँलवगूमिपाल-मानीतवान् यः फिल नीट्रमष्टम् ।	
तन्मूर्ध्नि सिन्धुप्रथिताम्यसत्ये, प्रैर्पद् यशः स्वं मुवननयेऽपि ॥	२३

जयसिंहदेवः

बभार भूभारमथो जयश्री निरुतनं श्रीजयसिंहदेवः ।	
माले रराज प्रतिरात्रकस्य, रात्र्यजनिशानिद्रो यदङ्कः ॥	२४
यत्र शक्तिं रक्षति काङ्क्षन्ति रम, धारा न पागधरपोरणीनाम् ।	
न वैरिद्वारिनीकदम्बै-र्नदीर्मदमात्क एव श्लोकः ॥	२५
उत्तमदानप्रसरस्य यस्य, स्रस्तयशोऽुपशयोधिदम्बे ।	
कल्पदु-चिन्तामणि-कामधेनु-यगोर्भिरास्तापत भीष्मिदम् ॥	२६

सखादिमुत्तमपि ये भुजेनान्वहं वहन्तः क्षितिषा न स्निग्धाः ।	
दमालेनैर्मूर्ध्नि धैर्यैः क तेपां, खेदोऽस्तु यद्वारि सवारिलेखैः । ॥	२७
मुग्धेन यस्यासिलता प्रताप-कीर्त्ता प्रमूढाप्रमयन् कृतार्था ।	
उच्चै रवीन्दुदिककन्दुकश्री-शिल्पे वज्रन्दोलिनि विश्वतन्पे ॥	२८
धृता चिरं या हृदये निरस्ता, सा कालिका यज्जनितप्रसत्त्या ।	
किमहिज्जीरकिणल्लेन, स्थातुं पपात द्विष्तां पदेषु ॥	२९
यस्य द्विषां कण्टककूटफोष्टि-भूतानि कान्तारजुषां तनूषु ।	
नभ्यानि नित्यं घृग्मपुत्राप-जवाङ्गनासङ्गनत्वाङ्गचोमाश्च ॥	३०
इष्टैः स्पृतैरप्यपरैः प्रकृष्टै-ररक्षिता यस्य युधि क्षतेभ्यः ।	
प्रस्ताः श्वसन्तो रिपवः समस्ता, व्यस्तारयन् नास्तिकदृष्टिसृष्टिम् ॥	३१
अपि द्विषः प्रागाकृतप्रहारा-नभिन्दतामाग्यचमूभटाणाश्च ।	
स्पर्शेन पतानपि यस्तुराङ्गान्, गङ्गाभक्ति क्षालयति स्म कीर्यै ॥	३२
यः सञ्चारन् चर्चुरखेचरस्य, लब्ध्वापि रूढो रचयाञ्चकार ।	
मुखश्रिया सेन्दु दिवाऽपि देह-घोतेन दोषाऽपि नभः सभातु ॥	३३
बवीमकारमृष्टमाय्य धारा-पतिर्यशोवर्मवृषः सिपेरे ।	
कृपैः सदा वाप्यपयोभिरुष्य-श्वासैश्च कालवयमेककालम् ॥	३४
यत्कारितं सिद्धसरः सरस्वत्-भाताऽपि पातुं घटभूराक्तः ।	
न प्राप्यगोमज्जमवादुपैति, षष्ठैश्च विन्ध्याचलद्विरक्षा ॥	३५
धीसोमनायोऽपि कृपैकपात्रं, ये मानुभक्त्यैरुद्युचि विलोक्त्य ।	
दक्षकतुनसदिग्धिदि-पापोर्मिनिर्मुक्तममन्यत स्वम् ॥	३६
विधं जगद् येन विविधं कर्तव्यं-स्तम्भस्तथा कोऽपि महानकारि ।	
मया हिमादेरिव यस्य मूर्ध्नि, नभोऽनद्री केतुपदं प्रपदे ॥	३७
लीलापट्टनादिजनायकस्य, यदा कुमारस्य कथाप्रधाभिः ।	
विलजितो य सततं द्विजेन्द्र-रथान्प्रदानन्यसर्गा नैतद्भः ॥	३८

कुमारपालदेवः

तत्त्वययाहर्गमनं मुषाच्यैद् वृषात्रियोऽरिसवधिनेऽस्मिन् ।	
कुमारपालः क्रिड गूमेपाल, श्रियं मुमोष द्विष्तां सरोप ॥	३९
हठादस्तरं श्रियनन्विनीनां, राजान्मरुते सति पादनाये ।	
यतो मर्त्यैः प्रकृष्टै-र्वकापैर्दमर्तुं कर्मास्मनुक्तिधन्यः ॥	४०

मृगोः सुतेनेव जिन्स्य धर्म-मुल्लास्य येन स्मितगार्गेणेन ।	
क्षतक्षमाप्लवर्गमनैव, हंसैरिवाशोभि जगद् यशोभिः ॥	४१
सितांशुना कीर्त्तिनिजितेन, -योस्मात्तस्मिँकनिकीहतेव ।	
न्यक्षेपि येनानुपुं विहार-च्छटेन छत्रैरवदधेत् ॥	४२
मुभि स्वयं यः किल जात्रलेखं, बली विजिग्ये हिमु चित्रमग्नः ।	
अनूपभूपो बगिनाऽपि यस्य, यतो जितः कीङ्कणचक्रवर्त्तः ॥	४३

अनूपपालदेवः

अथोक्षमाऽजयदेवनामा, रसज्ञ दक्ष क्षितिपक्षतोजा ।	
न केऽपि फारातुहरेऽप्यख्य-देवोऽपि नो यस्य यमुर्दिपस्तः ॥	४४
सपादलक्षप्रमुणा प्रदत्ता, रौन्मी बभौ मण्डरिका समायाम् ।	
तेषामगतो मेरुरिव स्थिरत्व-जितो मृगं यस्य कृगप्रतापः ॥	४५

पालमूलराजः

तद्वज्रो दिग्वान्तस्तस्या-विश्रान्तकीर्त्तिं किल मूलराजः ।	
तुरट्कृद्भीष्मि दिष्टुर्नयथी-स्ताफलाग्नीम लसनगृह्णात् ॥	४६
यस्मिन् सदोषे शिरसि प्रतीम्नी-महामृति स्फारयन्वाचुगवौ ।	
अल्ल समस्तारिबध शगाह-प्रतापचट्टद्युतिमण्डलाभ्याम् ॥	४७

भीमदेवः

श्रीभीमदेवोऽस्ति निर्गलोप-भुजार्गग्रस्तसमन्तानु ।	
पिबत् फेरं मूलनय पयोधि-बेलाभिःश्रीभिरुमस्य वपुः ॥	४८
आजग्य सप्त वृसदा मदक-क्षयप्रदानात् क्षयक्षेप गा गात् ।	
इति धरन् यः कनकानि दातु-मुत्प्लयामास न देवदौग्यम् ॥	४९
यशान्मथायि सदानुभूत-मेराधिभिर्मानिषु रौचरीणाम् ।	
विद्यासहस्रादिषु मेरुपाद-धियाऽऽगमना स्वर्गहोमकण्ठे ॥	५०
सत्तनविनयदानदीपनि रोमरुन्मी तितमिनरुचिर्छनिर्भीमिभूमीभुवद् ।	
वनरुचिस्तभीमगड्यो मण्डउगौ धिरमुपचिनविनाचात्तचित्तान्तगेऽभूत् ॥	५१

क्रिय—

सर्पेणु त्रयसि-मण्डप ! हिमु पृथगेवं, मन्त्रा सुगवर्त्तिगमु विसम्प्राप्तम् ।
भूमि विभूषण कट्यसि न यानो यः, श्रीवम्पुपात्रमचिनः सन्तानानु ॥ १

- श्रीवस्तुपालसचिवस्तुतिनि यस्मान्, पुस्ततथाऽयजदक्रियन्ता विरक्ता ।
मन्दैव दैववचसाऽपि यथा प्रयाति, न प्रातिवेस्मिन्ननिकेतमुखेऽपि तेषाम् ॥ २
- श्रीवस्तुपालाभिधमन्त्रिर्भू भूस्वद्वेष्टेव तमास्नीला ।
अभ्युल्लसन्ती जल्लाशिरीषि, रिपुप्रतापानलग्नान्तयेऽभूत् ॥ ३
- एनं प्रबध्मयमुदुरवादिदृन्द-यक्त्रागबिन्दरप्रनीसगोऽरिसिंहः ।
श्रीवस्तुपालचरितामृतांसिन्धुर्वाणि सवावदूकमुचित रचयाबकार ॥ ४
- प्रतिसर्गं प्रक्वेऽस्मिन्नरिसिंहविनिर्जिते । इमान्यवृत्त चरारि काव्यान्यमरपण्डितः ॥ ५
- ॥ इति सुकृन्तसंकीर्त्तननाम्नि महाकाव्ये चौलुकयान्वयवर्णने
नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥



धीरधवलशर्षणम्

- अथादशि निगाशे, कृशाशेषनिभूतिना । स्वने कदापि भूषेन, कोऽपि श्रीमासुर सुर ॥ १
- घान्या धनुं न गक्रयोऽय मिषाङ्गिप्रतन्मीधुर । बासुके फणवद् विभ-भलरत्नजुपोऽङ्गुली ॥ २
- हारान्तप्रभरागस्य, प्रभारागमिवाद्भुतम् । अथ परिदधद् बास, कान्तादक्रोगशोषरूक् ॥ ३
- कराप्ररोपगार्तितै-रसमानै समानताम् । लज्जितानूर्मिरास्नै-र्नसान् दपदधोलुगान् ॥ ४
- सेवकेषु हृद्रेपिजये(य) दातुमियाऽऽवहन् । मुरचापवध दोम्बार्, ग्लक्रङ्गणक्रातिजम् ॥ ५
- प्रभ्रल्लमगितेसुर प्रभाभूच्छत्रादयम् । भुजोष्पाचिप्सुत्तालम्बालाजालमुदधयन् ॥ ६
- लावण्यामृतपूर्णैर्य-रथन्दिषि दुकदम्बरत् । कृष्णनुरसि व्यक्त, हृत्प्रमुक्ताकल्पधरम् ॥ ७
- हृदतिनं प्रसादस्य, प्रसादस्याद्भुतधियाम् । वैजयन्तीमिवानिभ-दास्ये शुभा ग्विभतपुत्तिम् ॥ ८
- फणोलपोरिवामाती, कान्तीरावर्षे विण्डिता । दधानं कर्णयो स्वर्णं शर्णिङ्गुलान्छरात् ॥ ९
- पणितं स्फुरितभ्योति-र्नैटापटलपेशलम् । मौडौ नीलमणिं विभ्रत्, केजवन्त्यादिक्लन्दवत् ॥ १०
- विह्रबिजुरज्योति-र्नैलक्रारोर्मिक्रीमला । दधदम्भिदुमान्पान्त भ्रन्तधममधोर्णी ॥ ११
- अथ पृष्ठीपतिं श्रिणि-लताक्रुदमिवाऽऽजयन् । वचनामृतरीपाभि-रैवोऽसावि यसिञ्चत ॥ १२
- राश कुमरपानो ऽहं दर्ममत्सर्गवैमव । प्राप भिनामट्टकेट, स्नेह दुष्टे दधन् त्वयि ॥ १३
- सदर्पमर्षमिष्यामि, तवाऽहं गायवाहधम् । वस ! त्रियोस्पसे तेन, पवनेनेव पावक ॥ १४
- जुलुक्पकुलक्रान्तर-गत्र श्रीधरणाङ्गन । त्रिपुसर्पमुरगोऽङ्ग-दर्णोरानमहसुख ॥ १५
- यद्भयप्रमयत्वेद-मय परिचयैरिव । रात्र्यर्धान्त्रियो हृता, माण्डेषु प्रतिभूताम् ॥ १६
- युधि व्यनासि यस्यासि-नैवधीनाटिकानट । पाग्निपाचैरुवत् पार्थिवार्तिना समवर्तिना ॥ १७
- मयाऽहो विरूषकीन-मनसा घनसाहस । अक्रानि कागं श्रीग, भीमपट्टीधुरप्रभु ॥ १८

दुष्टमात्यनिषिद्धस्य, येनाकल्पि बलीयसा । राज्यं ते मन्त्रसादाना-मन्यनीकारणम् ॥	१९
दुतस्तस्याऽस्ति लावण्य-प्रसादो युधि यदभुजः । अस्ति जिह्वामिवाकृष्य, त्रिप्रासाय सर्पति ॥	२०
मुद्रमार्गेण यस्याऽसिः, प्रतापप्रसरोष्णलः । अतीवारियशोवारि, पार्थ पाथे न निर्वदो ॥	२१
प्रतापतापिता यस्य, विमन्यासिच्छे द्विपः । गीताः शीतादिवापेदुः, सयश्चण्डांशुमण्डलम् ॥	२२
सर्वेश्वरमसुं कुर्वन्भूर्वाभण्डलमण्डनम् । गन्धिप्राप्तिं श्रियो मर्चा, सुसाम्पोधिचतुर्भुजः ॥	२३
अस्याऽस्ति च सुनो वीर-धवलः प्रथमाय यः । मार्गवत्स पुनः क्षत्र-संयसन्गां समीहते ॥	२४
भुवमारोपितां यस्य, युधि वीर्याधिकश्रियम् । जुषि षष्ट दिवां चापैः, सज्जितैरपि लज्जितैः ॥	२५
यं विलोक्यतुलं विभ्वे, बानेन च बलेन च । पश्यत्युपेन्द्रमिन्द्रोऽपि, श्वभोऽयितप्रलिभमात् ॥	२६
रिपुभूमिशिरोरत्नी-भूतप्रमनस्तत्पि । दत्त्वाऽस्यै दोषते यौव-राज्यं राज्यं चिरं पुरु ॥	२७
किञ्च त्वःसीम्नि येनाह-मनाहतगतिः कृतः । स कश्चित् फलो जैनं, धर्मं मज्जन्तमुद्धर ॥	२८
इति श्रुत्वा नृपः स्मिन्वा, लज्जस्तपादपथयो । प्रहृष्टुमिव पाणिन्यां, पथयासामिव श्रियम् ॥	२९
प्रसादसादरस्तस्य, मूर्ध्नि देवोऽप्यधत्त करम् । कमलं कमलगेह-मिव स्नेहवशंवदः ॥	३०
प्रातस्तुर्यस्वने सूर्योदयशंसिनि भुमुजः । निद्रा नेत्राभ्यमुद्राह-दय रात्रिनिवाचत् ॥	३१
अथ विस्मितः सदा, महीपो दीपदीधितिः । साखाद् देवः किलस्तीति, मद्भु पर्यङ्कमन्यज् ॥	३२
अथानुगुणितस्मन्-प्रमविष्णुप्रभां समाम् । अभजद् भूमुब्रह्मोऽयं कृतप्राभानिक्रियः ॥	३३
ततः क्षितिपतेस्तस्य, प्रेतापेनेव निर्जितः । आरुह्य प्रातरात्मानं, भानुर्भूजमदीदृशत् ॥	३४
स्फुरन्तः स्वप्रतापान्नि-स्फुरिष्ठा इव संसदि । मण्डलेशा ब्यलोक्यन्त, सेवावन्तः क्षितिक्षितैः ॥	३५
राजा द्रव्यां सुधाकुण्ड-सदृश्यामभ्यविज्जत । देवादिष्टौ वित्तमुतो, सर्वेश्वरपदे वृद्धा ॥	३६
अमापिष्ट सभाणिष्ट-समक्षमथ पार्थिवः । प्रसादसान्द्रलावण्य-प्रसादाय मुदा वचः ॥	३७
अस्मिन् कुलोऽस्मि राज्ये त्व-पिया विरासितदिपा ।	
विन्यायस्तीमिमां भूति-सुरभायवत् तद् भवान् ॥	३८
गृहाण विप्रहोदम-सर्वेश्वरपदं मय । सुखमोऽस्तु मे वीर-धवलो फलो गुणैः ॥	३९
प्रार्थितो प्रार्थनीयेऽर्थे, प्रार्थनीयेन गृह्णता । देवादेगः प्रमार्णं नौ, तावूचतुरिदं मुदा ॥	४०
पाणी संपुट्य रुन्धानो, लोलां भूर्जमिव श्रियम् । पुनर्नृजिज्ञपद् वीर-धवलो धर्माधिक्यम् ॥	४१
न मे स्वामिन्मालोऽस्ति, यं विना विक्रमी हरिः ।	
अन्दे शब्दोद्धरे कुम्भि-भ्रान्त्योरुदय पतयथ ॥	४२
ददाः शत्रे च दाक्षे च, धने च प्रधने च यः । तममार्गं भ्रमाम्यन्त-गुणप्रगुणमर्थम् ॥	४३

१ क-ग प्रभावेन निर्निर्जितः ॥ २ कपुस्तके-क्षितिपताः । ३-गपुस्तके-क्षितिपताः ॥ ३
कपुस्तके-मुपाशुद्धम् ॥
मु- १४

इति लक्ष्मीलतोऽस-सुषया तद्विरा चिरम् । प्रीत किञ्चिद् विचिन्त्यात्-जगत् जगतीपति ॥ ४४

वस्तुपालवंशवर्णनम्

पुरा प्राग्वद्यज्ञात् प्राप्ताकीर्तिश्चावति । रायेऽस्मिन् महसा, कण्ड्यण्डपः सचिवोऽभवत् ॥ ४५

क्षारोदसोदरो यस्य, यशोशशिर्निगाकरम् । भ्रातृन्योऽयमिति स्वर्गि-मुक्तिमीनमोपयत् ॥ ४६

तद्भूक्षण्डमसादाख्यो, दोक्षदाक्षिण्यभूरमृत । गृह्णन्ति यद्गुणान् दक्षा, लक्ष्यते न च तेषु ते ॥ ४७

दास कैलासमूमीष्ट, मुजिष्यो मुजगेधर । किङ्कर शङ्करोत्तंस राक्षी ययशसाममृत ॥ ४८

कीर्तिरुल्लोहितव्योमा, सोमाएस्तमूलोऽग्रनि ।

न्यतिष्ठन्नर्धिनो नार्था, यस्मिन् यच्छनि वान्छितम् ॥ ४९

अस्याऽऽसां कोऽपि न स्वामी, सिद्धाधिपतिना विना ।

निना निनाधिपेनामृत, यस्य देवोऽपि कोऽपि नो ॥ ५०

तदम् कार्तिमैरैरश्च राज्ञो विधमराजयत् । तार्थयात्रा व्यधात् सप्त, य सप्तनरकच्छिदे ॥ ५१

त्रैलोक्यादुत्तमं वीक्ष्य, य माता पित्रमक्तिमि । भक्तये सृष्टये माता पितृभ्यामात्मभूरपि ॥ ५२

आसीत् कुमारदेवीति, प्रातिभूरस्य वल्लभा । या जैनधर्मव्याजपि, गौरीमल्लभयक्तिमाक् ॥ ५३

तयोऽन्योऽभवत् पुत्रा, रिपुनासकरोजस । य ईर्ष्याभिर्द्वितीयेष, निषोता समजन्यत ॥ ५४

प्रथम प्रथितस्तेषा, भद्रदेवो धियनिधि । स्वराज्ये गुरुबुद्धिना स्वराज्यगतनिष्ठ य ॥ ५५

धीमानास्तेऽनुजस्तस्य, वस्तुपालः कलात्पदम् । अनुजेनान्वह तेजःपालेनाराधितक्रम ॥ ५६

इमौ प्रधात्रिमशालौ पयानो श्रीसमागमे । नृप्य समर्पयिष्यामि, मन्त्रिणौ तौ तु मित्रयो ॥ ५७

इत्युक्त्या मुदित वीर धरतेऽसौ धराधर । आहूय तौ स्वयं प्राह, नमःसौली सहोदरो ॥ ५८

युवा नरेन्द्रव्यापार पासवारैरुपागौ । कुम्ता मन्त्रिना वीर धनस्य मयदहते ॥ ५९

युवान्धानेन नेत्राभ्या च-नुष्मानस्य विक्रम । आलोक्ष्यालोक्ष्य नि गेयानपि दिष्टान् पिनष्टु म ॥ ६०

किञ्च प्रपन्नयतमेव युवा जिनन्द्र-धर्म जिनेन्द्रपदपद्मयुगदिरैरौ ।

स्वभावोन्नेकितनृपालदुस्मारपाल-सन्दिष्टमिष्टतममेतदवस्यन्नर्थम् ॥ ६१

आस्थानमण्डपविर प्रतिपददध्यात्, केनाप्यष्टमस्तुताऽनुमते हि तेन ।

पिप्तामिति क्षितिपति स तदा प्रदाय, वीराय वीरधनलाय मुदाऽर्पयत् तौ ॥ ६२

किञ्च—

कन्यातपु यथोपर तत्र हरिर्दुग्धाश्रितवासरमय,

भार्तृगृहमिद्विवापारयपय न्नानोसन न्यस्यते ।

मिथ्योक्ति कविनेति नात्र वचसि यद्वाऽस्ति धनं तच्च,

नन्द श्रीस्तुत वस्तुपात्र ! भवतु प्रयश्मेनत् तव ॥

१

- शश्वितृनिपरः परं परो, रसति श्रितिमिमाराति ।
 वस्तुपालसचिवस्तु पाल्यस्येव देव-भुल्वम्भीयवा ॥ २
 संग्रामसिंहकुशोभरमृद्वमङ्घ्रि-भास्ववज्र कुसुमसौरमसम्भृताङ्गः ।
 वगैवेन किञ्च कोकिलकोमलेन, शम्भद् वसन्त इव भासि वसन्तपाङ्गः ॥ ३
 शीघ्रस्तुपालस्य यशस्तरङ्ग-पूरैः परितेऽरिसिंहः ।
 व्यचत द्रुग्धाग्धिमिव प्रवच-ममुं समुद्रमृतरसप्रशस्यम् ॥ ४
 प्रतिस्नां प्रबन्धेऽस्मिन्नरिसिंहविविधिते । इमान्यवृत चत्वारि, काव्यान्धमरपण्डितः ॥ ५

॥ इति सुकृतसङ्कीर्तननाम्नि महाकाव्ये मन्त्रिमकाङ्गो

नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥



- वस्तुपालसचिवेन्द्रोमुपी-सम्भुवः पुरुषपौरपोदधिः ।
 मेदिनीमञ्जयदम्भिमेललाभेव वीरधवलोज्ज्व दुर्द्धरः ॥ १
 तन्महानतिरकम्पसङ्कटे, फण्टकाखिरहिते हित सताम् ।
 न्यायवार्त्तनि शमे समन्ततः, सम्मदेन समचीचरत् प्रज्ञाः ॥ २
 कस्यचिद्भरमिण्डलप्लुते, शुण्डतेऽपि मणिराविराजिते ।
 शङ्कयेव मृशमाशुशुक्लगे, कोऽपि न क्षिपति पाणिपङ्कजम् ॥ ३
 ऋदिष्टद्विविदादेषु सर्वदा, देवावांसिषु जनेषु मानिषु ।
 दीयमानमपि नाददीत यत्, कोऽपि तस्करकृमा ततः कुतः ॥ ४
 सर्वथाऽभ्यसति याचके क्वचित्, कोऽपि किञ्चिदपि न प्रयच्छति ।
 कौतुकात् कविभिरेव वर्ण्यते, दानवानिति महाधनो जनः ॥ ५
 एतदाननबिलासि पालय-त्याशु बीरधवलद्विप द्विप ।
 आममौरवमिति श्रुतं वित्ते-नैव कथिदुदपाटयत् तृणम् ॥ ६
 निलचैयकुतुकावनोकन-व्यप्रलोभमणिमूषणाशुभिः ।
 जर्जरै रजनितामसेऽफलत्, पांशुलासु न मनोरञ्जुम् ॥ ७
 इत्येषश्च मुदितं पदे पदे, लोकमुन्वजगिरेकमेकदा ।
 वस्तुपालसनिव व्यजिज्ञपद्, व्यक्तप्रकिमरमामुरोऽनुजः ॥ ८
 मुदितं तव देव । दासता-मानिनाय विष्मानपि द्विप ।
 मण्डनाय नृपमण्डलप्रिया-मेव बीरधवलस्य बाहिनी ॥ ९

- योगोपाश्रवदपात्रमन्यत्, प्रीणययनुदिन धनैस्त्वयि ।
 तस्करेऽपि भृशमर्थिता गत, क्षेपते पुरि मुत्पेन रथका ॥ १०
- तापकीनयरासैव व्याधत्तां, पूर्णिमा ऋतिसमेन तन्वता ।
 उ वले जगति पाशुलाकुत्रै-राकुनैर्गृह ! सापुता दधे ॥ ११
- त्वमहोभिरहिमास्तुकोष्टिबद्, निप्रार्थनयनेन राहुणा ।
 तिग्मभानुरनुपद्भतोऽभयत्, सौमिनि वर्धति विशेर्गृहपित ॥ १२
- इत्थमद्भुतविभूतिभूरभूद्, देव ! देवाज्जगता नयात् तव ।
 जैनधर्मपरिवर्धनोचिन, तन्महामण्यशासनं स्मर ॥ १३
- यथाभवस्य सुरसिन्धुनधुरा, भारतीभिनि निग्रन्थ सम्मदो ।
 आह क्रिबन त्रिचिण्य चातुरी-रोचिन सचिवचक्रोम्बर ॥ १४
- आमगोत्रगुरव पुराऽभवन्, विद्युता मुनि महेन्द्रसूरयः ।
 यैः सिताम्बरवरैः सिताम्बर, निम्बे जगदमेवर्द्धतिभि ॥ १५
- वैरजीयत जगन्नयीजयी, ममथोऽयमिदमद्भुतं न न ।
 यद्भुवाऽपि यगसा यतो जित, कामजिमुकुटकुम्भि नरी ॥ १६
- यान्तिस्त्रिरिथ तपदश्रियोऽन्धहृनि कृतिषु दासरोऽभवत् ।
 उदगृणन्ति मस्तोऽपि यदगुणान्, निरुन्मावृत्तरसा रसाधिकम् ॥ १७
- य सुदर्शनभर हरिभमा-भास्त्रन् गुरुरिति स्वयं रति ।
 कान्तसोमकलमीराहृया, य जयीति मदनोऽपि नैभत ॥ १८
- तपदेऽनिविदितप्रथावथाऽऽनन्दसूर्यमरसरिराजको ।
 वासमन्दिगधिलासमन्दिरे, श्रेयसा मुनिविभू बभूवतु ॥ १९
- दौगावऽपि मदमत्तवादविद्वास्वास्वनिवारणक्षमौ ।
 यौ जगाद जयसिंहमृपति-व्याघ्र-सिंहशिशुकादिति स्वयम् ॥ २०
- न पतोर्यमति निर्भर ययो-र्यद्वचमगमन् विवादिन ।
 स यदि स्फुटरवानुवादत, स्वस्थ भन्दगुगतामदसीमत् ॥ २१
- तपदाम्बुरुहपटपदा पट, गेजिरिऽथ हरिमृदसूरयः ।
 वैर्किण्ठय्य तुमुगानि कार्त्तिभि-रल्ययैव कुमुमायुषो जित ॥ २२
- संयमप्रश्रुतिमित्तथा गुणै-र्यमन पदमपूरि भूरिभि ।
 न प्रवेष्टुमिह ममथो यथाऽनहतामपि गत भयोऽभवत् ॥ २३
- सन्ति सप्तानि नद्रायणासने, मूरयो विजयमेनसूरयः ।
 उन्नितो जगति यैर्महाश्वन्ममथोऽपि मगमेदोऽभवत् ॥ २४

सर्वतोमुखस्तपोहृताग्नैर्यैर्हुत स्मर इति क विस्मय २ ।	
निर्जित पुरजिता पुरा यतो, नेनमानुश्रिताक्षिणाऽपि स ॥	२५
गम्यते तपनस्यतेजस स्तस्य वदनविधिसया गुरो ।	
देशना समधिगम्य तन्मुखाद्, धर्मकर्मणि निधीयते मन ॥	२६
ह्युदीर्य मनिमासुर पुर-स्कृत्य कृत्यविदसौ सहोदरम् ।	
कम्पयन् कन्युग मनोरथै रासमाद वसन्ति मुनीशितु ॥	२७
द्वारमध्यमधिरानिपेधिका मुद्रिरन् गुरुमपेक्ष्य तपुर ।	
वाप्यरुद्धनयन पदे पदे, सम्भवेन घनगद्गदोऽस्त्रपलत् ॥	२८
तु धमाधिपमतापतापिता, बीजयन्निव धरामसौ चिरात् ।	
अश्वत्थेन करचक्रेन स चक्रिरान् गुरुगच्छति कृता ॥	२९
दन्तदीप्तिपटलच्छलोच्छल-मूर्त्तिमसुकृतवर्मितामिव ।	
विबुधदुरितराक्षिरातिप, निर्ममे तदन् निर्ममेक्षर ॥	३०
सोऽभ्युदञ्च्य कथमन्यथ हिते भक्तिभारनयित निरक्षिरात् ।	
अमृतो मुनिविभोर्धर्मपथद्, धुकमासनममुकवासन ॥	३१
आकलय्य गुरुरग्लिका मुस-द्वारि त्रिस्तुतिदन्तदीप्तिवत् ।	
देशना सचिवभर्तुरमृत कर्तुमागमन् सूरिशेखर ॥	३२
वीतराममतधर्मकाणि, साधुवृत्तगुरुभक्तिमासुरा ।	
श्रावका कतिचिदासभावना-दान शील-तपसो भवन्ति चेत् ॥	३३
दान शील-तपसा विजि-वरी, आवनैव भवनाग्निनी भवेत् ।	
सा पुनर्विजयते प्रभावना, सा तु सम्पदि सुखेन साध्यते ॥	३४
अरिधरा कर्मिका इव श्रिय, पाठयन्ति नरकावटे नरम् ।	
कश्चिदेव निपुण नियोजक, लह्याति विरुद्ध भवाढवीम् ॥	३५
श्रावकज्यममलं कुल कथा चनमालमपि कश्चिदुद्धहन् ।	
सम्पदा ललनयेव लोन्मया, पीतमद्य इव भोक्षन् जन ॥	३६
श्री-कृता शुचिर्वरेषु रोषिता, स्थानकेषु समये यथाश्रिय ।	
पुष्पिताञ्जुततरैर्योगैरै-राशु पुण्यफलदेनैव गमेन् ॥	३७
न स्थिता कचन याति रागद्वय, सम्मिलन्ति रसस्त कथञ्चन ।	
सम्पद प्रकटितप्रभावना, कस्यचिद् यदि भवति सिद्धये ॥	३८
श्रावयन्ति परितल्लभावन-दान शील-तपसा स्वयम् तन् ।	
विषाणस्तनिकाशदीपिका, यतनोनि विरल प्रभातनयम् ॥	३९

जन्तितानि बहुश प्रमावना-कारणानि मुनिभिः पुरातनैः ।	
उत्सवो भवन्ति तीर्थयात्रया, तेषु शेषरमाणस्तु निस्तुप ॥	४०
सिद्धलोक इव सद्गता मनः, पुण्यते ननु जनो त्रिनैरपि ।	
धन्य एव स तु तीर्थयात्रया, कोऽपि सद्गपनिता निर्मात्रि यः ॥	४१
दिक्पुरन्निभुत्तुकाय कस्यचिद्, रौन्यदर्पणनिमो यशश्च यः ।	
सद्गसद्गदितरेणुमार्गेना दिन्दुधामर्षकलो विज्ञेयते ॥	४२
सद्गभर्तुरभिरूपितस्तथा, यद्वैते सपदि पुण्यपादप ।	
दर्शयत्यपृष्ठसन्निभं यथा, विष्टपनिवयमौलिग फलम् ॥	४३
नागेन्द्रगच्छमुकुटस्य मुनेरनून-माकर्ण्य कर्ण्यमिति अन्त्रिपतिर्विचारम् ।	
नन्वा स्वधामनि जगाम जिनेन्द्रयात्रा निर्माणनिर्मलमोऽस्तिगतोरक्षथी ॥	४४

किञ्च—

वित्तपाते विधाङ्गगतदस्ति शम्भुत् तव यश	
प्रतापाम्यामभ्युद्धैस्तिरुचिवादं विधु-नवी ।	
भज रथैर्यं सोमान्यतिलक ! तावत् क मुहूर्ते,	
कृतैर्भ्यः सन्धस्त्वमिह गुण दोषैरुनिकप १ ॥	१
ईहक् कश्चिद् विपश्चिज्जनमनसि चमत्कारकारी पुराऽपि,	
कामि प्रापि प्रभुदे वसुमति सुवतिर्वस्तुपात्रस्य तुल्य ।	
येन क्षीराण्यार्णश्चयसिचयजुष सिद्धसिन्धुत्तरीय	
श्रीविस्तारोत्तराया व्यरवि शुभ्ररुचि कीर्त्तिभिः कञ्चुफस्ते ॥	२
सस्रकनन्दकपुरोगदयाद्भुतश्री-रुचं वस्तुपाल ! पुरयोत्तम ! जिष्णुदेव ।	
सद् दूयते तु हृदि गेष्त्वहमेव शङ्को, यद् सिन्धुराजवतुर्गर्भं करे गृहीत् ॥	३
कविर्न को निस्तुपवस्तुपाल-यश मुपानिद्वरसं रसज्ञ ।	
प्रबन्धमात्रादयतेऽरिसिंह - सुखारवि दैरुमस्त्वमेनम् १ ॥	४
प्रतिस्पर्ता प्रयत्नेऽस्मिन्नारिसिंहनिनिर्मिते । इमान्यकृत चवारि, कान्यान्यमरपण्डितः ॥	५

॥ इति सुकृतसंकीर्त्तननाम्नि महाकाव्ये चर्मोपदेशानो
नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥



- स तीर्थयात्रामु मनोमनोरथं प्रकाशयन् सम्पदमेतुरोधमः ।
 पुरे पुरे धादञ्जनाय नायको, विवेकमात्रां लिखितान्यलीलिस्त् ॥ १
- जवाहनानामपि बाह्नावली-मगम्बलानामपि शम्बलं बली ।
 भक्तिङ्कराणामपि किङ्करान् कृती, वितीर्थं सद्यः समवीवहद् बहून् ॥ २
- अदोपधीर्मन्त्रिपतिस्तदौपधी-रमीमिच्छद् विश्वरुजां विजित्वरीः ।
 यमूच तामिर्मृगमौपधीपतिः, स कौमुदीकोमलक्रींचिकारणम् ॥ ३
- बृधैव वैधाननवधवैभवान्, समं स मन्त्री जगृह महेच्छया ।
 प्रभूयुसहृफपेरुराजिनं, तदाऽस्त्रिलय्याधिहरं तमोऽपि यत् ॥ ४
- न यद्यपि प्रौढशृपप्रभास्तो, मविप्यति स्पृष्टमनोमिदं कचिद् ।
 परोपकाराय तथाऽप्यपे कृतां, युगादिसर्वज्ञरुनाम्होऽभवत् ॥ ५
- जयासिद्धीमवतमिर्जितान्तर-द्विपो मयाम्भोनिधिदुग्धसंभवान् ।
 मेषु गन्वा त्वयमद्भुतादरः, समं शमीन्द्रान् समवाहयत् कृती ॥ ६
- सतां पतिः सङ्घपतिवरोपणा-मिपेन्मसाच गुरोः काम्बुनात् ।
 शुभे मुहूर्तेऽद्भुतबाह्याहिनी-वृतोऽचलचन्दनचर्चिताकृतिः ॥ ७
- तत्तत्तुर्विवातितीर्थकृत्कला-कलादितीर्थङ्करदेवताख्यः ।
 चचाल दृष्टादिमिनोदत्तपरः, प्रजामुदश्रुत्नपितेन वर्त्मना ॥ ८
- मियन् पयः त्व सारितो वियदने, दद्याद्भुक्कान्तीस्तुष्टुते तृणोपमाः ।
 मिष्टहृल्लो यत्न यत्न-किञ्चोत्कः, समं निगोत्रैकगुरुस्ततोऽचल ॥ ९
- जयानुचण्डर्नरवन्द्यसूरयो, ससम्प्रसस्तोमविलोकनच्छलात् ।
 दशैव सिञ्चत इवाद्भुतकृमां, प्रयाति सद्यः वसुधां सुधान्तया ॥ १०
- अथाचलन् वायटगच्छवत्सलाः, कलास्पदं श्रीनिनदचसूरयः ।
 निराकृतश्रीपु न येषु मन्मथः, चकार कलिं ज्वनीविरोधतः ॥ ११
- भवाभिमृतेन मनोसुखा मया-दन्तीदितैः क्लृप्तमवाभिमृतिभिः ।
 भवानि सण्डेरकमच्छसूरिभिः, प्रधान्तसूरैरथ शान्तिसूरिभिः ॥ १२
- शरीरमासैव परामवं स्मरः, स्मरजवदयत् किल यस्य दूरतः ।
 स वर्द्धमानाभिषम्प्रसिखस्ततोऽचलद् गल्लुक्लोकमास्करः ॥ १३
- सहस्रशीर्षोरगल्यक्रीचैः सहस्रपापप्रतिमानतैः ॥
 सहस्रनेत्रप्रमुखामस्तुताः, सहस्रशोऽन्येऽपि च सूरयोऽचल ॥ १४
- चतुर्दिगापूरणभूरिनि-स्वन-धनुःसमुद्रान्तमहीतलागतः ।
 तत्तत्तुर्धर्मतानिधलोऽचल-चतुर्विधः सद्भवो यथाविधि ॥ १५

- वितन्वतः कासहृदाख्यपत्तने, महेन्सवं नाभितनूनसबनि ।
 सहायतां प्रत्यशृणोन्महामते-रमुष्य ह्यवर्गनि देवताऽम्बिका ॥ १६
- अथास्य सद्गुरु विस्मृतोऽप्रतः, अताद्वचनोचितचीकृतस्वनः ।
 नन्दमहोक्षयनिवर्मितोऽपि सन्, हयादिदेषाभिरलभि लाघवम् ॥ १७
- पवित्रमेतत् तिलकाय निधयः, परस्परस्पर्द्धिगिरुद्वैमुत्तुके ।
 तदा सदासैः समवापि दैवतैः, सुदैव तैः सद्बन्धिरजं रजः ॥ १८
- अमूर्त् तदा सद्गुणदामिपद्गत-स्तथा कथयिद् विजस्तमा मही ।
 यथाधिरूढाऽपि शिरस्यहीकिनु-धकार नो भारमुदारविग्रहा ॥ १९
- विमेष लोभेन धवान् धवान्तैर्यया प्रपेदे प्रनिघातपातकम् ।
 पवित्रिता सद्गुणदैर्दिवं ययौ, मही स्वदेहेन रजोमयेन सा ॥ २०
- महानयं सद्गुणजोऽचलत् कथं, धनियथ इमामिति ज्ञानितुं तदा ।
 गतैः समीपं क्रिद् वेणुभिः फकुप्-करोयुभिर्दधु मशो निरावृतः ॥ २१
- रजस्तदा विस्मृतसद्गुणभव, नमोनदीर्नमनारगार्भितम् ।
 इहापि गङ्गावृदलाभि दुर्लभेन्यकर्षि सर्वाभिर्मिराशु हर्षिभिः ॥ २२
- दिनेधरधीदनिपातकादिव, हुतं दिवः पानिधिरर्कमानुभिः ।
 पवित्रसद्गुणमोगुसद्गुण-असद्गुणद्वैव गति रम तनये ॥ २३
- विस्मृता सद्गुणन मेदिनी, पवित्रिता प्रयुक्तगिणी ततः ।
 उदय धूर्तव्रतपनातं व्यपाद्, व्यपाव तूर्णं तुनरात्मगङ्गी ॥ २४
- अनापनयां मुनि सद्गुणसद्गुण, मदा तराधामिव धर्मगारिणी ।
 अगङ्गेऽमाकमपातगङ्गा-मिति रम गृयति मुग्ध महीमनः ॥ २५
- अयापनान्यानि निरासितुं गद्यान्दनेन मदेन शरीरकाणि ॥
 धनःकचनप्रधिगीत्याऽहनि विद्वान्माग गगने व्यकल्पत ॥ २६
- अमुष्य मद्यस्य विन्दनजियां, रिक्तशोऽपि श्रमशीलमर्मठः ।
 स्फुरत्स्फुरन्नेननेन भेदयान, दुर्धनं पुण्यानि मर्दन्गङ्गागः ॥ २७
- अमरुतस्य विन्दनं नार्ग-शम्भ-याद्विद्विभूतिप्रदः ।
 शिष्टं गृहकोट इव प्रमेदिन्यं निगम्य मन्त्री जननिधमयनि ॥ २८
- सुखं वन पूज्यमुसबो-लुह, पुं पुं नैर्द्वैता वृत्तादि ॥
 जनें स्पर्द्धा मही महीदगी-महीमन्मन्त्रिजनवनादुत ॥ २९
- समीपमहेनजिजनं निन्द प्रियो दिव मन्मन्मन्त्रं ॥
 पुं, पुं धर्मरूपं व्यजति, निन्द रम अत्रुष्टुष्टुष्टु ॥ ३०

अगण्यपुण्यैर्भवसिन्धुभारम्-रम्यं श्रीचनगोचरो गिरि ।	
इति रम्यस्मेरह्रदो विदस्तदा, ससम्भवाधकुरुहो ! महोत्सवम् ॥	३१
गतोऽप्यतोऽस्मिन् दुरितैर्गन्धर्विलो, विलोक्य नाभेयनिकेतकेतनम् ।	
वनस्तदा शर्मसोर्गिविह्वलो, मदान किं किं त्वयाश्चकार सः ? ॥	३२
ननर्त्त कश्चिन् पृथुसम्मदस्तदा, सलील्लग्नोत्थायितपाणिगल्लवः ।	
प्रतिप्रतीकं परितः कुतूहला-ढलं यथाऽऽलोक्यत पुण्यसम्पदा ॥	३३
बहूपत्न्यादयुगस्तदाऽपरो, ननर्त्त दूरप्रसरत्करच्छदः ।	
विधातुमुद्गीय नगाधिरोहणं, मनोरथी पनरथीभवन्निव ॥	३४
भवन्निवन्ततरः विरोधरा-ऽधिरोपितं पापभरं त्यजन्निव ।	
इलामिल्लवौलिरमन्दसम्पदो, ननाम विप्रामविक्षितया परः ॥	३५
विलोक्यन् कोऽपि वृषव्यज्रपर्व, सुहृर्मुहुर्मुहुः नमनमन्दधीः ।	
उदक्षित-त्यश्चितमौलिलीलाया, रराज मुक्तिश्रवणाह्वयनिव ॥	३६
भसुन्न क्षात्रुञ्जयसैलसन्निधौ, भयार्णवस्येव तटे तदा परः ।	
निरीयितुं पातकजातकर्दमा-छुण्णोऽसर्वान्मुदाराभीर्मुदा ॥	३७
समुद्भवज्ञावरसादचेतन-धिराय श्रव्यादिविवेकवर्जितः ।	
परः गिल्लपुत्रसमोऽपि बाण्यवा-न्मोचि रिष्टैरपि रिष्टशङ्कितैः ॥	३८
इहाथ पाथस्तृणरात्रिराजिते, नितेन्द्रियो गन्त्रिपतिर्महीतले ।	
धनाफनोदार्पणमद्रापयत् तदा, निवासमासन्नममुष्य भूषतः ॥	३९
अथामञ्जु स्निग्धप्रनोदिनो, दिनोफनापे सचिवः स किङ्करान् ।	
मन्त्रारान् प्रैषादेय तन्मणौ, शिष्टि-ऽद्वन्द्वविदम्बिह्वान्मुदा ॥	४०
सुबंदासंयोगितरूपशोभिता, विविचिता धातुस्तेन सर्पतः ।	
पदे पदे पर्वतपादसोदरा, धितेनिरै दीधरचीवरालयाः ॥	४१
अनासि धर्मश्रितिपथ्य वप्रवत्, पदे पदे मण्डलितानि रेन्निरे ।	
तृणं द्विपापमिवोदमूलयन्, यतो विनिस्तृण्य वृषा मटा इव ॥	४२
गिरी गतिं पश्यत न. कुतूहल्यत्, कथं वृषा मुञ्चत भूतले समे ।	
इतीव चाहूकिञ्चलं गुप्ते, वृषा व्यधुर्वैभ्रति सारथौ पुरः ॥	४३
नेयेन सहस्य रसातलं यथा, कथं समारुप्यत साऽपि भिन्धे (?) ।	
तवीजमुद्गीमिवरापदेसनः, खनन्ति मूखण्डमिति रम किङ्कराः ॥	४४

प्रवृत्तवृत्ता प्रेचनेर्मिपागिमि, प्रणीतर्षाभा कमलाख्यपट्टपदै ।	
तदा व्यधु स्वाग्नमागा ज्ञा, विदग्धमग्ध प्रसरेण स्तिष्व ॥	४५
तदाऽनपाकाय विक्रादित िम्बी, उल्लङ्घयौ सद्भजन निग्रासिनि ।	
भरानमरूमिभिदास्तुट्पुनरुगमी उचूडामगिरिस्मिगिश्चत् ॥	४६
अथैव तीर्थद्वन्द्वताय प्रमृन्मम्यदिनपूजने जन ।	
मुदा नमस्तस्य गुरुकमद्वय, प्रचक्रमे शास्त्रतृन्त्यकस्त्रिषु ॥	४७
अदायि दानाय तदा धन तथा, मनोरथार्थमनेन मत्रिणा ।	
यथा परे निधयशयितो जना, वनीपकानामपि चाटु चक्रिरे ॥	४८
त्यय स रस्मैचन मेदरादिरु, वृत्तादि रस्मैचन शुद्धयासन ।	
फलादि कर्मचन साधये ददर, तदा विशाग्राम न यत्रिज्ञेन ॥	४९
अक्रिन्न कश्चन याचत वचित्, किमर्थो ' शान्दमिनि प्रदाय स ।	
चक्रार भोग्यादिन्मामना जनी तृतीययामक्षणपूरितेक्षण ॥	५०
अथ कृततनुय कौतुकोत्तानचेना, जिनपदमनुसद् कलससहज्मागात् ।	
इह महमहिमाशुर्गुणकामो निकाम, गगनममनस्विन प्रत्यगदौ निपग ॥	५१

क्रिद्ध—

पाव पायमहर्निश रिपुयश पीयूषपूर भवान्,	
कपायु क्षितिरूपवृक्ष ' भवताल्लक्ष्मीन्त्यान्विद्धित ।	
श्रीसौमान्यसोमनीकिङ्कमयैरेव प्रसूनैस्त्रि,	
त्यर्कातिप्रकरैरपि त्रिभुवन सौरभ्यमभ्यस्यतु ॥	१
मायमायनर ' नाभ्ये यग, श्रवसन्त ' तव सततस्तिष्ठ ।	
इयन यमहिमानमानशे मानसाश्रयमहो ' महामयसाम् ॥	२
सैमुच्छ्रिताभि खलु वस्तुपाल प्रतापदीपाञ्जनमञ्जराभि ।	
इहोपकृष्टरिषतिभाजि शङ्के, भाङ्गि यमु मीनित्तु चल्ऽपि ॥	३
श्रीवस्तुपालप्रथितप्रसादादासन् प्रणेदाभृतवारयो या ।	
एतप्रवधच्छलनोऽरिसिंहस्ता एव मूर्त्वा स्तवकीचक्रार ॥	४
प्रतिसर्ग प्रवधेऽस्मिन्धारिसिंहविनिर्मिते । इमा बह्वन चचारि, कान्यान्यमरपण्डितः ॥	५

॥ इति सुकृतसक्रीर्त्तननाम्नि महाकाव्ये सत्त्वप्रस्थाने

नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥



- विरहसिखिसमीर कामनासंखीर स्तिमिरतरुठार पूर्वदिक्कारहार ।
 गगनगजनिपादी कागिनीचक्रवादी, सितरुचिरदितोऽय वर्षयन् वार्षितोषम् ॥ १६
- इभुञ्जमिभमल्लोद्भासि कैलासशैल-कृत्तिमदृत गौधं शेषवच्छेषसर्पान् ।
 रुचिरभुतमर्गचे सङ्गमर्तुर्यदा श्री रिच धवलस्त्रिविधा जाद्वयी निहनुगाना ॥ १७
- वियदहनि चित्तं स्वस्य विधस्य सङ्ग-क्रमसमुदितभूलीमण्डलैर्मण्डनं यत् ।
 सुदृढमिदमिदानीं मूर्तमभ्युपदिन्दु-सुतिनिमयिति लभे भिन्नमास्त्रिन्यालम् ॥ १८
- चिरमुपचितहर्ष सङ्कलोकावलोका दिव वृतमुकृतोऽय व्योमचूडावलम्बी ।
 सहजनिज कलङ्क-यकृतिप्राजमाना हृतिरहत न केया निस्मय गीतरस्मि ॥ १९
- निद्रा नियतमियायामप्यमु सङ्कलोक, वृत्तमहमिह भक्त्या जागरूकं बिलोक्य ।
 दयमनुनत गीलि वित्तिता व्योमलक्ष्मी, तुमुममिव तदाऽस्मान् मन्दमभरपदिन्दु ॥ २०
- गिरिद्वारसि जितग नन्तुकामस्य मा स्या-महमहह ! महत्त्वादस्य यागन्तराय ।
 इति विस्रमभावभ्राजमानक्षणस्य, कृगमपि न समिप्ता सप्तलोकस्य जाता ॥ २१
- चलितसकलताराभोक्तमामुकसन्ध्या दहनमिह विहायोमण्डल दाम्नि विहाय ।
 सहजमहसि सरे इन्तुमाग तुक्रामे, फमपरनहीभृदुर्गमिन्दुर्गतोऽयम् ॥ २२
- सजलजलदचाकर्षकणीरागभाज, दितितलद्वटितस्यामुष्य मुक्तान्यस्य ।
 समरतिगिरवपो यन्वना नर्तुरप, त्रिमुनमवना नर्तुर्यथोराशिरासीत् ॥ २३
- स्फुटपटितछलद्वो यन्वनामप नचा, त्यजति करगह्रीतामप्युपा भूरिमुक्ताम् ।
 इति वत ! तुमुक्षिप्य सारसौरम्यग्रेना-नालमपुपपगु व्यादधुर्धसन्ध्याम् ॥ २४
- हरिहरिति श्वाङ्गानल्पसङ्कल्पकस्य दुम इव दिग्भ्रष्टस्मिन्नुन्नतात्मभाषि ।
 मलपिसविपगुताङ्गमुमद्विम्बवीजा-दुदयत मृदुतज नतपाददुतोऽयम् ॥ २५
- पतितपति पयोपेस्तरा हन्त ! रात्रि प्रियपुननिभिदेदाद दु रभाषि दिवेन्दे ।
 दिवततिरक्तितां किन्मे तारकाणा, पथि फलछलमुर्धधसन्ती चिसाय ॥ २६
- भृशमुपसि तुपास्मन्दसङ्गागता-चटिबलभितनील-या तदुपागमोप ।
 गगनरघोदतोभृष्टलेख्यस्यैव स्वर्गगिरिद्वारोरेवमस मुत्तमुर्ध ॥ २७
- मुमगनगति भूमि नोर्ध्वद्वानगना, भुवि नयनमभ्यामस्ये नारनागात् ।
 सखादि विपदमता निर्यसे नृभुं मन्त्रयारगगितासन्ध्यादृता भानुभास ॥ २८
- मसुणुसुमन्त्रुधधल्लयानुदगी, त्रिजङ्ग इव गमुपन् प्राप्तिदम मूर्धल्ल ॥
 नयनभनत जन्मगतिमुन्निन्दुमन्त्र-वदन्ति त्रिजगतामनुन्नादृष्टपाभात् ॥ २९
- नन्निधिजन्मन्वात् नुद्वैतमजस-मन्त्रयविचयमन्वा नागुग-नुजगाम ।
 सपति विपदन्त कान्तिनने विजेत्य, ग्रहमिवमुवरमा पामनी-नुपात ॥ ३०

अवतमसततीना मृत्युकालोऽपमृत्यु, कुशलवलयानां जीवितं पङ्क्ति-या ।	
अलमकृतं नमोऽङ्कं कोकलोकस्य सीता विरहितहरिशोषानुग्रहोऽयं ग्रहेण ॥	३१
दयितमिति पुरस्ताद् बौद्ध्यं भानु युवान्, हरिहरिति हरिद्वारागमागं प्रकोपात् ।	
स्फुटकमलमुखेभ्योऽभोचि निश्वासधूमा बलिरलिनितुल्यवच्छप्रना पद्मिनीमि ॥	३२
अजनि गिरिनितम्बे निम्बमर्कस्य घातु च्छुरितमिव सराग सूर्यकान्ताश्रितसम् ।	
करजलपरिधौतं चुम्बितं चाम्बरेण, क्षणघटितमुवर्णादर्शवद् दिग्बध्नाम् ॥	३३
सममसममपूर्वैर्भानुमन्तं लसन्तं, गिरिशिरसि विलोक्याऽऽलोकनीयप्रभादम् ।	
त इव सचिवभर्ता सत्त्वलोकेन साकं, विमलगिरिगिरिगोऽग्रं गन्तुमन्युसुकोऽभूत् ॥	३४
सद्यो जिनक्रमनमस्कृतिोलसद्बद्धं सद्बद्धलेखसुधातलसम्भरणेन ।	
श्रीवस्तुपालगुणद्वष्ट इवाचलोऽपि, शत्रुञ्जयः स्वयमकम्पयदेष मौलिम् ॥	३५

किञ्च—

नित्यं त्वद्धनारविन्दसदनं वाग्देवता सेवते,	
त्वं पद्माश्रयमासुरोऽसि जयसि त्रेलोक्यसूत्रं त्वयि ।	
श्रीमद्वण्डपगोत्रमण्डनं ! गुणैरभिर्भवान् ब्रह्मण ,	
साधर्म्यं वहसि प्रियवद ! मदाशार्मिस्तदायुर्वच ॥	१
भलभत वत ! यस्मिन् सान्द्रदादिचपूष्णे गृहपतिस्वस्वस्य न प्रदोषक्षणोऽपि ।	
वितरति सति पित्तं वस्तुपाले कवीनां भिहं गृहकुहरान्तर्नैष स्लाकुलेऽपि ॥	२
श्रीमन्त्रीधरवस्तुपाल ! भुवयोर्धुमेन युद्धार्णव,	
तूर्णं निस्तरतोऽपि ते समभवत्तु व्यानुल्लस्य स्त्रिड ।	
यद्गूढादवगम्य निर्मलगुणं शृद्धं त्वया मौक्तिकं	
स्तोमानामिव धैर्यधुर्य ! यशसा चक्रे महान् सङ्ग्रह ॥	३
श्रीवस्तुपालसचिवेन्द्रयशः प्रसून-मान्येऽरिसिंहनाम्ना गुणगुम्फितेऽस्मिन् ।	
कण्ठे सदा लुठति निर्मदुर्जनाली-वक्त्रप्रभा कति न निवसति मृद्धमावम् ॥	४
प्रतिसर्गं प्रवन्देऽस्मिन्नरिसिंहनिर्मितं । इमान्यवृत्तं चत्वारि, कान्यान्यमरपण्डितः ॥	५

॥ इति सुकृतसङ्कीर्तननाम्नि महाकाव्ये सूर्योदयवर्णने

नाम पष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥



- श्रीरूपदिनमिति स्तुतिपूर्व, यथाश्रमभिपूज्य सहर्षम् ।
 आहु सक्षपतिरेष ससहस्तीर्यनाथनमनार्थमचालीत् ॥ १६
 उत्सुकैरथ जनैर्जिनचैत्यं, बोध्य मङ्गु पवि गामिव कसैः ।
 व्यक्तश्चकिरभसत्रुटितोचैः-कर्मन्धतरलं प्रदधत्ते ॥ १७
 सञ्चरन् भुवि न माति जनो य, स्फूर्तिसङ्कुचितमूर्तिलोऽसौ ।
 द्रष्टुमाभ्यनलिनं जिनभर्तु-धैल्यधाम्नि स ममी समसेषः ॥ १८
 दस्यमानमसमाननिर्मदं, हृद् हृद्वा ननु मिथस्तनुभाजम् ।
 भालगङ्गभयभङ्गुरलक्ष्मै-रन्तरारिभिरमोचि तत्रानीम् ॥ १९
 पापपङ्कशमनाय जनानां, स्नानमन्तरकरोद् ध्रुवमात्मा ।
 रोमवर्त्मसु जलं विगर्दं, स्वेदपूरमिपतः प्रसृतं तत् ॥ २०
 भासभौ पनमनापनलक्ष्मी-रङ्गिनां प्रमदरोमविकारः ।
 अन्तरस्थितजिनेन्दुलक्ष्मि-निस्तरदुरिततामसतुल्यः ॥ २१
 लोचनैस्तनुभतामिति स्निग्धैः, प्राप्य जैनवदनापृतकुण्डम् ।
 आहु स्फुटसबनैरिव रेजे, सम्मदेन विगलजललेहैः ॥ २२
 तत्र तादृशि वनस्य विमर्दं, क्षयते भगवितुं न करोऽपि ।
 वीक्ष्य विश्वविभुमेनमनृत्यन्, भाविनो यदि मुदा मनसैव ॥ २३
 स्वीयतादृशविमर्दमुदूर-क्षिप्तसूरकिरणः फिल लोहः ।
 रत्नभूषणविभिन्नतमिस्रो, भक्तिवृत्त्यमकृत प्रभुचैत्ये ॥ २४
 भूलिधूषणपद एव तदानी-मागतो जिनपतिं प्रणिपत्य ।
 दूरपूरितमनोरधनेग, स्तोतुमारमत मन्त्रिवरोऽसौ ॥ २५
 त्वदगुणान् गदितुमीरा । समग्रन्, न स्वयं सुरप्सोऽपि समर्प्यः ।
 गोचरोऽप्यसि न मादृशवानां, मीनमेव हि तव स्तवोत्तु ॥ २६
 त्वां निरर्थकगिराऽपि नधाऽमि, स्तौमि निश्चिनुत ! मुम्बतयाऽहम् ।
 प्रीतये निजगिणोः स्फुटलाला-भ्यासि लङ्घरवचासि गुरुणा ॥ २७
 न क्षमोऽयमहितानपि हन्तुं, स्वं कुटुम्बकमय च मुगोच ।
 जल्पिता जिन ! परैरिति दोषा, प्रत्युत स्तवननां तव कम्पु ॥ २८
 भाषितं सुवनभूषण ! भिजा, कर्म निर्मगपते ! भवतेदम् ।
 श्रूयते त्वदभिधाऽपि कदाचिद्, यत्र तत्र न करोति निषासम् ॥ २९
 नाऽऽनुवन्ति भवकल्पनिकेता-दग्रतस्तव गतस्य पदं ये ।
 अभ्यते धमचशाजिन ! मुक्त्यै, तैवैव पृथिवीवलयान्तः ॥ ३०

स्व मनोभवमपास्य पुनस्त जन्मभारमुच स्वमनोऽपि ।	
किं हस्तु हरिणीतरलादय स्नायकं तदमनस्ककिरिष्ट ! ॥	३१
प्राप्य स्नमित्रं पुण्यपयोधे-स्त्वा द्विदं प्रणिदधाति जनो य ।	
स प्रयाति पुरुषोत्तमभाच, पश्य न स्वमिति किन्तु मवान्धौ ॥	३२
यामवाप्य न नमामि भयर्थं, ता न निर्धृतिमपि स्पृहयामि ।	
त्वत्प्रसादवशात्स्वयं भक्तिं भांनु मे जिह ! भवेऽपि भवेऽपि ॥	३३
निर्मितस्तुतिरिति प्रतियान, कृत्स्नमेव मुकुती कृतशौच ।	
स्नानहेतुफलदान् पुण्यगान्-पूतानयमचीचरदिन्दै ॥	३४
श्रावका प्रतिपदे हृदयाप्र-यस्तहस्तधृतकाञ्चनकुम्भा ।	
निस्तरीतुमिव सस्रुतिसिन्धु, कुर्वते स्म निरपायमुपायम् ॥	३५
शुद्धसद्गतिर्हीर्तिस्तानां, विष्टपत्रितयगर्भगतानाम् ।	
आतपत्रपटली भिमलश्री-नादिकन्दवदिय विराज ॥	३६
अत्युदारतरनर्तनागतै-रसवेन महता प्रहताथ ।	
प्राप मन्त्रितिलकं किल कर्म प्वसिनो जिनपतेरथ चैत्यम् ॥	३७
कुङ्कुमाम्बुभिरसिस्नपदीश, थावकै सह यथाविधि मन्त्री ।	
तैर्विधीनतनुष तदाऽभूत्, पर्वतो विमल इत्युचिताह ॥	३८
अङ्गमण्डनमखण्डनमासी जिर्मितं मृगमदैर्जिनभर्तु ।	
वल्लूतसन्नहनसन्निभनुचै, कर्मकूटसिपुकेटिजयाय ॥	३९
भूरिपुष्परचिता जिनभर्तु-ल्यम्बिता कृतिभिरर्चनमात्र ।	
अम्रभूषण इव त्वत्सुजा, भठयो वपुषि भूषणमास्तम् ॥	४०
तैस्तथा जिन्मुगस्तिमिरेरेरे निर्मयेष्टश्च शृणुष्वृणुष्वै ।	
ससृष्टेव सचिय मुकुनश्री, कौतुकादभिससार यथाऽसौ ॥	४१
आरात्रिक कृतमथ प्रथमस्य तीर्थ-भर्तुः पुर स्फुरदुरुतिनकवाल्म् ।	
उच्चावचप्रसरणैर्निग्गमान सद्-दोषदिष कुमुनवृष्टिविशजमानम् ॥	४२
इदं प्रेक्षणकृष्णाहितयना सम्पूज्य विश्वजयी	
पूज्य नाभिमुतं समाय च तथारूपाग्निहाष्टाष्टिकात् ।	
मन्त्रीश प्रतिलाभितव्रतितति श्रुवृद्धयोर्वीधरा	
दुर्धर्मा कृतमहल समननि श्रीनेमिप्रेवोत्सुक ॥	४३

किञ्च—

शौर्यैर्वज्रपरस्य दैत्य-भरतमाचार्ययो प्रज्जया,

दानैर्दिव्यवीर्यगि जितिष्टा स्वर्गधिर गर्वित ।

- एकेनैव विभूषणेन भवता श्रीवस्तुपाल ! द्विति-
 स्ते निर्जित्य गुदा तवाऽऽशिष्मदादेवं मेदायुर्भव ॥ १
- कल्पान्तोद्भान्तमात्स्यकरनिकरनिभो विश्वमन्तः समन्तात्,
 सन्तापस्वल्पताप-बलदनन्तभवः केन शक्येत सोढुम् ? ।
 गच्छिन् श्रीवस्तुपाल ! त्रिजगति यदि ते कीर्तिलेखेव न स्या-
 दन्त पीयूषपेया बहिरपि च गुह्यन्तनोद्वर्तनानि ॥ २
- मासि दौस्थ्यतरुस्तण्डुलण्डनै-र्वस्तुपाल ! मुवि दानिकुञ्जरः ।
 चित्रमत्र किमु शङ्खवर्दनं, यत् त्वया क्रमणलीलया कृतम् ॥ ३
- क्राव्यमेतद्वरिर्हिनिमित्तं, सर्वतोमुखतयैव रङ्गभूः ।
 वस्तुपालसचिवेन्द्रकीर्तिभिर्नेर्त्तकीभिरिव यत्र वृत्त्यते ॥ ४
- प्रतिसर्गं प्रबन्धेऽस्मिन्नरिर्हिनिमित्तं । इमान्यकृतं चत्वारि, काव्यान्वयरपण्डितः ॥ ५

॥ इति सुकृतसङ्कीर्तननाम्नि महाकाव्ये शत्रुञ्जयवर्णने
 नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥



- सचिवः समं सपदि सहजनै-रथ देवपत्तनमगान्गारम् ।
 प्रणनाम कामजयिनं नयन-प्रियमिन्दुलाञ्छनमिहोषमहा ॥ १
- विधुमौलिमौलिविधुधामभरै-र्गृहे मे भविष्यति सदाऽभ्युदयः ।
 इति पाथसाममुममुत्र पतिं, कृतवासमेक्षत स मन्त्रिपति ॥ २
- इह सोमनाथमुकुटोलसितैः, सस्तिदम्बुभिर्विधुविभाभिरपि ।
 सततप्रवृद्धविहरहरी-निबह्वनिष्वन्तित्तिबलयम् ॥ ३
- सततान्तरालशयविष्णुबपु-र्विषवर्द्धभाभिरिव मेचक्रितम् ।
 उदयत्तदीयशयनीयफणि-स्फुटरस्मिराग्निनिषकेनधाम् ॥ ४
- सलिलेन विश्वबलयप्रलयः, समये मयैव रचनीय इति ।
 गुरुरिरितापहतबोचिधरै-र्जनयन्तगन्धमिहान्धसन्म् ॥ ५
- पुरुषोत्तमो हृदि मदीयमुत, गिरसीधरोऽपि विदधाति सदा ।
 प्रमदादुदारतरगर्भमित्र, प्रकटं नटन्तमिव चोचिकरैः ॥ ६
- अयि यज्ञभाजि कुञ्चिते लुफ्फौ, वृत्तरक्षणं क्षिप्तसुतामयितः ।
 स्फुरितोर्मिबाहुमिति कीर्तितती-र्जगति विपन्तमिव केनमिपात् ॥ ७

- नयनामवर्त्मनि परिस्फुरतो, दुस्तिग्धकारपटलां विंकटाम् ।
 दलयन्ति मे त्रिजगदीश ! कदा भवदीयपादनरज्ज्वीमक्षिताः ॥ २३
- भुवनैकनाथ ! भवदीयवपुर्विपुलप्रभापयसि मग्नमपि ।
 द्वितयं कदा नयनयोहि मां, हिमहास्ताखण ! तारयति ॥ २४
- तदपीयत श्रुतिपुटेन यदा, सततं विपण्णैर्विपिपत्रदि ते ।
 भवद्वद्वद्विंसिमुना यमुना-त्रयिनीं धयामि नयनेन कदा ॥ २५
- नलिनाद्रिपुष्पनिपहेन सुरैर्बद्धपुञ्ज पादयुगमीन ! तव ।
 जिन ! तेन पङ्कजनिभेन कदा, जनयामि पुञ्जितमिवाऽऽवगिरः ॥ २६
- इति गजदाश्रुपुलकाकुलित, कलफन् मनोरथमन्यमनाः ।
 सचिवः शिवात्तनयमात्तनय, क्षणमङ्गनैश्चत पुरोगमिव ॥ २७
- अर्थं कल्पितासिद्धिभिर्भातयिषि गिरिमारुह सह सप्तजने ।
 सचिवो जिनकामनयेषु पुरोगमितेन दृष्ट इव मद्भुज हवा ॥ २८
- तदनु प्रमोदरमसेन रज-मुत्तपाद एव विन्नाम जिनम् ।
 अपि चैव नेत्रगमिताक्षणा-प्रसरकां निनृतमीक्षितवान् ॥ २९
- रचिताङ्गशौचविधिभिर्दिग्गजे, सहितो जिगत्स्वपनह्नुतरथ ।
 जिनभक्तिरागमिव मूर्ध्निमसौ, कलशेषु कुङ्कुमजलं न्यवधात् ॥ ३०
- अथ केऽपि भक्तिभ्रामासुरिता, स्फुरिता जिनस्य पुरतः परितः ।
 स्वयमुत्सवं विदधिरं मधुर-प्वनिगीतिरीतिमयवाचलभम् ॥ ३१
- यदनाग्रभागमतपाणिस्तुग-स्थितभेरिदण्डमिपदत्तकरः ।
 शुश्रुभे करीन्द इव मन्दस्व, किल कोऽपि पापतरुपातपटुः ॥ ३२
- अपरः पयोदायवादभव-जिनर्दं वृद्धमसि बादितवान् ।
 ननु ते दरदुस्तिमोगिस्तैः, कृतिनां मनोनयमयूररुहे ॥ ३३
- अपरस्य ब्रंशमपि यादयतो, मधुरस्वरैः प्रमदित्वां रतिनाम् ।
 यदभङ्गि पश्यन्पुटकेन रसात्, तदनेति रुणे इव नेत्रमगौ ॥ ३४
- अपरः पिपत्राप शिवात्तनुभू-सन्नेन्दुर्दग्धितुषा स्थिरदह् ।
 नराजुज्जगार जनयन् जनता-र्द्धि सम्पद ललितगमिनिनाम् ॥ ३५
- चतुला नटी सरसतृत्तवरादिह रचनभूजयुगा जुजुभे ।
 कुलदेवतेन ताडिता तरला, जलरपुर्गर्जनरणे पुनः ॥ ३६
- इति सम्मदेन जिननस्वययद्, धुलानाम्पुनि दृष्टिपि स तथा ।
 फरितो यथाऽन्यवि रैरनङ्कः किञ्च दस्तापि सख्यो दत्तो ॥ ३७

- स्वहृद प्रनोदविग्रहस्य रसात्, परमाणुमे पुर इव प्रसृतै ।
 सचिवेन साधनसारसैर्नवमङ्गमण्डनमकारि विभो ॥ ३८
- कुमुमायुधस्य कुमुमानि मना-गपि सम्मुत्सानि नहि यत्र ययु ।
 इह तानि तीर्थं हृत्ति सङ्कटयन्, स स्मौ कृती मदनतोऽप्यधिक ॥ ३९
- यमुनौघसङ्गमधिया सचिव प्रथितऽय धूपमयधूममे ।
 प्रमदेन तत्क्षणमकारि नम सरित्स्थुनि धुनुनिभि सवनम् ॥ ४०
- अथ तामस क्वालिस्त चलित्ता ज्वनरैतवन भग्मुद्रिरता ।
 नवदापिदापारस्त्रण चिर, निरराज यजिनमथ सचिव ॥ ४१
- स्फुटमष्टकर्मभेदोऽयमिति, प्रवर्त्तहाष्टदिवसानि महम् ।
 स्वयमष्टमूर्तिमुद्गुन्दुसम, सचिवोऽष्टमु-न्धयित दिभु यत्र ॥ ४२
- सचिवस्य दास इव गन्धर्वो, जत्राह एष गिरिमूर्तिं बहन् ।
 न वर्षं सङ्गजनार्त्तिभयात्, मुद्रितान्यपरि सन्त्यजानि पुन ॥ ४३
- देया स्वामिन् । पुनर्मा सुरतपुरपुरोदौकानांति जन्प-
 तानन्दस्पर्शदत्तारैरिव धीतमना नेमिनाथं प्रणम्य ।
 नाम नाम निराम विधिवदागुर मन्त्रमान्योऽयमग्न्या
 शान्द-यद्युस्तुत्यानापि पुलाकवपु पर्वतादुत्तार ॥ ४४

- अथ गिरीशतटीषु मनीषिणां, पस्विदः परिपूर्णमनोरथः ।
 पडपि तत्र ददर्श ऋतून् फलाञ्जिर्यं चिरयन्त्रितविषयान् ॥ १
- प्रकटितायसकर्त्तरिका मधौ, मधुसस्तस्य भटा इव किञ्चुकाः ।
 भ्रमरसङ्घसितेतरविस्फुरत्-मुमनसो मनसो ददते गुदम् ॥ २
- इदमभूद् दलयन् नलिनीः प्रियाः, मम मह-परिस्फुटन्हेतवे ।
 इति हिमस्य भिदा महिमद्युतिः, स्म तनुते तनुतेजितविष्टपः ॥ ३
- स्मरशिखी तनुमानिव चम्पकः, कुमुमितो मधुपावलिधर्मितः ।
 दहति काननसीमनि काञ्चन-च्छविरहो ! विरहोषितयोषितः ॥ ४
- स्मितसरोजमुखीमुखवासना-सुरभिमयविशेषितसौरभम् ।
 परिहृतापरबल्लिगुम्फती-धनुकुले नकुलं प्रति धावति ॥ ५
- मुमनसां त्वमसि स्थितिमूल्यया, जयति विधर्मसौ कुसुमायुधः ।
 मधुमितीह रसालरसालसा, पिक्वयः कवयः कवयन्त्ययी ॥ ६
- स्मरद्वयस्य चरणमुपागता, द्विजचया मधुरव्यनिरालिनः ।
 मधुलिहः सुमनस्य ददुः पठं, लिखकञ्जालकभातविभूतयः ॥ ७
- दधुरनङ्गनिपङ्क्तुलामधो-मुखगिरीमुखराजविराजिताः ।
 स्फुटविकाशयुक्ताः कमलाकराः, न पथि कं पथिकं प्रति प्रीतये ॥ ८
- स्तुतयुगं कृतकेन मधुप्रतै-रिव रवाकुञ्जितैः सुमनोमयम् ।
 मधुसस्ताय मधोर्विनियोगतः, शरचये रचयन्तिवतां सताः ॥ ९
- अथयति प्रथितारुणतेजसो, दहनमन्त्रमयादिव शयतः ।
 मधुसतोऽयमशोऽरुणतालसत्-कुमुमतोऽमुमतो विरहातुरान् ॥ १०
- मलयजद्रुमसङ्घिभुजङ्गम-स्फुरितकू-रुतिसम्भ्रमसम्पृतः ।
 पथिकुञ्जोल्लङ्घ्या मलयानिलः, सुविषमो विषमोऽहमिव व्यधात् ॥ ११
- कमलकोमलक्रीडाकुचोन्नते-रत्निकुललिङ्गासितसम्पदः ।
 यतलिक्रान्तिरुपयवन्ध्रियो-ऽधिक्रमशोऽक्रमशोऽतः पाप्मिन् ॥ १२
- कमलकान्तिहरी कृततां नयन्, सइ हिमाद्रिन्नेन विभायरीम् ।
 कमलवन्धुल्लोन्नमनो बभौ, मुनिरस्ये चिरयन् दिवसत्रियम् ॥ १३
- द्रुतसनेतविनापिपत्तिप्रभा-यार्गलद्रुतरोत्तमीकृष्णा ।
 भनिकुञ्जोल्लिखीत्तञ्जलाद्, दिग्दन्तीकृचो बभु ॥ १४
- भट्टनिहाङ्गनापात्रि मितेतसो, वर ! विनाम्पयसाऽन सितच्छयो ।
 जमलि चन्द्रकुशा नरपाटले, विचित्रं च विचित्रं वुदुर्बुदुः ॥ १५

तरलतारस्तागहपङ्कज च्छदनच दनचन्द्रमरीचिभि ।	
तस्मत्तापनता कृत्स्नरश्मौ, रतिवरोऽतिवरोरुषु जृम्भते ॥	१६
नमसि दर्पणतुच्यतडिल्लता, जलदपद्मस्तिरज्जतडम्बरा ।	
मदनसै यगजवज्रमद नभौ, श्रुतस्वा तत्वारिसितेतरा ॥	१७
नियदर्मागिलदर्क निशाकर-द्वयमये नयने भयतो मृशम् ।	
यदतुला तडित घनमालिका विहरवा करवालमिवाक्षिपत् ॥	१८
यद्यमेतदवाप्य तपस्विना, हृदि हतोऽपि त्रिजीव मनोभव ।	
अपि भुजङ्गमुजा शुभ्रमे मुधा-श्वचन वचन जिखिना तत ॥	१९
मदभिरर्धितसिन्धुमहीरुह-नम्रिरोपक्रमेतदिति क्रुधा ।	
अधिरुक्रमेह सहसा घनै, कवलित वलित तडिता मीपान् ॥	२०
अपरना परताप-रुद्रश्रिका-हनरुकेत-रुकेलिषु पट्पदी ।	
अमलकोमलकोरुक्तौरम स्थितिषु जातिषु जातरसाभभवत् ॥	२१
अलरुलोलमधुमत्तम-न्तुलाऽभुजमुत्तौ जपनो-वलसैरुता ।	
भगदे हसरवेण समाश्रिता, धृतरसा तरसा तटिनीम्बू ॥	२२
कचन भग्नि वाति तपायये, घनघटाभुजलानि मुयोच न ।	
विरहवद् वधती तपन न्यथा प्रदमन-दमनकलराड्या ॥ सुमम् ॥	२३
पदमधत्त गतस्य पयोमुच, सुहृद्-यमसौ श्रावना गज ।	
गलितपत्रमयातपवाणैरगिमव विभव महसा क्षिपत् ॥	२४
समुदिते मुदितेऽधुरहि प्रिय कुलवय वलय सरिता तथा ।	
जम्बून सम्भूतसम्पदयमा च्छिमिल रिमल च विभुनेह ॥	२५
स्वरुच्यर्धिजवाय निजद्विष, सहसि सार्हासकोर रिमावरो ।	
प्रतिदिन परित परिसर्पितो समहिमा महिमानमुपाययो ॥	२६
तुहिनम दतग मलिनऽम्बिनी-मल्लिनि मुञ्चति रागपरायणि ।	
फणिक्कामिहो ' दतपत्रिका, सह सिते हसित परित वते ॥	२७
पदमकरि मुख सुदृगा सदा, क्षिप्रकातिनि तुङ्कुमगण्डिते ।	
हिमरुच कमलस्य च सम्पदः हसनिक्कामनिक्कारिनुनया ॥	२८
तुहिनवाहिना इत्युवाचतभौ-रचिततुम्बिनतुङ्कुमैत्रवान् ।	
वरतनुतनुप्रागि वात्सरा-तपननि पननि रत्नम-ट्ट ॥	२९
हिमरुचस्य तप प्रविनोन्नत-र्यनमहै-ह णव मुञ्चो नृ-म् ॥	
निन्नरेपरति निर्गनायम, दिनक्रो न करोत कथयन ॥	३०

पुलककण्ठितसूक्तिभिः परिप्वजनकर्म दिशन् हरिणीदशाम् ।

हिममयः पवनो ननु कामिनाममितकामितकारणतां ययौ ॥

३१

पथिककाननजमनोसन्नन्वलनसम्भवधूमरोपमम् ।

नवलपद्मरजः पवनाहर्त, जगति रङ्गति रक्षितपट्टपदम् ॥

३२

दिनमयं नमयन् सहसा कृत्स्न-सगरजनी रजनीः परिवर्षयत् ।

विरहितारहितासु सुखोर्मिका-रसमयः समयः विशितो घृशम् ॥

३३

सततकुसुमितामृतनृशोभा-निति समकालमिहावलोक्य मन्त्री ।

अधुनत विदितप्रभुभावा-तिशयविचारवमल्लतः किरीटम् ॥

३४

शैलेऽस्मिन् पुरुहूतपौरमिथुनैर्मन्त्रीशनिर्मापित-

श्रीमन्नेमिखिनेशरोत्सवमयत्कौतूहलान्कारितैः ।

रत्नं नित्यपद्वर्तुभूतिविभक्तलङ्घोभवाञ्जलया,

सान्धैरतिमन्दनन्दनवनीमुकट्टूहैः ससृष्टे ॥

३५

कुसुमावचायमनसां श्रयणे, सुरयोषितामथ सरोजजुषि ।

कुसुमादुफेय निश्रुतध्वनयो, दधतीव नेदयलिनो मलिनाः ॥

३६

ययनेव शरपदवी गमिता, मदनेन सम्प्रति किमेभिरिति ।

अवचिच्यते स्म कुसुमानि तदा, रमणैः समं सुरसुरङ्गदशः ॥

३७

नववृक्षमूर्ध्नि यदकारि तपस्तपनास्तपेन धृतरामभरैः ।

तरुणीकुरमहणपुण्यफल, नवपल्लवैरिदमलामि ततः ॥

३८

नवपल्लवा निजविभूतिहृतो, वनवार्तिनः स्फुटमग्नोकृन्नुषः ।

परिकम्पितो हृदयशादहणै-स्तरुणीकरैर्विभिद्विरे रमसात् ॥

३९

कुसुमार्पणेषु रमणः सुदृशा, प्रथितेऽन्यनाम्नि लघुतां गमिव ।

हृदयम् तदान्तस्तेन सह, असितेव तूल्यदकार्षि बहिः ॥

४०

ददता प्रमूनमपराभिषया, दयितेन वज्रनिनशाऽभिश्रिते ।

हृदि मानिनी न्तु विभाव हृदं, सज्जलमवागतनुव असितम् ॥

४१

उदितं प्रियेण निभृतं चतुरा, पराजयमश्रुवक्त्री च रहः ।

तदुरस्थपुष्परजसि असितं, व्यभितायमधु च तदुदयने ॥

४२

सृजता स्रवं शिसि पद्मदशे, बृदु चुञ्चता प्रियतमेन परा ।

अपि शेषुषीरुषतया न रसाद, ददशे परा न तयाऽपि रूपा ॥

४३

सकलत्वक्रीयकुमुदस्वहृति-प्रतिपन्थिनीः प्रति यस्मै सुदृशः ।

अमुचन् शीलसुसदातानि स्ताः, समग्रपञ्चबह्वः तान्वपि ताः ॥

४४

अथ काननान्तरविहारयव-त्रवखेदभेदरमसेन ययु ।	
दयितै सम धृगदशोऽञ्जुनिधि प्रतिहस्तक सवनहतु सर ॥	४५
तरुणीसमागमक्येन जवात्, किल पञ्चलोऽजनि मुदा दिगुण ।	
विलसत्तरङ्गकरकोटिरय, तिर्यन् निजा कमलनीदयिता ॥	४६
जतिदूरत सरभसं रसभाक्, समुपेय लोलविषयव्यसन ।	
कुचयोर्वेदुठय सुदृशा निलय, प्रययौ तरङ्गनिकर सपदि ॥	४७
दयितेषु तोयजवनेषु गते, रमसेन यव कल्हसज्जुल ।	
सरसी रराज मुदृशा वदनै, कुचमण्डलेरपि च फेनभरै ॥	४८
हरिणीदृशा कलितरागभट, कुचसङ्गमेन परिवृद्धरसम् ।	
मुददम्बुजन्मरूपेन सर, परिमीलयत्यस्तिमुत्तीव दृज ॥	४९
अवलोक्य कोऽपि रमसेन जन, विपरीतलोचनमुदाररस ।	
हरिणीदृशा श्रुतिसरोवरदृशान्नचुम्बनन्यदिकरो हसित ॥	५०
अभिसेचनेन नयनप्रसृति प्रसरकटाक्षरसतोऽनुपति ।	
अपरा सरसी प्रति करप्रसृति श्रुतनोरस्यत्रलकेलिरमूत् ॥	५१
द्रुतमुदृतेऽञ्जुजमिति प्रकट, मुदितस्य वारिणि करे कमितु ।	
विदितस्य वीक्ष्य मुक्तमस्य नवा, रमगी न किं किमवृत्त प्रपया ॥	५२
ईदृकेलिरसप्रसन्नमनस स्वर्गोक्तो भास्कर,	
यातेऽभ्याम्बुनिधि सर इमुदिनीरोधप्रनुद्धमभा ।	
श्रीमन्नीचरवस्तुपान्दयगस्य शुभे सत्रैवाम्बर	
क्रोडे वैभवपिष्टनिष्ठपतन स्तोमन जगुर्दिवम् ॥	५३

किञ्च—

भास्त यावदत्तर्वपर्वतपद्म गुर्वीयमुर्वी न्य,	
ताकन दतु वस्तुपात्र ' जगतापुण्यैरय्यैर्मैशान् ।	
येनैता मुनयः पिपस्तव मुञ्जे वि यय्य नागाङ्गना	
गोप्त्रीमीनमेषय श्रुतिरसैतान्तचिचोऽभवत् ॥	१
आवमापि दृश्यादृति दिव्रपति स्व मूर्धनि स्वर्गुनी	
धौते धारयत् जापतिरसावप्रयो गुग्गादिगाम् ।	
सप सप्ततमन्मनु चमुमरै पुग्गानि पूषा सिरो	
नृथ दानवतामुभावपि शुनावतौ वमन्ते शुभे ॥	२

- श्रीवस्तुपाल ! रणभाजि भवकृपाणे, धाराधरेऽपि परवारणविभ्रमेऽस्मिन् ।
 उत्पन्न कोपतरङ्गं सहसा जगाम, खड्गग्रामसिंह इति स स्वयमेव मङ्गम् ॥ ३
- वस्तुपालसुकृतामृतप्रपा, काव्यमूर्तिररिसिंहमूर्धिता ।
 कण्ठद्वारसपायिनः शिरः, कम्पयन्ति किं यत्र कोविदाः ॥ ४
- प्रतिसर्गं प्रवन्देऽस्मिन्नरिसिंहविनिर्मिते । इमान्यकृत चत्वारि, काव्यान्यमरपण्डितः ॥ ५

॥ इति सुकृतसङ्कीर्तननाम्नि महाकाव्ये पङ्कतुवर्णने
 नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥



- तवन् वदनकान्तिर्यच्छतेन्दुः हृत्तीन्दुः, समुदितमदपानं पूर्णयात्रामिलम् ।
 इह विहितनिवासः फाससङ्काशकीर्तिः, ऋणितविततकर्मा निर्ममे सङ्गभोग्यम् ॥ १
- मलयक्षमयम्भः पादयोरुत्तमाङ्गे, घनमथ घनसारं चीवरं बाहु बाह्वे ।
 यश इव निजमीदृग्भूमारोप्य तेन, स्मयरसमुपनीता साधवोऽगाधबोधाः ॥ २
- सन्मं यन्न तदापि हनकनफस्तोमैस्तुच्छाराये,
 तस्मिन् वच्छति यान्छनाधिकतरं दीनेषु दुरावपि ।
 मन्येऽपूरि ततो गभीरिमजितो रत्नानि रत्नाकर-
 स्तस्य स्वैर्यनिराकृत्य करदो हेमानि हेमाचल ॥ ३
- किं सूते कर एव हेमनिकरं श्रीनेमिमक्तिरिया-
 तुष्टे रैवतक्रान्दिवतकुलैः किं वा निधि पूर्यते ? ।
 इत्थं याचकसञ्चयन किमपि स्वस्यापि बाण्डाधिकं,
 तस्मिन् यच्छति खेनेऽवपि नमस्कारश्चकार स्थितिम् ॥ ४
- तदानीं दीनोषे मुमुक्षु गृहीत्वा बहुत, स्वयं निर्विण्णैस्त्वस्मिन् वददयमनिर्विण्णहृदयः ।
 महो ! किञ्चित् कोऽपि कचिवपि न याचेन वचनं, निरादुचार्येदं धवलकूपरे गन्तुमुदितः ॥ ५
- दुष्कर्माद्रिपतिः पवित्रमहिमा नास्यां कदाचिन्महा-
 मोहप्यान्तरविः प्रविरगति मृशं सद्गो महोत्साहवान् ।
 इत्थं पापलिपि बिलप्य करणे भालोम्भे वामन-
 स्थन्याः पुण्यदिनं चकार मुकृती कुर्वन् प्रवेक्षेत्सवम् ॥ ६
- कर्पूरामुरुधूपमपटलेरुक्षिप्यमाणैः प्रसि-
 त्रामं तीर्थहृत्यामनेन वृतिना ये ऋषिं वारिदाः ।

तैव नुरिते जलं पयि तथा प्रेम्णैव वृष्टं यथा,

सपूणानि सरोवराणि न पुन सिफोऽपि मार्गोऽनसान् ॥

७

स्वस्थानप्रसूतस्वच्छमञ्जनप्राप्ताभारसघं परा रम्भास्मपुर प्रसूतवरननोपेगावकृष्टैरिव ।

साक सद्गजनै समुज्जिततयोभारैस्तदौ सुकयतो, गच्छद्भिर्घ्नलकृष्णमिधपुरोमान्त प्रपेदे कृती ॥ ८

स्मेरकास्मीरनमृच्छुरितपथतया रागमासाद्य सद्यो,

लीलालोलपताकादलतरलचम कारिचञ्चकटाभा ।

जातक्षोभा पुरीष सगिपुलपुलकार्कोणदूबाङ्कुराग्नै,

प्राप्ते श्रावस्तुपाले सति सचिवशचीवल्लभे बल्लभेऽस्मिन् ॥

९

इय सर्वाङ्गीगप्रगुणितविभूषा किल तदा, तदास्तेषु याक्त् क्षणमिव पुरी भासुररसा ।

अमूत त शूया हृदय द्य याते पुरजनै, सम श्रीमन्त्रीश प्रति सरमस वीर्यबले ॥ १०

श्रीवीर्यबलन्तेजःपालामिधसचिवमप्यग सचिव ।

त्रिपुरपरीतिरथापितहर टव हरति स तत्र मन ॥

११

भास्वन्नि स्थानभेरीमुरनभरजनिध्यानसन्तापभाति-

अट्टाहङ्गिरेदीप्तरमसपरीशम्भसम्भद्वष्टै ।

शक्रार्थैर्देवचक्रैरपि सचिवपति स्तूयमानलदानौ,

प्रारेण्डसौ प्रवेश पुनि पुञ्जिवपु पौरदक्षीयमान ॥

१२

अथ पृथुक्रमतुष्टैरतदु सद्गमत त्रिभुवनमपि शम्भैरन्दसयावदूकै ।

नवमगिति विदग्धा भागधा भागधेव प्रगुणितगुणगान् तुष्टुवुर्नन्विराजन् ॥ १३

जय जय नवशाहिन्नासमुद्रात्तृष्णी बलपमिलितकीर्ति ! मन्त्रिचक्रैरुन्नत ! !

दलितकलित्रिडास १ प्रस्तुगतीर्थयात्रा वृतवृतयुगनन्धप्रस्तुते । वस्तुपाल ! ॥ १४

बलिमि कत्रिकाळं याचकास्त्रैरुसाले, यदि भ्रशमभक्षिष्यद् दानवो दानदौण्ड ।

इति भनदवलोकार् निगुदन विबाऽपि, स्वयमयमगमिष्यद् देव ! पातालमूलम् ॥ १५

श्रीविभगास्वदमपि मवाद् दास्यस्यापु दष्ट,

स्वष्ट तुष्टो जनवसि जन शीर्षनिद्र ददिद्रम् ।

सामर्थ्यं ते स्वयमिति समालोच्य पाता न सौख्य,

नो दौख्य वाऽर्जिष ! तृपु लिखन् यथाभावमीया ॥

१६

सद्ग सद्गतगौरवै सह सदा कार्यो न कार्य पुन

नाचैराटगनादश बलपत पुत्री पुराऽपाठि यत् ।

तस्या तपठनस्य निश्रुतया पाठ ददया दवे,

मुद्रा हाटकपट्टिकेव सल्लि श्रीवस्तुपाल ! त्वया ॥

१७

धीमन्त्रिसुखम् । भवदीयविपक्षकं दुष्कीर्तिमिच्छिमुचन परितः परीतम् ।

काह स्फुरामि तव कीर्तिरितीव वस्तु, अणोपकण्ठमगमत् पलितच्छलेन ॥ १८

धीसोमान्वयवार्धिवर्धनविधौ । गन्त्रीत्त ! गामीधरी

लौलावन्ध ! भवानकृन्धि जगत् साधारणो वेधसा ।

इथ दाननिदानवैभवमवदालस्थलस्थापितै

रेवैभिर्विभवात्त्रैर्विभवमायु दुःस्थोऽपि सौख्य दधौ ॥ १९

फोपे पायकृतसमार्गसम चञ्चु क्षिपती पुनः,

ग्रीतौ मौक्तिकदामसोदरमिग भूरेव मन्त्रीश्वर ।

उल्लासनिगधन धने च ददती प्रत्यर्थिनामर्थिना

मन्येषा किमु चापयतिरतुला किं कण्ठवलिस्तव ' ॥ २०

आदोलयन्ति कृतिनस्तव कर्णशेख लोलासु ये गिरमुदारमुवा रसादयाम् ।

भूकल्पवृक्ष ! तनुपे निजमौलिकम्पात्, तेभ्य फल दिवि यदा कुमुमान्युदस्यन् ॥ २१

का शक्तिर्दुःसदा सुधारचिरसाग्रेः क्षयी प्रायते,

तै यश्चान्नरितोऽस्त्रिलैरपि समे निगन्तु दैत्यात्तत ।

भक्षीगत्य सद्य त्वदाननसुप्रभानो पिवन् वाक्सुधा

मेक सद्य वल्लभ्य वीरधवलौ यावज सज्जते ॥ २२

असौ ते सचिवावतस ! निविडाहङ्कारकारस्करा-

वटम्भस्थिरपीठपरिषदहातुम्भभ्रम भेजतु ।

कुम्भावभ्रमुर्मुकुन्दुरहरिस्तूर्णकृत्स्नास्फालन-

म्रस्ताऽसौ परिहृत्य निव्यसृजिता विश्राम्यति श्रारिह ॥ २३

बुद्धिलेख तव विस्तृता समस्त शाखावृत्तेरिह भृते हृदयप्रपाठे ।

श्रीवस्तुपाल ! भुवि बल्यभवा प्रसून-मादेव मौलिपु न कैरपि त्वदाज्ञा ' ॥ २४

श्रीसोमान्वयकुटुम्बोद्धृततुलाफ पतदुर्बल श्रेयोयष्टिरनिवृष्टविष्टवपि सन्धोदलेहार्थन्या ।

श्रीविश्रामतर पराक्रमकरिस्तभो रिपुशोणिभृद-वम्भोद्विस्तव भतिगूर्जरपरोक्षारैकधुर्यो भुज ॥ २५

अमौ भृश सन्तनसखरिण्यु-ल्लसीपदालकरकरकति ।

भवत्कराभ्योदहवद विमाति, कृष्णारिनारचिह्नुरालिपालि ॥ २६

असज सज्जे यद्विह चिह्नन्मार्गगग स्मयस्मरे मेरो कटकमष्टित कपनिष्ठो ।

इति व्यक्त युक्त सचिवकुलकोटीर ! करव-वज्रज्याजेनाथ ममिमुकुटवन्धस्तव करे ॥ २७

क्रिड जगति भयदगति चिलोक्त्य, स्वगतियद्य धिम्तिनीरव सुरेभा ।

सचिव ! तव मुनेऽपि भूभिभ्र, दधति पदात् पदमप्यमी न चेत् ॥ २८

- प्रनरुमउगुण्डसिन् सेवना देव ! क्रामं, तत्र सचिव ! नमन्त प्रीतिमन्त समन्तात् ।
 नस्तद्विचित्राचींभौतभास्वदौस्या-रुततय द्यामी भूतिभार भञ्जते ॥ २९
 दक्षि षण्णमान्गुणमौगो रमो-द्वुरवद्विचन्द्रवरभारतीभरै ।
 विनदवतालयपुरस्तर शनै, प्रविवेग पचनमसौ महाननि ॥ ३०
 अभ त श्लोकयितुमाहुल उल, मुदशा गवा अपदर्शु कौतुकात् ।
 अचत् तदाभ्रवृत्तमुक्तत जग क्रियमाणमैतति दर्शितादरम् ॥ ३१
 विरच्य काऽपि मणिगुणल धुनौ, द्रुतमेकमेव चलिता कृतहलात् ।
 जगदुनमाननमुदोद्ययस्मय-स्वयमागतधुमणिमण्डला वधौ ॥ ३२
 औमुस्यभावरतभूषणवैपरित्या, रुणांचलन्वितमणिधितरुणम्याम् ।
 काचिचकार जिनतुञ्जरुम्भशोभे, पीन्नेन्नतस्नतटे मुकुटावरन्धम् ॥ ३३
 औमुस्यत काचन चित्रकार्यं, कुरं गृहीता नृगनामिमेव ।
 स्तिमयाज्जनभ्रान्तिवग्नात् किल्ली, नत्रद्वये तत्र दधौ मृगचम् ॥ ३४
 वैरुणमात्मिलित मुमुष्यभरस्था, पक्षान्तरप्रसृमर कररीकलाप ।
 सत्रायस मुमुमकार्मुकसन्निधान, वृष्वीश्वरानि न्हि तुनपाद्वन ॥ ३५
 ताड्डुमेक कर एव काचित्, तदा बहन्ती नपल चचल ।
 त्रैलोक्यजेतस्मरचक्रवर्ति पताकिनीवाप्रविलासिचक्रा ॥ ३६
 आपात् पदे सपाद काचन काञ्चनस्य, द्वित्रीरमङ्कुलितकौतुकमेकमेव ।
 लीपु स्वकीयविजयध्वजिनीषु विधे, दत्त तु वीरकटक मकरप्वजेन ॥ ३७
 शृण्वैकमेव निजमञ्जनमञ्जु नत्र-मानिभती परमनञ्जनमेव काचित् ।
 भाभूषित नु सहृद नु विरोपहय, जालागता निल विचारयतीव लैकै ॥ ३८
 काचित् तदा मन्त्रिवर निरीक्ष्य, कञ्चिद निभाव हृदये बहन्ती ।
 दद्याधग पाणिपुटैश्च स्थ, पिण्डीकृत पाटयनि स्न हासम् ॥ ३९
 काचिद मुत्रान्या बहिरङ्गभावा च्छून्य यदाऽऽलिङ्गनमाततान ।
 अन्तर्गते भक्तिवैजयन्त-भावादगन्त्य हृदये तदाऽऽसीत् ॥ ४०
 इत्थं गौरगौरीरमगीरहृत्कटाक्षच्छटा-मुच्छाद्यमयूरपिच्छटितच्छत्रच्छविच्छादित ।
 मन्द मन्दमन्दमन्दविन्दवचनैरानन्दमानो ययी, धन्य सौधयसौ धरातलमुधाधारापरो धीरपी ॥ ४१
 भूर्तर्जनीर्ष्यतेरथाऽऽरयपदेऽन्यारोष्य लोक पुन,
 सम्मानोचितचातुरीपरिचित सर्व विसर्ग्य क्षणात् ।
 साक्षादक्षतमात्रपुस्तिकश्रेय प्रमिद्धाङ्गना
 रङ्गमङ्गलार्थित स गमयासास धिमतो वासरम् ॥ ४२

किञ्च—

तात ! ख्यातगिरिः सुता मम हता ही ! कालिदासादयो,

नन्वेकस्तु चिरायुरस्तु जगति श्रीवस्तुपालोऽधुना ॥

मार्कण्डः स्फुटमाशिषा शमवतामल्पायुरप्येष यत्,

कृत्वायुर्व्यतीति वामिगदने धाताऽस्तु जानादरः ॥

१

श्रीवस्तुपाल ! भवदीयवशोऽङ्गनस्य, शधन्मभोऽङ्गणविहारमनोहस्य !

साराङ्गसहस्रकरस्तरवारिधारिरक्षाभद्राधियसुरीकुरुते सितांशुः ॥

२

सिन्धुराजविजयोऽग्नयलं यशो, वस्तुपाल ! तव चन्द्रवद दिवि ।

यत्र दुःखपटलीमलीमसं, सिन्धुराजमुखमेव लान्छनम् ॥

३

यत् कवेर्लवणसिंहजन्मन, काव्यमेतदमृतोद्दोर्धिङ्गा ।

वस्तुपालनवकीर्तिकन्यथा, फन्यया किमपि यत्र खलितम् ॥

४

प्रतिसर्गं प्रबन्धेऽस्मि-क्षरिसिंहविनिर्मिते । इमान्यकृतं चत्वारि, काव्यान्यमरपण्डितः ॥ ५

॥ इति सुकृतसंकीर्तननाम्नि महाकाव्ये पुरप्रवेशो

नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥



आसाद्य वीरध्वजलाभिषतिप्रदत्त-श्रीस्तम्भतीर्थनगरप्रसुतामयासौ ।

कीर्तिः क्षितौ तनुमतीस्त्रिव कीर्तनानि, कर्तुं समारभत मन्त्रिशिरोऽवतंसः ॥

१

पञ्चसाराङ्गमणहिल्लपुरीपुरन्धी-सीमन्तरुनमिव पार्श्वजिनेशवेदम ।

उद्वूलयेन यशसा जनिता जलया, हस्तावलम्बनविधिर्नरानङ्गर्तः ॥

२

श्रीस्तम्भतीर्थनगरं रचयाञ्चकार, भीमेशवेभ्यनि च काञ्चनकेतु-कुम्भी ।

मूर्तेषु कीर्तिरनिशं वरयेज्यन्तः, नर्तन्ति यत्र दिवि देवतर्वा जयन्ति ॥

३

उत्तानपद्मज(त)निष्ठ पुरश्च भट्टा दित्यस्य मूर्धनि च काञ्चनशेखरं सः ।

तत्रैव दूरतरतापयश प्रताप-फारस्करदितयसम्भववीजभूते ॥

४

मट्टार्कभूजनवने नदकाभिधाने, कूपं न्यधापयदसौ क्षितिनाभिरूपम् ।

दूर्वाङ्कुरप्रकरकर्जुरिताङ्गकुन्त्या-मार्गापदेशभिल्लितासितरोमराविः ॥

५

जग्नेषि तत्र वज्रकुलाभिधचण्डभानो-रुधै-सुधामपुरमण्डपकैतवेन ।

स्पष्टीकृतोऽयममुना प्रमदप्रभावो, मूर्तो चमत्तनिरुते स्वयश-शशाङ्कः ॥

६

श्रीमान्स्वगण्डपदमण्डपमन मन्त्री, श्रीरैधनायथिवसस्र यदेष चक्रे ।

सेगन्याय इतिनां दधदोपरीगं, तत्रावतारमइत स्वयमेव देवः ॥

७

- उधै पद नित्रयशोभरसोदरस्य, तत्रस्य तत्र विदध यदशौचमा या ।
 तत्र स्थित तदनुवासरयाममासा, विधेयवस्तुषु हसतुपरिप्रतिष्ठम् ॥ ८
 अत्रैव साधुहृतयऽद्रुतपुण्यत्त्रयी-नरोपम वसतियुग्ममसौ चकार ।
 यत्र प्रतिक्षणमहोसवहेतुगता, भूमिधर्म महति वदनमालिनेव ॥ ९
 आरोह्यैश्वर्यमृत तरुमिवसासौ, दुग्धस्तनमुभयपक्षगवाक्षनयाम् ।
 तेन प्रपामपि रसप्रसरप्रसरया, वीर्यैव दामयति मद्भु न निर्हति क्व ॥ १०
 तेन व्यथायि ध्वलद्वरपत्तनश्री लीलातुशेखरमिवाऽऽदिजिनेन्दुचैत्यम् ।
 मुकुटाऽपि चतुर्भजनाननपङ्कजानि, यत् वीरते जनमिलोचनचक्राणि ॥ ११
 भजपि तेन वसतिद्वितय मुनीना, हेतोरकारि मुहुतामृतपानपात्रम् ।
 यस्माद् द्विधा प्रसूतं शुचिकीर्तिश्रे, विष्णुत्रय धयति विवृतहृत्शोभाम् ॥ १२
 या कीर्तितस्य सममूर्तिह रागकाश्य भङ्गारकालयममुदरगत रिधे ।
 तस्या भुजङ्गमजगद्रमनाय मार्गै, वापीमिपादयामिहैव कृती वितने ॥ १३
 सा काऽपि फोमलङ्कोऽङ्गजवर्धनाय, धात्रीय तेन रचितेयमिह प्रपाऽपि ।
 या पूरयेत् तृपिनेषु तदावजात-मयेषु केषु न पय कलाम्बनोयम् ॥ १४
 शत्रुञ्जयाद्रिमुकुटस्थ पुरो जिनस्य, तेनेन्द्रमण्डपमिद तदकारि किञ्चित् ।
 भयेकनारमधिगम्य जना यद्वत् नमातरऽपि न भञ्जन्ति कदाऽपि तापम् ॥ १५
 अत्र व्यथापयदय नवमुञ्जयन्त श्रीस्तम्भनाधिपजिनाधिपचैत्ययुग्मम् ।
 तत्केतुकैतवचरहितवेन कीर्ती, रम्येन्द्रमण्डपगिराभुवि नृत्यतीव ॥ १६
 लक्ष्मीर्मयाऽवलमिता जगदेकमूर्ति भक्त्या ततोऽत्रल्लापयेयमिमा च देवीम् ।
 वाग्मूर्तिमत्र इचयति स स्वमेक-माङ्गप्रसीमपि वामिमानम्वज्जम् ॥ १७
 मूर्तिर्विधास्य निजपूर्वजपूजागा, तेनात्र निवहचिपधनिभैस्तदास्थै ।
 गा प्रागिता रजनिभास्त्रनीलपद्म-दुःखा क्रिमेनमपि मुञ्जति साऽपि लक्ष्मी ॥ १८
 मूर्तित्रय हरिकरिश्चमपूरि तेजः, पालस्य वीरधरलक्ष तदाऽऽज्मनोऽसौ ।
 सज्जदमुदुरङ्गप्रलयाय मूर्तेमग्न्य युगप्रममेवान् पावन्देहे ॥ १९
 चत्वार्यम् चतुरधीमन्मोहना ऽन्ना प्रयुञ्ज-शाम्नागिखराण्यवतार्य तत्र ।
 तजमङ्गीतिनिवहस्य चतुर्मुखचार, धातु श्रिय निदधनोऽपि बभूव धाता ॥ २०
 आलोच्य वीक्षितपुरात्नमूपमकृत्वा चै यत्रिया जिनपतेस्तमतीप्सकम् ।
 अतथमकृततया निरसीव कल्यौ, पाणी तदीयवृत्तोरणकैतवेन ॥ २१
 श्रीसुत्रत भृगुपुरादयमत्र भत्री वीर च सत्यपुरत पुरतोऽवतार्य ।
 ताभ्या सदा विहितदीपमनोहराभ्या, लोहद्वयमपि मुदा विस्तदाचकार ॥ २२

भाण्डलप्रतिनिधिर्विदधे जिनेन्दो-र्यस्तेन तत्र मणि-काञ्चनपृष्ठपट्टः ।
 तत्कात्तिमिर्दिल्लितेषु तमस्तु चैत्ये, दीपा जयन्ति यदि पूजनमङ्गलाय ॥ २३
 यच्छातकुम्भामयतोरेणकुम्भाचातं, तत्राधारीकृतारविच्छवि तेन तेने ।
 तेनयमदिपतिरुत्तरप्रभातः, सम्भ्राज्यतेऽप्यहर्दृज्यलद्रोषधीदाः ॥ २४
 यद्यम्बरे सुसुगुरोरेव मे व्याघास्यद, वेधाः स्थितिं तदहमत्र मुदुर्गिरिस्थ ।
 अभ्रंल्लिहादिपतिमूर्धनि कीर्तनौष-मेतेन कारितमसङ्ख्यमवर्णविध्यम् ॥ २५
 श्रीपादल्लिप्तपुरसोवि सरः स चक्रे, यस्यानिर्दरुमधुरे लुञ्जनी वरि ।
 नित्यं नितान्तमधुरांभवितुं सुधाभृग्-मोग्यः सुधारुचिरपि प्रतिमामिषेण ॥ २६
 एष स्फुरद्गुरुमुनिप्रसरामिहैव, स्वर्द्धण्डवर्गनपरां वसति वितने ।
 यस्यां यथा सितरुचिर्विगदः स कोऽपि, जद्वेऽस्थ यत्र विधुरेव वभूव चिह्नम् ॥ २७
 तत्र प्रपेयमपि तेन नवा वितने, यां प्राप्य शीत-मधुरोज्ज्वलहारिवारिम् ।
 पीयूषपुण्ड्रहिमयामजमेव गर्व-मर्वस्वमन्यजगनोर्गती वभञ्ज ॥ २८
 माधुर्यधुर्यमतुलाभृतकुण्डवन्द-स्फुटानुविद्धमिव यत्र जलं राज ।
 प्रामेऽर्कपालितकन्यामनि तेन तेने, पातालमूल्यावसातगुरुस्तडागः । ॥ २९
 श्रीस्तम्भनाभ्यामुत्तीर्णमिति निभाम्य, शत्रुशत्रुपानरुचिरे न स उज्जयन्ते ।
 द्वेषोधिर्नैर्दिवि यशोभिरदादपूर्ध्वं, द्वैराज्यदुःखममृतांशु-नमःश्रक्मयोः ॥ ३०
 स स्तम्भनाभिभुऽद्भुतमुदधार, श्रीपार्श्ववेशम् क्रिमपि स्मितवैभवं तत् ।
 यत्रागतौ नवकृतप्रतिमाउत्थेन, कौतूहलाद् विमल-नैवतल्लदिदेवौ ॥ ३१
 तेन प्रपादयमिहापदि पार्श्वार्धे स्थित्यैव तादृशगुणप्रयुणं क्रिलैतत् ।
 छायामनोज्ञममृताभजलं विभेद, तापं यदि ह्यमवदि स्थमापि प्रप्राया ॥ ३२
 श्रीवैद्यनाथसदनात् किल मालवेशो, दर्भावतीभुवि जहार सुवर्णकुम्भान् ।
 श्रीकेशिबंस सचिवस्तु स वस्तुपाल-स्तारिन् दधी दिनपतिप्रतिमचिपलान् ॥ ३३
 चक्रेऽर्जुदास्यगिरिर्मूर्ध्नि निजाप्रभञ्ज-श्रीमल्लदेवतुष्टाय स मल्लिदेवम् ।
 तदेहसंभितिभिरञ्जनमलुलार्भि-र्युष्मागितं भृशममुष्य यथा यथाक्वे ॥ ३४
 शक्तः क्व वस्तुमहत्पमतिर्वह्नि, श्रीवस्तुपालसचिवेश्वरकर्मनानि ॥ ।
 यत्सङ्ख्यया दिवि विधिन्यपितोऽनुविन्द, शक्तिशुना सदिक्रयैव पल्लवि क्षातम् ॥ ३५
 ईदम्त्रिकिरीटकीर्तनपटासदृशमनैर्यदुः,

कीर्तनं निवहैरहयथमिरावडम्भसरम्भभिः ।

तन्मानाधिकवर्धनम्यसनिर्गम्ये विभिन्नं नमः,

स्वर्द्धण्ड-अलक्ष्यमाणनितदप्रस्फोटरेतास्यदम् ॥

क्रिय—

विधायन्तु भुजङ्गराज-रजनीजंविश-राजविनी-

जीवातु-स्तनयिजवो ! नवनवप्रीया भवन्तधिरम् ।

उत्तमं भुजया वरोभिरमलं दीप्तं प्रतापैर्द्विप-

द्वार्यैः सिद्धमिदं तनेतु भुवनं श्रीवस्तुपालः सदा ॥

१

विश्वं न स्यादनोदग् निसिलमपि कदाऽन्येप लोहप्रवादः,

कल्पे कल्पे ततस्त्व नदयसि विदुषो लब्धपुण्यावतारः ।

कल्पद्रुः कामधेनुप्रिददामणिरपि श्रीवसन्त ! श्रवन्ती-

भूयाम्भोधिं गतानामिति भवति भवदानवारां विवर्त्तः ॥

२

स्फूर्जकेनावलिवलयितोत्ताल-झटोलनाला-

लोलालोलजलधिवलयव्याजतो वस्तुपाल ! ।

क्रीडनयेता रणभुवि भव-क्रीडं स्तम्भतीर्थ-

प्रान्ते प्रीतिस्तवक्रितरसाः शङ्खदुष्कीर्त्तयथ ॥

३

विश्वेऽस्मिन्नभरिसिंहकोविदस्तुप्रौढप्रमत्ताद्भुत-

श्रीमन्नीधरवस्तुपाल्ययासी पीयूषपुरोषमे ।

एते हर्षवशादरोमविवुषैसास्वादनीये मिथः-

सङ्क्रान्तया क्षणलभ्यसिद्धिविभवे यावज्जगन्नन्दताम् ॥

४

प्रतिसर्गं प्रवन्देऽस्मिन्नभरिसिंहविनिर्मिते । इमान्यकृन् चत्वारि, काव्यान्यमरपण्डितः ॥ ५

॥ इति सुकृतसंकीर्त्तननाम्नि महाकाव्ये सकलकीर्त्तन-

कोर्त्तनो नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥



गूर्जरेश्वरपुरोहितश्रीसोमेश्वरदेवकविविरचित-

कीर्तिकौमुदीमहाकाव्यस्थल्लोकानामकारादिक्रमेणानुक्रमः ।

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
अकल्पयदन	२६	१८	अनेन सत्यापित	७३	४१
अकारयदयं	३२	१८	अन्या एव	३७	३५
अक्षेपु नित्यं	९	३७	अपरोऽपि विघास्यते	७७	२१
अगस्तिभिः संव्यव	६९	३२	अपासौरुषो	२५	८
अग्रे राङ्गचमू	१७	२३	अपि तादृश	१०	३०
अथ गूर्जराज	४२	१८	अपि भूपल्लवो	४२	२४
अथ गोद्रह्लाट	५७	१९	अपूर्वं तस्य	४३	१४
अथ चेतसि	७८	२१	अपूर्वं मन्त्रि	४८	१४
अथ चौलुक्य	१	७	अपूर्वं कोऽपि	१३	१३
अथ तत्रैव	६२	९	अप्यरातिशरा	८०	१०
अथ दशरथरूप	११५	१२	अभिरामगुण	२३	८
अथ धर्मैक	१८	३४	अन्यर्था भक्त्या	७१	४१
अथ पाथोजिनी	१	३४	अन्यधर्ममान	१५	३८
अथ सचिवमयस्य	९१	२२	अर्धल्लिहप्रस्थ	५१	४०
अथ स व्यथितोऽपि	८०	२१	अमर्षणे मनः	२७	८
अवाप्तिपः सैप	३५	२८	अमात्यमत्यर्थ	४५	२९
अथैकदा कन्द	८३	१०	अमात्यमालोक्य	७	२६
अथोन्नगाम वामलं	८	३४	अमी सुमनस	४२	१४
अथोन्नगाम सामन्तः	२७	३०	अमृतैर्मानस	३३	४
अथोदपति	१	३०	अमेयमहिना	१७	१३
अथोक्तानि प्रीप्स	४१	२९	अये जयति	३९	१८
अथरैरधरी	७३	३३	अयि वेत्ति भवा	७५	२०
अथित्यकाधिष्ठित	५४	४०	अत्रातिराज्य	८२	१०
अध्वश्रमप्लव	२४	३८	अर्जितास्ते गुणा	२८	४
अनत्पाक्षीनि	४५	३१	अठपुटहरे	८०	६
अनिच्छतीनां निज	६२	३२	अवधारितधान्य	४५	१८
अनुक्रमेण	१७	३८	अकनमदप्रतां	८१	३३
अनेकानोरुहच्छन्ना	५०	५	अबनिषदितेन	७९	१६

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
जवलेपमलीक	७९	२१	आभाति यस्य	७३	६
जवलेकितमात्र	७१	२०	आरुह्य सबादपि	२२	३८
जवलेक्य सुलुन्य	६२	२०	आखिजितः समे	२२	३४
जवले नघरे	४६	३५	आखिजितायाः सुम	७५	३३
जवाखितानि चापानि	२६	२४	आवयोस्तु पितृ	६२	१५
जवातवेदाम्बुधि	१००	११	आवर्जिता जिता	२	७
जविधामेव	५२	३५	आविर्वम्ब	२८	३१
जध्रुप्रवर्तकधूमै	३४	४	[भाविष्ट इव]		२३
जघराशालना	४१	१४	आशायामशिरा	५६	२९
जसङ्गहरी	२६	८	आ सम्भवा	६६	९
जसतोरवलं	५८	१९	आसाद्य कन्दर्प	७१	३३
जसौ गुणीति	१८	७	आसाद्यते यया	३३	३५
जस्ति हस्तिमद	४८	५	आस्तां ताक्	४०	४
जल्मान् सुषेनो	९	२६	आस्ते सहस्तः स	९६	११
जस्मिन् कलौ	३६	४	आह्वातु विषम	७८	३३
जस्मिन्समया	४२	४	इत्थं वदन्त्य	१०८	१२
जस्य प्रभोः पितृ	७५	४२	इत्युदीर्य भुज	६६	१६
जहङ्गरोति नालानं	३५	१४	इयवी मछ	२८	१४
जहिंसामङ्ग	३६	२४	उचैर्वि	३०	३५
जहिंसान्न	३५	२४	उदस्तहस्तैः	५२	४०
जहो ! देहन्तां	४२	३५	उद्गच्छतस्तन	१११	१२
जहो ! ससाह	२५	३४	उदाभकामक्षितिपा	३०	२८
जकल्पिता शोभित	५५	३१	उद्विष्यापि द्विषा	३८	२४
जकारितल्लेन	५	३७	उन्मादं वीक्ष्य	३	३४
जकाशमिव कन्द्रेण	६८	९	उपकृष्टकृष्ट	४८	१९
जकृत्तिर्गुण	५९	१५	उपकृतां सता	४६	१४
जगत्प्य त्वसुतं	७७	४२	उपकृत्य कृती	४५	१४
जगमानमामने	७७	१०	उपरतसुत	८०	३३
जगमानमान्त	७४	४२	उपकृत्य विरुद्धानां	११	७
जगदानाः पयः	३१	१८	उभयोरेनयो	५६	१९
जगदावेव	३९	३५	ऊर्ध्वदिगता	१२	२६
जानीतवानसि	११२	१२	एकत्र स्फुट	८१	६
जानीतं न्यायतो	१९	१३	एकधारापतिर्यस्य	१७	७

	अ०	पृ०		श्लो०	पृ०
एकावली वक्षसि	५६	३२	कुर्वाणः किरणा	१४	३४
एकेन केशरिपुणा	१०६	११	कुर्वाणस्त्वयि	९०	२२
एकैव जगृहे	३२	८	कुल्लमुज्ज्वल	४४	५
एतयोर्विनय	५७	१५	कुल्लमयमाकुल्लः	११	३०
फगेहस्य चक्रो	३५	३१	कनविचमुदा	७९	१०
कथं न विवैक	३४	३९	कृतहारानुकारेण	४९	५
कथितारिचिचारेण	१	२३	कृतासनं तन्मणि	८८	१०
कदाचिदपि	९	१३	क्रेकिपत्रमय	६	२३
कदाऽप्युदयति	४	३४	केचिक् कुलं	५०	२९
कन्दर्पकेलि	७०	३२	केचिक् शुप्ताय	२६	३४
करीरैरवा	५०	३१	केनाऽप्यन्येन	१२	१७
करं चिक्षेप	५	३४	कोरुद्रन्दं तदा	२	३४
करवालजलैः	४४	८	कोऽन्यपूर्वः	६	१७
कर्णे लग्नमि	२८	२४	कौरवेश्वरसैन्यस्य	६४	५
कलयति कलशो	६६	३६	क्रीडावतीर्णं नगरा	१०३	११
कवीन्द्रसौलेन्द्र	५१	२९	कूर्मैर्हेरिता	१०	१७
कवीन्द्रश्च मुनीन्द्रश्च	२२	४	क्व गतः सविता	१९	३०
कवीश्वराणां	५२	२९	क्वचिक् तटीः	४५	४०
कस्यासि काऽसि	९१	१०	क्षिपिपान्तरविग्रह	५५	१९
काण्डानां सह	२७	२४	क्षितिबल्य	६१	३६
कायः कर्मकरो	४८	३५	क्षिप्त्वा धारापति	३१	८
कालिदासः कवि	१२	३	क्षमातल्लक्ष	५६	२५
काष्ठेन करवालैः	१३	७	क्षुण्णिनः क्षुण्णिभिः	३२	२४
काष्ठेन शीनिके	४७	३५	क्षिप्त्वाप्यनि श्रेणि	३१	२८
किं नेत्रमार्गेण	६८	३२	क्षयेयस्येव यस्या	३७	८
किञ्चु विह्वलयिता	७२	१६	गते भालौ	१६	३०
किमस्तु यस्तुपालस्य	३१	१४	गम्यं सोऽपि	२	३०
कुचो सुवृत्तो	५४	३१	गल्लकुल्लय	६८	३६
कुटजविरपिनः	६२	३६	गोदानि जैना	१६	३८
कुमपि श्रुति	५२	५	शुरुणा विक्रमे	२०	७
कुपितः करवालैः	२	२३	गृहमारभते	४४	१८
कुपितानागोदत्त	५८	३२	गृहीतभूतिदण्डानां	६६	५
कुर्वन् गिरिशुभि	२	३	गृहीता दुहिता	२८	८

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
गृहे गृहे पातु	२	२६	जितं लक्ष्मि । त्वया	३१	३५
ग्रंथैः शुभैः सत्य	३२	२८	जीवनाय मनु	७१	१६
घनलयसमया	६४	३६	ज्ञानाक्षयं यस्य	३८	१८
घनैः प्रसूनै	६६	४१	ज्योत्स्नाजल	४६	३१
चक्रार तारिका	२९	३१	झटित्यागव्य	७	२३
चक्रार देवी	३८	२९	तं गोत्रमुत्थं	६१	४१
चक्रोरचक्र	१२	३४	तं राजवीर्या	१७	२७
चण्डयुती मण्डयति	४२	२८	तदस्थः प्रेक्षते	५३	३५
चत्विनाशरु	१२	२३	तत्कर्मार्जुनयो	२२	८
चन्दनैर्ध्वजितेव	३८	३१	तत्कालमुत्पलित	३३	२८
चन्द्रशालासु मालार्ना	५१	५	तत्पुत्रः प्रसरत्	६७	९
चलन्मन्त्रिवले	२१	२३	तत्र तौ ददशतः	५३	१५
चाणक्यादिव	५	१३	सत्रादिनायस्य	२५	३८
चापलादिव बालेन	५७	९	सत्राऽऽह्वमहा	२९	२४
चिकीर्षिता श्रीस	१	३७	सदकेत्य जवेन	४७	१८
मुद्रकोद्भवभूपते	६७	२०	सदा सदालोकन	२१	२७
चूडारन्प्रभा	४७	८	सदुपेहि पति	८८	२१
चौलुक्यचन्द्र	६३	२५	सदगुणान् निपुणया	५२	१५
छत्रच्छाया	४३	३५	सदर्शनीनां हृदि	२६	२७
छन्द शाखे श्रुता	४०	१४	सद्भूषण्डप्रसादो	८	१३
जगति अल्लिका	६१	१९	तनयः पितृविर	८७	२१
जगदे जगदेक	८१	२१	तन्मां स्वचक्र	१०५	११
जग्ने येनासि	६९	९	तम तक्रमिषा	४३	२४
जदा-सीमन्तकान्तं	३	३	तमन्तिके यान्त	१९	२७
जनन्या नदरे	२१	१३	तमन्यमिव	५	१७
जनितार्जुनतेजस्कं	१४	३	तमुज्जयन्ता	३८	३९
जनेन मेने	३५	८	तरणेरिव सिन्धु	८२	२१
जयन्ति कवयः	८	३	तरुणे तारका	४१	३१
जनेन यान्त्या	२०	२७	तच्छब्धे मल्ल	२७	१४
जातरीत्यधल	६२	५	तत्करैर्वा	३६	३५
जानेऽय विद्याभर	८७	१०	तस्मादमात्य	३७	१४
जामदग्न्य इवो	५४	९	तस्मान्निन्दर	१८	१३
जायते जल	८०	१६	तस्मिन्नेव कथारोमे	६	७

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
धोतेव सुधया	५३	५	नीलनीरद	५८	१५
न केवलं केवलं	२८	३८	नीलान्नमधु	४४	३१
न केवलं मही	४२	८	नुया च नया च	४०	२९
न केवलं शैल	६३	४१	नैवेद्यवृन्दै	३९	२९
न चौरात्ताप्य	७०	९	न्यायं निवेद्यन्	३	१७
न चित्रं क्षुद्र	६	१३	न्यासीकृताः	१०	३४
न तद् वनं	५६	४०	पतिरसितपति	५९	३६
न पुयचापादपरो	२४	२७	परा क्मरावेग	२३	२७
नमनमन्दप्रतिमः	७०	४१	परिजनैः प्रथमं	७४	३३
न नाभः श्वाप्यते	२६	४	परिपथिग्रह	४९	१९
न मानसे	७८	६	पर्यतः सचिवं	६१	३५
न मित्रमन्तरे	७	३०	पाणिपङ्कज	८	७
न मृगाङ्गे	३३	३१	पायेयवन्तः पथि	४	३७
नरत्नैर्दुष्यन्ते	३	१३	पादलशैर्मेहीपात्रै	५१	९
न राष्ट्रदूतान्वय	९८	११	पित्रा वैरुप	३५	३५
नरो न रोगापद	४०	३९	पित्रा विचित्र	११४	१२
नवं वयश्चित्त	६१	३३	पीमूषपायसै	३९	३१
न बाहनं यस्य	११	३७	पीमूषानिन्दुपसर्ब	११	२६
न संसारस्य	४०	३५	पुंक्षलीनां तप	३०	३१
न सर्वथा कथन	७६	१६	पुण्डरीकं वपयेकं	७२	९
नानर्च भक्तिमान्	४०	१८	पुण्ड्रेक्ष्यः क्षीणरसाः	१४	२६
नास्ति तीर्थमिह	७०	१६	पुं गोपैरिव	११	१७
निगदिदुं विविना	७९	३३	पुरं प्रगतां	७	३७
निदधे गुण	१४	१३	पुरतः सरतो	६०	१९
निदाने नात्र	३७	४	पुरतो यदि	५९	१९
निपुणोऽस्ति गुणेषु	७४	२०	पुरप्रभानां	५	२६
निरन्तरं सधरतां	१०२	११	पुरक्ष पृष्ठेऽपि	१८	३८
निशाद्य नोत्त	१४	१७	पुरस्त्वत्तत्प्राप्त्य	८६	१०
निशाद्यु यस्मिन्व	५३	४०	पुरस्त्वय न्यायं	७७	१७
निखन्य कस्य	९	३०	पुरान्नराणि निर्जिघ्र	५९	५
निष्कान्तः कामः	६७	३२	पुराणाणिमा	२५	१४
निखाननिखन्या	८	२३	पुरो मन्दरवद्	७४	९
नीलनेपाय्य	२४	३०	पुन्निपरिसरे	६०	३६

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
पूर्वं सर्वेऽपि	३८	१४	बहुभिः सह	८५	२१
पृथुप्रभृतिभिः	४१	८	बाहुभ्यामिव	७८	१०
प्रकल्पितायां क्षिति	४९	२९	निध्राने भुजगा	१७	३४
प्रकाश्यते सदा	२७	४	बिह्णस्य कवेः	१७	४
प्रचुरं तदराति	५१	१९	भय भुवन	१६	२३
प्रज्ञामाङ्गिरसा	४५	५	भवमवरमिमं	५८	३६
प्रतापः प्राप	८	३०	मवार्णवतरी	३४	१८
प्रतापिनः पल्लवित	१०	२६	भाति यत्र	६७	६
प्रतिपदघटितो	७९	६	भान्ति देवाख्या	६१	५
प्रतिपत्तिभिर्मज्ञो	६८	२५	माले तस्य	२१	१४
प्रत्यावृत्तिः हृत	१३	१७	मासः सेव्याः	६९	३६
प्रदोमानन्तरं	२२	३०	मिल्ला भल्लमि	६०	२५
प्रबुद्धमात्रोऽपि	८४	१०	मीमत्तेन मीमो	६०	९
प्रभुप्रोत्साहनं	३७	२४	मुङ्क्ते स्म सर्वेष्वपि	१२	३७
प्रभृतभोग्यानि	१३	३७	भूपालेऽव्यपालो	५२	९
प्रभृतमपि तत्	२३	२३	भूमिर्भुरथ	५१	१५
प्रभोः सपर्या	६७	४१	भूयान्मुदे तदैकं	४	३
प्रयोगकान्य	४९	३५	भृकुटीषटना	३	२३
प्रविवेश पुरे	७	१७	यमुकच्छमही	५३	१९
प्रसत्यथ मत्सर	५४	१९	मण्डलाग्रेण यः	१६	७
प्रसर्पतः प्रोषित	१६	२७	मस्तिर्भुज	६५	१५
प्रसारितकरे	१३	३४	मत्सरवर	२०	३४
प्रसन्नेऽथ नही	६६	२०	मवावृत्तानि प्रमवा	७२	३३
प्राक्कृतां ऐशुका	२०	१३	मदान्धास्ते	४४	३५
प्राणैर्मोऽपि प्रियं	५७	२५	मधुना लसतुर्कुर्या	९	३
प्रासादसौन्दर्य	३२	३९	मनागनालोकित	४२	३९
प्रासादास्तेन	२४	१७	मनीषिणां मानस	५४	२९
प्रियं विनामतां	५१	२४	मनोरमाकार	१८	२७
फलानि पुष्पाणि	५९	४१	मन्त्रिमर्माणल्लोकैश्च	६१	९
यकषाटफचेष्टितं	८६	२१	मन्त्रिमण्डल	४	१३
वभूव देवेषु	३	२६	मन्त्री तदासाध	४३	२८
वभूव भूपति	१२	७	मन्त्री ययमि	९	२३
बल्यारिधि	५०	१९	मन्त्रीशकर	३३	२४

	द्यो०	पृ०		श्लो०	पृ०
मन्त्रीशगुणाशित्य	४७	५	यस्मिन् सन्निहिते	२८	३४
मन्त्रीशमाल्लोक्य	२७	२७	यस्मिन् सरो	७२	६
मन्त्रीधरोऽयमनु	६४	२५	यस्मिन् होमानलो	५५	५
मन्ये मनसि	३४	१४	यस्य पौष	३७	१८
मन्त्रिनिचये	३६	३१	यस्य राजपये	६५	५
मलिनीभव	९	३४	यस्यान्तर्गिरिशा	७४	६
महतां वर्त्तमानानां	२३	१७	यस्योषैः सस	७५	६
महीमण्डलमार्तण्डे	४०	८	यास्य शीतहन्तिः	८२	३३
माणित्रयमुक्ताफल	५९	३२	यात्राप्रसङ्गेन	१४	३८
मानार्गलां काऽपि	६५	३२	यामिग्यानिदु	५१	३१
मानी नामन्यत	७	१३	या मूलराजान्वय	१०१	११
मालदत्तामिनः	३०	८	यावन्ति विन्वानि	२०	३८
मालिन्य मार्जया	३१	३१	युक्तं कादम्बरी	१५	३
मित्रेऽस्तमागते	६	३०	युष्मादगामसदृशा	११०	१२
मुक्ता निःश्रीक	१४	३०	येन केन च	६४	१५
मुख्यं श्रीमल्लदेवाख्यः	२४	१४	येन पौष	३६	१८
मुखेन खण्डित	१०४	११	येन विश्वैकवर्णि	३६	८
मुनेर्विजयसेनस्य	२३	४	ये मन्त्रिणो येऽत्र च	९५	११
मृदुयाणी मति	१०	१३	येषां निषेपार्द्ध	४	२६
मैत्रेयपान्थुत	७७	३३	योऽयं बांशित	५०	३५
मोदमानोऽन्त	२७	३४	यो ऋते संप्रति	९४	११
यः परामृत	११	१३	यौबनेऽपि मन्दना	६१	१५
यच्छिन्नलेच्छ	५८	९	यचित्तोपक्रमे	२५	३०
यत्र नारीमम	६३	५	यजोभिः समरो	३९	८
यत्र यत्र	६८	६	यत्प्रदर्शेषु	५०	४०
यत्र सौधांशु	५६	५	यथानयानन्द	३	३७
यदि सम्प्रतिपत्ति	७६	२१	यस्यैस्तुद्धैः	१०	३७
यदुत्तमाङ्गस्थित	३३	३९	यस्य यस्मिन्	४२	३१
यप्यनुपमा	४९	१४	यस्यन्ति न कं	३२	४
यन्यूनं यत्र	२५	१८	यस्यन्ति मन	४१	३५
यमुनेव मधुपणं	६०	५	यम्पासम्भान्वितै	२७	१८
यस्मिन् विदग्धा	५५	४०	यसाङ्कुरगे	१	१३
यस्मिन् सद्य	५७	४०	यगाद् गृपाल	४८	९

श्लो०	पृ०	श्लो०	पृ०		
राज्य ! धन्यतम	१०९	१२	विद्वानपूर्वः सित	६३	३२
रिपुसैन्यनिवेद्य	५२	१९	विबुधेऽपि न	७२	२०
रीणान् धुरीणान्	६२	४१	विभूता विद्य	४८	३१
रथा रिमतमुखः	४	२३	विधृतेऽपि सुते	७०	२०
रूपेणाप्रतिमाः	७०	६	विधौ विव्यति	५६	३५
रेमे न रम्येऽपि	३४	२८	विना कर्णेन	२१	७
रोहिणीरमणं	२६	३०	विना जगदेव	९९	११
रत्नः पादेषु	४९	३१	विपरीतमसिच	८४	२१
रङ्गा शङ्कावती	५७	५	विमाज्य तम	४०	२४
रज्जावती त प्रति	२५	२७	विभिन्नयोद्धि	३४	३२
रमन्ते लोकतः	४१	१८	विन्ध्यम् कुल	५९	२५
रामदेवस्य सेनान्य	३		विपति प्रेक्षमाणामि	४६	२४
रावण्यमिहनामानं	५०	१४	वियोगान्ययथा	५	३०
रौद्रावनेऽस्मिन्	४७	२९	विरक्तधेद्	१३	३
लोकत्रयो	९	७	विरचमाने सचि	२७	३८
लोकैऽस्मिन्व	२२	१७	विरोधवन्तिता	७	७
लौहित्यं विद्रुमा	३	३०	विलासवेस्माङ्गण	६६	३२
रथो विस्त्रिय	३१	२४	विशोक्य वस्तुपालस्य	४६	५
वचनं धनपालस्य	१६	३	विनेल्लंघनाः	१५	३४
यधूनां वक्त्र	५२	३१	विश्रुतिर्विद्य	११	३४
वनास्ताद् बल	१२	३०	विषमेऽपि कथं	७३	२०
वन्पास्ते कथयो	७	३	विषयामिष	५४	३५
पञ्चगोत	१९	३४	वित्तम्य पूरामध	८९	१०
चलितेऽपि शुद्धस्य	६३	२०	विस्तुरवीमहेतीनां	६४	९
पस्तुचं वस्तुपालस्य	२९	१४	विहाय शरधि	३०	२४
वस्तुपालयशोर्वीरी	२९	४	विहार युर्वना	५०	९
वापयेवोन्नति	४७	१४	वीक्षिता वन्ति	६९	६
वाहिः योस्तत्र	२५	२४	वीमः सद्ग्राम	४१	२४
विकारवर्जिते	६२	२५	वीमः समग्र	८१	१०
विकासवर्द्धिर्नति	४७	४०	वीमगां पाणि	३४	२४
विनिचयना रुचि	६५	९	वृद्धिः न्यमोष	३२	१४
विच्छायास्तित्ति	६	३४	वृद्धिघ्नानां मुचङ्गानां	२५	४
विद्वत्त्रिजग	६३	३६	वैरिनामनि वीर्य	५३	२४
विपुदयचञ्चल	६३	१५	व्यावर्तमानमय	७६	४२

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
व्याह्वय कृत्यमिति	१०७	१२	संक्षिप्ताष्टापद	२६	३८
व्योमाङ्गण	३२	३१	स एव घमाँशु	४८	२९
शङ्खपतिर्वयन्तश्च	५२	२४	स कर्दमैस्तस्य	२३	३८
शङ्खेन खड्गपातै	४८	२४	सम्प्लवपि वपु	७६	३३
शस्त्रैः शस्त्रेषु	४५	२४	सखा गङ्गस्य	४४	२४
शान्तध्वान्ति	३७	३१	सङ्ग्रामसिंहं स	६५	२५
शिरीषपुष्प	६	२६	सङ्गृहीतानि हारीत	२८	१८
मिश्रनाऽपि क्षुना	२४	८	सचिवचन	७८	१६
शुभत्वभाव	४४	१४	स चौलुक्यवृषा	११	२३
शुशुभे विष्णु	४	३०	सततं सचिवश्रेणि	२२	१४
शराणां सम्पुत्वा	४५	८	सत्य ससृति	५५	३५
शृङ्गेरदमैर्दिव	४४	४०	सदा हृदि बहेम	१८	४
शैलोपकण्ठ	३६	३९	स नमस्य	११	३
भगाने यातु	३८	८	सन्दर्शितु	४०	३१
धिये सन्तु सतामेते	१	३	सन्ध्याय बन्धु	३७	२५
श्रीक्षण्डमयुक्तुक्रया	२८	२७	सन्नदसैनिक	१०	२३
श्रीनागिन्दु	२९	३९	सनाह सङ्गरा	१३	२३
श्रीनेमिनाथा	६८	४१	स पञ्चयैर्निर्विषम	२१	३८
श्रीनेमिनापेन	६०	४१	सपराजुतगत्रूणां	४	७
श्रीनेमिनामान	६४	४१	स प्रसत्ये	५	२३
श्रीप्रह्लादनदेवोऽमृद	२०	४	सप्रसादवचनस्य	६८	१६
श्रीमोज-मुञ्जदु खार्वा	२१	४	सगं समप्रैपि	६	३७
श्रीवस्तुपाडेन	१	२६	समस्ततोऽपि काष्ठाना	१३	३०
श्रीवीरपवल	७६	१०	समस्ततोऽपि सामन्त	७३	९
श्रीरीरटप	१५	२३	समरैः करतिसुख्य	८३	२१
श्रीरीरस्य घो	१	१७	समामन्त्रेऽपि	१८	२३
श्रुतसिद्धनसैन्य	४३	१८	समीपमाज्यमुपि	२९	२७
श्रुत्वा मुनन	५०	२४	समुद्धृतैर्जार्ण	१९	३८
श्रुत्वा वच सचिव	८९	२२	समुपैति यथा	४६	१८
श्लाघ्यता कुल	६०	१५	समेय सोमेश्वर	८५	१०
श्वेताशुतुल्य	९०	१०	सम्पूतकृष	१०	७
पद्भिरेव गुणै	३३	१४	सरसिबभुरमि	६५	३६
सर्वीक्ष्य वीररस	६६	२५	सरस्वती सदा	६	३
संशोषितादेपन्दे	१३	२६	सरासि गजवज्जिनी	४८	४०

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
सरांसि राजहंसा	३०	१८	स्थितं पुरुषयो	३०	१४
सर्वत्र व्यक्त	४७	३१	स्थितं सङ्गद्यमुखे	१९	२३
सर्वत्रोच्छ्वसितं	१५	१७	स्थितः क्षणं क्षीर	८	३७
सर्वथाऽनुप	१४	७	स्थितस्य यत्थोप	४९	४०
स बीभो मन्त्रि	४९	२४	स्थितेऽत्र सङ्गमुखे	२०	२३
सशङ्खचक्रः	७७	६	स्थितेन तेन	२४	२३
स येतर्पातै	३०	३९	स्थित्वाऽय प्रस्थिता	१७	३०
स सन्ध्यावासरं	१८	३०	स्थित्वा विषय	५४	२५
सहजा इति	६५	२०	स्नात्रं स पात्र	६५	४१
सांयानिकजनो	१६	१७	स्नात्वा सरसि	७१	६
सा गता शुभमयी	७३	१६	स्निग्धैः सम्भाषणै	२०	१७
साधूनां हृन्धत्वा	३१	४	सृष्टाऽश्नु	१७	१७
सान्ने चन्द्रातपे	४३	३१	स्रुष्टं वेष्टयता	३५	१८
सामन्तमन्त्रक	४७	२४	स्रुष्टः सृष्टि	२१	३०
सास्वतमयं वन्दे	५	३	स्वं मेने येन	१५	१३
सावित्रं बिभ्रता	१६	१३	स्वखड्गसङ्गिदै	५८	२५
सिताम्बरं मन्त्रि	४६	४०	स्वच्छं वारि	७१	३६
सुकृतैः ऋते	४३	८	स्वयं शुद्धेषु	२६	१४
सुरां विषय	४५	३५	स्वयमुत्पादितां	३४	३५
सुखेन सार्धः	४१	३९	स्वरक्षितस्याथ	१५	२७
सुचिरमिति	५७	३५	त्ववाकृपात्तेन	२५	४
सुधेयं वसुधा	३४	८	त्वस्थानुबस्यापि	३५	३९
सुपण्केतना	१९	७	त्वामाविकेन शौचेन	२३	१४
सुभटासक	३९	२४	त्वामिना सप्रसादेन	१९	१७
सुभटेन पदव्यासः	२४	४	त्वामिशत्रु	५५	२५
सुभटैरै	६८	२०	इंसानां नव	७०	३६
सुस्तनत	२३	३०	हटे हटे पटो	८	१७
सोमः सद्युदत	१२	१३	हृष्यासाद	७६	६
सोऽस्ति कश्चन	४३	५	हरितं परिहय	६४	२०
सौरितक्रो नास्ति	९७	११	हिमासहोऽय	४६	२९
स्ननिनमुपगतं	६७	३६	हृदि प्रविष्ट	४६	८
स्तम्भतर्षि स्थित	४	१७	हृदि प्रियप्रियु	१६	३४
स्तुनः सुमनसां	१९	४	हं वीर ! यैग्विजिन्नी	९२	१०
स्तुनस्तमेव वार्त्ताईक	१०	३	हृद्य याद पत्न्यका	३०	४
स्तान्धशरद यः	२१	१७			

अरिसिंहकविविचित-

सुकृतसंकीर्तनमहाकाव्यस्थश्लोकानामकारादिक्रमेणानुक्रमः ।

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
अंसौ ते सचिवा	२३	१३१	अथापरशन्धानि	२६	११२
अकिञ्चनः कथन	४०	११४	अथाचलन् वायट	११	१११
अकृगैः कृशैश्च	८	१२२	अथादर्शि	१	१०४
अगाधपुण्यैर्भव	३१	११३	अथान्णमणि	३३	१०५
अप्रेऽपि तत्र	६	१३३	अथानुचेष्टुर्नर	१०	१११
अङ्गमाण्डन	३९	१२०	अथावनीगोष्ठजनि	१७	१०९
अजनि गिरिनितम्बे	३३	११७	अथान्नजत् स्निग्ध	४०	११३
अजस्रमस्रैर्वन	९	१००	अथासितीव्रतवत्	६	१११
अबलैः शशिमुखी	४	११८	अथास्व सङ्घस्य	१७	११२
अटनटन्यां यद्	११	१००	अथैष तीर्थङ्कर	४७	११४
अतिदूरतः	४७	१२८	अथोरुषामाऽजय	४४	१०३
अतुङ्गिनमहसेव	९	११५	अदायि दीनस्य	४८	११४
अलुदारतर	३७	१२०	अदोषधीमन्त्रि	३	१११
अत्र व्यथापय	१६	१३४	अदभुतप्रमद	१०	११८
अत्रापि तेन	१२	१३४	अनांसि धर्मीश्वरि	४२	११३
अत्रैव साधुकृत	९	१३४	अन्तरायदलनाय	१३	११८
अथ कम्पुचिह्न	१०	१२२	अन्तर्बसदन	१०	९६
अथ कल्पिताखिल	२८	१२३	अमरः पयोद	३३	१२३
अथ काननान्तर	४५	१२८	अपरः पिक्वपि	३५	१२३
अथ कृततनुकृत्यः	५१	११४	अपरता परताप	२१	१२६
अथ केऽपि भक्ति	३१	१२३	अपरस्य वंदा	३४	१२३
अथ गिरीदा	१	१२५	अपि द्विषः प्राम	३२	१०२
अथ ते विलोक	३१	१३२	अपि वज्रभाजि	७	१२१
अथ तामसं	४१	१२४	अभापिट समा	३७	१०५
अथ पृथुक	१३	१३०	अभिसेचनेन	५१	१२८
अथ पृथ्वीपति	१२	१०४	अभूत् तदा	१९	११२
अथ विरिमितम्	३२	१०५	अमृदय न्यायपरः	१५	१०१
अथ सखन्त्र	११	१२२	अमुत्र शत्रुशय	३७	११३

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
अमुष्य सद्यस्य	२७	११२	इति गद्गदाश्रु	२७	१२३
अलकलोल	२२	१२६	इति लक्ष्मीलतो	४४	१०६
अलभत वत ।	२	११७	इति वर्णयनय	१७	१२२
अवतमसततीनां	३१	११७	इति वर्ण्यमान	३०	१३२
अवलोक्य कोऽपि	५०	१२८	इति श्रुत्वा नृप	२९	१०५
अवलोक्य धूप	१५	१२२	इति सम्पदेन	३७	१२३
अवाहनानामपि	२	१११	इत्थं गौरवगौर	४१	१३२
अशिथिलपदपातं	४	११५	इत्थं प्रेक्षणक	४३	१२०
असन्नं सन्नदै	२७	१३१	इत्यमदभुत	१३	१०८
असौ मृदां सन्तत	२६	१३१	इत्यवेक्ष्य मुदितं	८	१०७
अस्त्रिभराः करमिका	३५	१०९	इत्युक्त्वा मुदिते	५८	१०६
अस्मिन् कृतोऽस्मि	३८	१०५	इत्युदीर्य	२७	१०९
अस्यास्तोत्रं कोऽपि	५०	१०६	इदमभूद्	३	१२५
अस्याऽस्ति च	२४	१०५	इमकुलमिममल्लो	१७	११६
अहनि दहनक्रीडा	१२	११५	इमौ ग्रन्थावि	५७	१०६
अहमिहारुण	१५	१२५	इयं सर्वाङ्गो	१०	१३०
आकर्ण्य तूर्ण	७	९६	इष्टैः स्तुतैरप्यपरैः	३१	१०२
आकलय्य सुख	३२	१०९	इह सोमनाथ	३	१२१
आजन्म सद्म	४९	१०३	इहाथ पाथस्तृण	३९	११३
आजन्मापि कुशा	२	१२८	ईदृक् कश्चिद्	२	११०
आत्मगोत्रगुरवः	१५	१०८	ईदृक्केलिरस	५३	१२८
आदेदाफन्निब	३०	९८	ईदृग्मन्त्रिकीरिट	३६	१३५
आधात् पदे	३७	१३२	उच्चरणचार	३	१२४
आन्तरेण नयनेन	५	११८	उचैःपदं निन्न	८	१३४
आम्बोऽलपन्ति	२१	१३१	उद्गुणमिष	१४	११५
आबभौ धन	२१	११५	उत्तानपट्ट	४	१३३
आरात्रिकं शूल	४२	१२०	उत्सुकैरथ जनै	१७	११९
आरोहयैमव	१०	१३४	उदितं प्रियेण	४२	१२७
आलोक्य वीक्षित	२१	१३४	उदामदानप्रसरन्थ	२६	१०१
आसाद्य वीरपवला	१	१३३	उदभानै सहसा	२	९९
आर्मात् कुमारदेवानि	५३	१०६	उन्नीस्थितागनि	१४	१००
आसीदथ प्रवृत्त	३७	९९	उद्विष्टद्विगन्धेषु	४	१०७
आस्ते यावदलर्व	१	१२८	एतदाननसिञ्जसि	६	१०७
आस्थानमण्डप	६२	१०६			

	स्रो०	पृ०		स्रो०	पृ०
एनं प्रबन्धमय	४	१०४	नचचन भर्तारि	२३	१२६
एष स्फुरदगुरु	२७	१३५	नवचित्र भङ्गोऽप्य	१३	१००
औत्सुक्यत काचन	३४	१३२	सीरीदमोदरो	४६	१०६
औत्सुक्यगाव	३३	१३२	स्मारण्डमास्तण्डल	८	१००
कटकरथकानन	१६	१२२	स्मायतेन लघुकं	८	११८
कपोलयोर्विवा	९	१०४	खदवाङ्गसङ्गत	४	९६
कमलकान्तिहरी	१३	१२५	खरुचेर्विजयाय	२६	१२६
कमलक्रीमा	१२	१२५	यतमदनमदानां	३	११५
करकिशलय	२	११५	गतोऽप्रतोऽस्मिन्	३२	११३
करामरोपगा	४	१०४	गम्यते तपन	२६	१०९
कर्पूरागुरुषु	७	१२९	गिरिरेप सिन्धु	१३	१२२
कर्मवैरिजिजयाय	११	११८	गिरिगिरिम जितेश	२१	११६
कल्पान्वेषु यशोमै	१	१०६	मिरो गति पश्यत	४३	११३
कल्पान्तोद्भवान्त	२	१२१	गृहाग विप्रदो	३९	१०५
करिर्न को	४	११०	चक्रोर्ध्वदालय	३४	१३५
कस्यचिद्वरणि	३	१०७	चञ्चलकाञ्चनकूट	२	१२४
काचित् तदा	३९	१३२	चटुल्य नदी	३६	१२३
काचिद् भुजाभ्या	४०	१३२	चतुर्दिगापूरण	१५	१११
काव्यमेतदरिसिंह	४	१२१	चत्वार्ययं चतुर	२०	१३४
का शक्तिर्पुसदा	२२	१३१	चलचलया मुवि	२५	११२
'किं सते कर एव	४	१२९	चलितसमल	२२	११६
किञ्च प्रपञ्चयत	६१	१०६	चिरमुपचितहर्ष	१९	११६
किञ्च स्व सङ्गिनि	२८	१०५	चुलुक्यकुल	१५	१०४
किञ्च जगति	२८	१३१	चेद् योग्यताऽस्ति	२०	९७
कीर्तिरुल्लेखित	४९	१०६	जटालमौर्ध्वम	१२	१००
कुङ्कुमाभ्युभि	३८	१२०	जनये त्रिन	१९	१२२
कुमुदापुष्प	३९	१२४	जय जय नयरात्रि	१४	१३०
कुमुदार्पणपु	४०	१२७	जलनिषिञ्चल	३०	११६
कुमुदापचाय	२६	१२७	जन्मनोर्वर्गनि	२१	१०८
कुनहन्य एव	१८	१२२	जन्पितानि बहुधा	४०	११०
कु वैरमेव	३८	१३२	जाटयं जनपु	१२	९७
कोपे पावकृतम	२०	१३१	जिन्वा चैर्मार्ग	२३	१०१
क्रमकमल्युगो	२९	१३२	जिनमहमहिमाने	१	११५
क्रमकमल्युपित	२८	११२			

जैन किलैन	३	९९	त्रैलोक्यादुत्तमं	५२	१०६
ततः कितिपते	३४	१०५	त्वदगुणान् गदितु	२६	११९
तनधनुर्विदाति	८	१११	त्वन्महोभिरहि	१२	१०८
तत्पदाम्बुरुह	२२	१०८	त्वं मनोभव	३१	१२०
तत्पदेऽतिविदित	१९	१०८	त्वां निरर्थकमिहा	२७	११९
तत्र सादृशि	२३	११९	दधः शखे च	४३	१०५
तत्र प्रपेयमसि	२८	१३५	ददता प्रमून	४१	१२७
तत्रावनीविमु	२७	९८	दधुरनङ्ग	८	१२५
तथाऽस्य तेजोमि	२	१००	दन्तर्दातिपटल	३०	१०९
तदङ्गजो दिग्माज	४६	१०३	दयितमिति	३२	११७
तदनु प्रमोद	२९	१२३	दयितेषु तोय	४८	१२८
तदनु वदन	१	१२९	दन्यमानमस	१९	११९
तदपीयत क्षुति	२५	१२३	दानच्छटसुरभि	४०	९९
तदानीं दीनोषे	५	१२९	दानशौकतपसां	३४	१०९
तदाऽनपाकाय	४६	११४	दास' कैलासभूमी	४८	१०६
तदनुः कीर्तिमरै	५१	१०६	दिस्पुरन्ध्र	४२	११०
तदनुध्वजप्रसादाख्यो	४७	१०६	दिनमयं नमयन्	३३	१२७
तत्पहामति	२	१०७	दीर्घासुषेयतादिनि	१	९९
तत्पथथाहर्गमनं	३९	१०२	दुःस्पर्माविषम	२९	१०९
तमीदिने व्यापयतो	१६	१०१	दुर्वासवारण	३१	९८
तयोत्रयोऽभयन्	५४	१०६	दुःकर्मोऽपिभिः	६	१२९
तल्लतारलता	१६	१२६	दुष्टामा यनिधि	१९	१०५
तल्पीसमागम	४६	१२८	देयाः स्वामिन्	४४	१२४
तस्माद् भुजमेन्द्र	१०	१००	देवमक्षिभर	९	११८
ताडकमेकं	३६	१३२	धुमगि' क्षपा	९	१२२
तात ! ह्यातगिरः	१	१३३	धुमगिमगिमगै	११	११५
तावकीनयदासैव	११	१०८	दुतमुदरशते	५२	१२८
तुदिनगन्दतरां	२७	१२६	दुतसमेतदिनाधि	१४	१२५
तुदिनमाहि	२९	१२६	द्वारमप्यय	२८	१०९
तेन प्रपादय	३२	१३५	द्वित्रेष्टाश्रीद्वि	२३	११२
तेन व्यपायि	११	१३४	धात्र्या धर्म्म न	२	१०४
तेने कृत्वा न समतां	५	९६	धर्म्मगान्धो	५६	१०६
तेनधा विनपुर	४१	१२०	धर्म्ममवचदसि	३४	९८

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
धूलिधूमपद	२५	११९	पवित्रमेतत्	१८	११२
घृता निर या	२९	१०२	पाणी सपुट्य	४१	१०५
न क्षमोऽयमहिता	२८	११९	पापपङ्कगमनाय	२०	११९
न तथा व्यराज	१४	१२२	पाय पायमहर्निश	१	११४
गनर्त्त कश्चित्	३३	११३	पावयन्ति परितरूम्	३९	१०९
नभसि दर्पण	१७	१२६	पिबन् पय स्व	९	१११
न भूयत केऽपि	६	१००	पुरा प्राग्वाटवशाग्र	४५	१०६
न मे स्वामिन्	४२	१०५	पुरुषोत्तमो हृदि	६	१२१
न ययवि प्रौढ	५	१११	पुलककम्पित	३१	१२७
नयनाप्रवर्त्मनि	२३	१२३	पूजासु पाणिस्थित	२१	१०१
नयेन सद्गत्य	४४	११३	प्रकटितावस	२	१२५
नलिनादिपुष्प	२६	१२३	प्रवल्ग्वमणि	६	१०४
नवपल्लवा निज	३९	१२७	प्रतापतापिता	२२	१०५
नवदृक्षमूर्त्ति	३८	१२७	प्रतिसर्ग प्रबन्धे	५ ९९, १०४;	
न स्थिरा क्वचन	३८	१०९		१०७, ११०, ११४;	
नागेन्द्राञ्च	४४	११०		११७, १२१, १२४;	
नाम्नुवन्ति भव	३०	११९		१२८, १३३, १३६	
नाम नाम सुधया	६	११८	प्रत्यर्थिपार्थिव	३२	९८
निर्य त्वद्दना	१	११७	प्रथम प्रथितस्तेषा	५५	१०६
नित्यचैत्यतुक्ता	७	१०७	प्रथमसमुदितेन्दु	१०	११५
निर्गम्य कौशतुहरा	३	९६	प्रवृत्तनुत्ता	४५	११४
निर्मितस्तुति	३४	१२०	प्रसादसादर	३०	१०५
निर्यन् पयोमय	३६	९८	प्रान्नियोजित	७	११८
निशि निपत	२०	११६	प्रातस्तूर्गस्वने	३१	१०५
पद्मासराह	२	१३३	प्राप्य रत्नमिव	३२	१२०
पक्षितवति पतक्षे	५	११५	प्रार्थितौ प्रार्थनीये	४०	१०५
पक्षितवति पयोधे	२६	११६	धमार भुमार	२४	१०१
पथिककानन	३२	१२७	बलिरपि कलि	१५	१३०
पदमकारि मुग्धे	२८	१२६	बहृत्पतन्पाद्युग	३४	११३
पदमयत्त	२४	१२६	बाधऽस्य मुर	१४	१०८
पदेऽथ तस्याननि	१	९९	तुद्रिन्म तव	९	१०७
परित स्फुरित	१०	१०४	तुद्रिस्तैव तव	२४	१३१
पर्वक्षणे न रुद्ध	१४	९७	महाकर्पूत्रन	५	१३३

श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
भवकान्नान्तरं	२१	१२२	य सुदर्शनघणं	१८ १०८
भवभ्रमिध्रान्तरः	३५	११३	यः सध्वरन् वर्वर	३३ १०२
भवामिभूतेन	१२	१११	यदसुख्यं स भवान्	१५ ११८
भापितं भुवन	२९	११९	यच्छततुल्यम्	२४ १३५
भामण्डलप्रति	२३	१३५	यत्कनेर्लवण	४ १३३
भां सुबो भुजमरेण	२९	९८	यत्कारितं सिद्धसरः	३५ १०२
भायनासल्लि	१४	११८	यत्कर्तिमेव	३८ ९९
भासि दौल्यतरु	३	१२१	यत्सङ्गखण्डित	२ ९६
भास्वन्निःस्वान	१२	१३०	यत्र क्षिति रक्षति	२५ १०१
भुग्नानि भूमिधर	२२	९७	यत्र प्रतिक्षण	१७ ९७
भुजगजगति भूति	२८	११६	यत्रोचसौधमुवि	१८ ९७
भुवनाधिपाति	२०	१२२	यदयमेत	१९ १२६
भुवनैकनाथ	२४	१२३	यदीयकारागृह	३४ १०२
भूरिधातुमय	२	११८	यदानमथावि	५० १०३
भूरिष्पराचिता	४०	१२०	यदानिदानमुदितेन	२६ ९८
भृगोः सुतेनेव	४१	१०३	यद्वयप्रभव	१६ १०४
भृशभृशसि कलङ्क	१५	११५	यद्यमरे गुर	२५ १३५
भृशमुपसि तुवार	२७	११६	यद्रत्नवैष्मपरि	२३ ९७
भ्रुवमारोपितां	२५	१०५	यमुनौयसङ्गम	४० १२४
भृजुलः कलक	३	११८	यस्मिन् जनाय	२४ ९७
भदभिर्वापित	२०	१२६	यस्मिन्पुर्णपरि	१९ ९७
भन्दाकिनी पियति	२१	९७	यस्मिन् विलास	१३ ९७
भयाऽसौ विक्रम	१८	१०४	यस्मिन् सदैव	११ ९७
भलयजद्रुम	११	१२५	यस्मिन् सदोच्चैः	४७ १०३
भसुणधुसुण	२९	११६	यस्य द्विपां कण्टक	३० १०२
भलयजमयमम्म	२	१२९	यत्वाप्तिषेनुफुल्ले	२८ ९८
भहानयं सहजनी	२१	११२	या कीर्तिरस्य	१३ १३४
भात्यमात्यवर ।	२	११४	यामवाय न	३३ १२०
भासुर्यपुर्ण	२९	१३५	युक्तेन यस्यासिलता	२८ १०२
भूर्तित्रयं हरि	१९	१३४	युद्धमार्गेण	२१ १०५
भूर्तीर्विधाप्य	१८	१३४	युधि न्यमासि	१७ १०४
भूर्तीस्तीर्थपते	४२	१३२	युधि स्वय यः	४३ १०३
यं विलोक्यातुलं	२६	१०५	युवां मोक्ष	५९ १०६

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
पुवाभ्यामेव	६०	१०६	विश्वं जगद् येन	३७	१०२
धैरजीयत	१६	१०८	विश्वं न स्यादनी	२	१३६
श्रेयपात्रवरपात्र	१०	१०८	विश्वप्रभुः वसुध	३५	९८
रचिताङ्गगौच	३०	१२३	विश्वेऽस्मिन्नरिसिह	४	१३६
रजस्तदा विस्तृत	२२	११२	विपमलिमिप	७	११५
राजा कुमार	१३	१०४	विसर्पता सद्य	२४	११२
राजा दृम्यां सुधा	३६	१०५	विहरचिचुर	११	१०४
रिपुर्निर्माशरो	२७	१०५	वीक्ष्य यस्मिह	१२	११८
रद्वेऽपि यत्र	१६	९७	वीतरागमत्	३३	१०९
लक्ष्मीर्मयाऽवग	१७	१३४	वृधैव वैचानन	४	१११
लाबण्यसिह	४	१२४	वैकशमान्य	३५	१३२
लावण्यामृत	७	१०४	व्यथयति प्रथिता	१०	१२५
लीलावल्लभजिज	३८	१०२	शक्तः क्व वसु	३५	१३५
लोचनैस्तनुमता	२२	११९	शत्रुश्रयादि	१५	१३४
वकीर्यते धनुषि	८	९६	शरीरमासैव	१३	१११
वदनाप्रमाण	३२	१२३	शस्त्रविस्तृतिपरः	२	१०७
वनवड्ढयो गुरु	१२	१२२	शान्तिवृत्तिष्य	१७	१०८
ययमेव शस्त्र	३७	१२७	शुद्धमहृपति	३६	१२०
वस्तुपालस्तचिवेन्द्र	१	१०७	शैल्यौल्लिखनाय	१	११८
वस्तुपालतुष्टता	४	१२९	शैलेऽस्मिन् पुरह्व	३५	१२७
विकटं नयामि	२२	१२२	शैशवेऽपि मदमत्त	२०	१०८
विस्त्रिय य संयति	५	१००	शौर्यैर्वैज्रपरस्य	१	१२०
वितन्यत फास	१६	११२	श्रावकस्वममल	३६	१०९
वितन्वाते विद्या	१	११०	श्रावकाः प्रतिपदं	३५	१२०
विप्रत्यतो मालव	१८	१०१	श्रीकपर्दिनमिति	१६	११९
विपुमौलिमौलि	२	१२१	श्रीकर्णदेवोऽथ	२०	१०१
विशेष लोभेन	२०	११२	श्रीक्षेमराजपति	३३	९८
विद्यदमीमिह	१८	१२६	श्रीतादलितपुर	२६	१३५
नियद्वहनि विवेने	१८	११६	श्रीगीमदेवोऽस्ति	४८	१०३
विरचय्य काऽपि	३२	१३२	श्रीमूमटो रिपुमटो	३९	९९
विरहनिमित्तमौर	१६	११६	श्रीमत् पुं	९	९६
विरोधयन् कोऽपि	३६	११३	श्रीमन्त्रिमुष्य	१८	१३१
विश्राम्यन्तु	१	१३६	श्रीमन्वीरवस्तु	३	११७

श्लो०	पृ०	श्लो०	पृ०
श्रीमानखण्डपद	७	१३३	सतां पतिः सङ्घपति
श्रीलता शुचितरेषु	३७	१०९	स तीर्थयात्रासु
श्रीवस्तुपालप्रथित	४	११४	सत्यधर्मेण कृतकानि
श्रीवस्तुपाल ! भव	२	१३३	सदर्पमर्ष
श्रीवस्तुपाल ! रण	३	१२९	सदा प्रसादोन्मुख
श्रीवस्तुपालसचिव	२	१०४	सद्यो जिनक्रम
श्रीवस्तुपालसचिवे	४	११७	मन्ति सम्प्रति
श्रीवस्तुपालस्थ	४	१०७	सने यत्न तदापि
श्रीवस्तुपालामिष	३	१०४	सपादलक्षप्रमुणा
श्रीविश्रामा	१६	१३०	समदमदन
श्रीवैश्ववर्षवलतेज	११	१३०	सममसममयूखै
श्रीवैश्व विस्मय	१	९६	समीपसङ्केत
श्रीवैधनाथ	२३	१३५	समुच्छिताग्निः खलु
श्रीसुव्रतं मयु	२२	१३४	समुदिते मुदिते
श्रीसोमनाथोऽपि	३६	१०२	समुद्भवद्वाव
श्रीसोमान्वयकुङ्किमो	२५	१३१	सम्पालयन्तो
श्रीसोमान्वयवाहिं	१९	१३१	सम्पूर्णशक्तित्रय
श्रीस्तम्भतीर्थ	३	१३३	सर्वतोमुखतपो
श्रीस्तम्भनाथ	३०	१३५	सर्वत्र सञ्चारिषु
संप्रामसिंहकुव्यगो	३	१०७	सर्वथाऽप्यसति
संयमप्रवृत्तिमि	२३	१०८	सर्वेश्वरमनु
भकलस्वक्रीय	४४	१२७	सलिलेन विभ
राक्षोपित्ताम्बुज	१५	९७	सर्वाङ्गिगुर्वीमपि
सङ्गः सङ्गत	१७	१३०	स स्तम्भनामिष
सङ्गमर्तुरधि	४३	११०	सहस्रशीर्षोरा
सचिवः समं	१	१२१	सा काऽपि क्रोमल
सचिवस्थ दास	४३	१२४	सितांशुना कीर्ति
सबकनन्दक	३	११०	सिद्धलोक इव
सनलजलद	२३	११६	सिन्धुगन्धविजयो
सञ्चरन् भुवि	१८	११९	मुवत्सत्प्राप्ति
सतवकुसुमिता	३४	१२७	सुमनसां त्वमसि
सततवितत	५१	१०३	सुवर्गसंयोजिव
सततान्तराल	४	१२१	सुव्यक्तभक्ति

	श्लो०	पृ०		श्लो०	पृ०
सृजता सर्ज	४३	१२७	स्वर्ग स कश्मैचन	४९	११४
सृजन् जन पूजन	२९	११२	स्वर्ग जिगीषु	७	१००
सेवकेषु दृढदोषे	५	१०४	स्वर्धनुशालिमणय ।	१	१०३
सोऽनुद्वय	३१	१०९	स्वस्ति श्रीदेवलोका	१	१२४
स्वध्वप्रकम्पित	६	९६	स्वस्थानप्रसृत	८	१३०
स्तुतगुण कुतुकेन	९	१२५	स्वद्व प्रमोद	३८	१२४
स्तुत्यदितरुलङ्घो	२४	११६	स्वयतादरा	२४	११९
स्तुतमयकर्म	४२	१२४	हठादरन्त श्रिय	४०	१०२
स्तुरन्त स्वप्रता	३५	१०५	हसल्लारलाम	६	११५
स्फूर्जत्फेनावलि	३	१३६	हरहसितसितानि	४१	९९
स्मात्पत्य	७	१२५	हरिणीदरा	४९	१२८
स्मरिशीत तनु	४	१२५	हरिहरिति रथाङ्गा	२५	११६
स्मितसरोज	५	१२५	हारान्तपद्म	३	१०४
स्मेत्कात्स्मीर	९	१३०	हिमभरस्य तप	३०	१२६
स्वदिवसपरि	८	११५	ह्यर्चिन	८	१०४